

मनोवृत्ति/अभिवृत्ति Attitude

जीवन की कोई भी अभिव्यक्ति एक क्रिया है, जैसे - चलना, तैरना, नाचना, सोचना, विचारना, कल्पना करना, क्रोधित होना आदि ऐसी सभी क्रियाओं को सम्मिलित रूप से व्यवहार की संज्ञा दी जाती है। चूंकि मानव एक सामाजिक प्राणी है, अतः उसके व्यवहार पर उसके सामाजिक परिवेश का भी प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव आन्तरिक एवं बाह्य दोनों हो सकता है। जब उसके आन्तरिक व्यवहार का उसके सामाजिक परिवेश के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है, तो वह सामाजिक मनोविज्ञान कहलाता है।

मनोवृत्ति/अभिवृत्ति सामाजिक मनोविज्ञान में सर्वाधिक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण अवधारणा है। मानव के आन्तरिक व्यवहार के विभिन्न अवयवों में यह अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा विचार के प्रति व्यक्ति किस प्रकार व्यवहार करेगा, यह बहुत कुछ उस व्यक्ति की उनके प्रति बनी मनोवृत्ति पर निर्भर करता है। व्यवहार ही नहीं, व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व भी उसकी मनोवृत्ति के अनुकूल ही ढलता है।

□ अर्थ, परिभाषाएं एवं विषयवस्तु (Meaning, Definitions & Content)

सामान्य शब्दों में किसी मनोवैज्ञानिक विषय (Psychological Object), अर्थात् - वस्तु, विचार या व्यक्ति के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक मूल्यांकन या भाव की उपस्थित मनोवृत्ति कहलाती है। उदाहरणार्थ - जिस व्यक्ति की लोकतंत्र के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति है, वह लोकतांत्रिक परम्पराओं एवं संस्थाओं के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण रखेगा और तानाशाही प्रक्रिया के प्रति प्रतिकूल रवैया रखेगा। किन्तु यह परिभाषा कुछ मनोवैज्ञानिकों को मान्य नहीं है, क्योंकि इसमें केवल भाव (Affective) पक्ष या मूल्यांकनपरक (Evaluative) पक्ष पर ही बल दिया गया है।

कुछ मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति को किसी एक वस्तु से जुड़े हुए प्रत्ययों, विश्वासों, आदतों और अभिप्रेरणा के रूप में परिभाषित करते हैं (Attitude as an Organisation of Concepts, Beliefs, Habits & Motives associated with a particular object)। इस परिभाषा में वस्तु के प्रति बनी हुई समस्त धारणाओं, विश्वासों, आदर्शों और अभिप्रेरणाओं को जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। ये एक प्रकार से मनोवृत्ति के विभिन्न अवयवों का निर्माण करते हैं।

मनोवृत्ति के मुख्यरूप से 3 अवयव - भावात्मक (Affective), व्यवहारात्मक/क्रियात्मक (Behavioural) और संज्ञानात्मक/विचारात्मक (Cognitive) होते हैं। धारणाओं, प्रत्ययों एवं विश्वासों का संबंध संज्ञानात्मक अवयव से, आदतों का व्यवहारात्मक और अभिप्रेरणाओं का भावात्मक अवयव से सीधा संबंध होता है। इस रूप में व्यक्ति जो भी किसी वस्तु के बारे में सोचता है, अनुभव करता है और अपनी जिस रूप में प्रतिक्रिया करता है, यह सब उसकी उस वस्तु की मनोवृत्ति को व्यक्त करता है। उदाहरणार्थ - किसी राजनीतिक दल के प्रति किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति को ही लीजिए, उसका अनुकूल या प्रतिकूल कोई भी स्वरूप उस दल के प्रति बनाई गई धारणाओं, विश्वासों और भावनाओं का ही परिणाम है, जो उसके विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों द्वारा प्रकाश में आ जाता है। चुनाव के समय उसका आचरण एवं व्यवहार ही प्रत्यक्ष रूप से उसकी मनोवृत्ति को प्रकाशित कर देगा।

इस प्रकार मनोवृत्ति किसी वस्तु (विचार, व्यक्ति या अन्य मनोवैज्ञानिक विषय-वस्तु) के प्रति एक विशिष्ट भावना है, इसलिए इसमें उस वस्तु से जुड़ी हुई परिस्थितियों में एक निश्चित प्रकार के व्यवहार करने की प्रवृत्ति निहित होती है (An attitude is a particular feeling about something. It therefore involves a tendency to behave in a certain way in situations which involve that something, whether person, idea of object)। वस्तु के प्रति यह प्रवृत्ति जन्म-जात नहीं होती है, बल्कि अनुभव के द्वारा अर्जित होती है (It is acquired, not inherent)। उदाहरणार्थ - किसी धर्म के प्रति विकसित मनोवृत्ति को ही लीजिए। कौन सीख कर आया था कि अपना धर्म दूसरों से अच्छा है, अन्य धर्म घटिया है। यह सब मानव को सामाजिक परिवेश ने सिखया है।

अन्ततः मनोवृत्ति की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि मनोवृत्ति व्यवहार को दिशा प्रदान करने वाली वह अर्जित प्रवृत्ति है, जो व्यक्ति को किसी विशेष वस्तु के प्रति एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने हेतु तत्पर करती है।

□ मनोवृत्ति की तत्व/घटक (Elements of Attitude)

मनोवृत्ति का निर्माण 3 अवयवों/तत्वों - संज्ञानात्मक/विचारात्मक (Cognitive), भावात्मक (Affective) और व्यवहारात्मक/क्रियात्मक (Behavioural) से होता है।



♦ संज्ञानात्मक तत्व (Cognitive Element)

सरल शब्दों में संज्ञान का अर्थ है - जानकारी या ज्ञान, जैसे - मैं किसी वस्तु को जानता हूँ। यह जानकारी/ज्ञान सही अथवा गलत हो सकता है, लेकिन मुझे लगता है कि वह सही है। वस्तुतः यह एक प्रकार से किसी विषयवस्तु के प्रति हमारा विश्वास होता है, जो विभिन्न धारणाओं, मतों, प्रत्ययों, विचारों, सूचनाओं आदि के आधार पर बनता है। विचार प्रक्रिया (Thought Process) के निर्माण में यह तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संज्ञानात्मक तत्व के कारण ही हमारे मन में किसी वस्तु के संबंध में नकारात्मक या सकारात्मक भावना उत्पन्न होती है।

♦ भावात्मक तत्व (Affective Element)

भावात्मक तत्व के अन्तर्गत किसी विचार, वस्तु, व्यक्ति या घटना के प्रति मन में उत्पन्न होने वाली एक विशेष प्रकार की रुचि-अरुचि, पसंद-नापसंद का भाव उपस्थित होता है। जब हम किसी व्यक्ति, वस्तु से सम्पर्क स्थापित करते हैं, तब उस व्यक्ति या वस्तु के प्रति हमारे मन में कुछ भाव उत्पन्न होते हैं, जो सकारात्मक या नकारात्मक हो सकते हैं।

♦ व्यवहारात्मक तत्व (Behavioural Element)

व्यवहारिक तत्व से आशय है निश्चित ढंग से कार्य करने की प्रवृत्ति। सामान्यतः यह माना जाता है कि किसी वस्तु या विचार के बारे में हम जैसा विश्वास करते हैं, वैसा ही कार्य या व्यवहार करते हैं। हमारे मन में उत्पन्न किसी के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक भावना ही तय करती है कि हमारा व्यवहार कैसा होगा। यह तत्व हमारे मनुष्यों के व्यवहार को निर्देशित व नियंत्रित करता है।

मनोवृत्ति के इन 3 तत्वों को हम निम्नलिखित उदाहरण के माध्यम से समझ सकते हैं -

- 1) किसी व्यक्ति के पास यह जानकारी/ज्ञान हो सकता है कि उसी का धर्म सर्वश्रेष्ठ है। यह जानकारी गलत भी हो सकती है, किन्तु उसे विश्वास होगा कि यह सत्य है (संज्ञानात्मक पक्ष)।
- 2) इस ज्ञान से वह दूसरे धर्मों के प्रति नकारात्मक भावनाओं (नफरत, घृणा, ईर्ष्या) का अनुभव करेगा (भावात्मक पक्ष)।
- 3) इस नकारात्मक भावना की उपस्थिति के कारण पर वह दूसरे धर्मों के लोगों को देखकर नकारात्मक प्रतिक्रिया करेगा, जैसे - छूआछूत, घृणावाक् आदि (व्यवहारात्मक पक्ष)।

सामान्यतः परम्परागत मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि मनोवृत्ति इन 3 तत्वों से मिलकर बनती है, किन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक इससे सहमत नहीं है। उनका मानना है कि मनोवृत्ति में इन 3 तत्वों में सदैव सामन्जस्य व संगति रहे, ऐसा आवश्यक नहीं है। इन तत्वों की उपस्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि किसी मनोवृत्ति में कोई तत्व कितना प्रबल है। सामान्यतः संज्ञानात्मक एवं भावात्मक पक्ष में सामन्जस्य एवं संगति होती है, किन्तु क्रियात्मक पक्ष अनुपस्थित रहता है। उदाहरणार्थ - आपको विश्वास है कि धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। आपको भय भी है कि आपको कैंसर हो सकता है। किन्तु इसके बावजूद आप सिगरेट पीते रहते हैं। दूसरा, कई बार संज्ञानात्मक एवं भावात्मक पक्ष में भी सामन्जस्य एवं संगति नहीं होती है। जैसे - शिक्षक को जानकारी है कि उसके कुछ छात्रों ने अच्छे से पढ़ाई नहीं की है, किन्तु उसके बावजूद शिक्षक के मन में उन छात्रों के प्रति नकारात्मक भाव पैदा नहीं होता है।

□ मनोवृत्ति की विशेषताएं (Features of Attitude)

- 1) मनोवृत्तियां अर्जित होती हैं (Attitudes are acquired or learned)। कोई भी अभिवृत्ति सामान्यतः जन्मजात नहीं होती है, वह वातावरण में उपलब्ध अनुभवों के द्वारा अर्जित की जाती है। उदाहरणार्थ – भूख, जो जन्मजात मूल प्रवृत्ति है, इसे सीखा नहीं जाता है। जबकि किसी विशेष प्रकार के भोजन के प्रति हमारा आकर्षण एक अर्जित प्रवृत्ति है, जो मनोवृत्ति बन जाती है। यद्यपि कुछ मनोवैज्ञानिक आनुवांशिक कारकों के प्रभाव को स्वीकार करते हैं, जो ये सिद्ध करता है कि मनोवृत्ति सीमित रूप से जन्मजात भी हो सकती है।
- 2) मनोवृत्तियां अपेक्षाकृत स्थायी होती हैं (Attitudes are relative enduring states)। एक बार बनने के बाद इनमें आसानी से परिवर्तन नहीं होता है।
- 3) मनोवृत्तियों में, प्रेरणात्मक-प्रभाव पाया जाता है (Attitudes have motivational-affective characteristics)। अभिवृत्तियों के विकास में किसी अभिप्रेरणा का हाथ होता है, जबकि आदत आदि अन्य प्रवृत्तियों में यह आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ – सीधे हाथ से लिखने को आदत कह सकते हैं, किन्तु उसमें किसी प्रेरणात्मक प्रभाव जुड़ा नहीं है। दूसरी ओर अपने राष्ट्र, धर्म के प्रति बनी हुई मनोवृत्तियों में कोई निश्चित प्रेरणात्मक प्रभाव पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः मनोवृत्ति में व्यक्ति को प्रेरित करने की क्षमता होती है।
- 4) मनोवृत्तियों में व्यक्ति-वस्तु संबंध पाया जाता है (Attitudes have a subject-object relationship)। किसी भी विशेष वस्तु, समूह, संस्था, मूल्य अथवा मान्यता के प्रति बनी हुई मनोवृत्ति यह स्पष्ट करती है कि इन सभी के प्रति व्यक्ति का कैसा संबंध है।
- 5) मनोवृत्तियों का प्रसार क्षेत्र पूर्णतः सकारात्मक से पूर्णतः नकारात्मक तक फैला होता है (Attitudes range from strongly positive to strongly negative)। वस्तुतः मनोवृत्ति किसी विषय के प्रति इन दो ही प्रकार के विकल्पों से बनती है। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु या विचार के प्रति आकर्षित होकर उसे पाना चाहता है, तो उसकी मनोवृत्ति की दिशा सकारात्मक मानी जाती है और अगर वह उससे दूर भागना चाहे, तो मनोवृत्ति की दिशा नकारात्मक कहलाती है।
- 6) मनोवृत्ति में सामान्यतः 3 तत्वों से बनती है।

□ मनोवृत्ति के प्रकार (Types of Attitude)

मनोवृत्तियों को सामान्यतः 3 भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

- 1) सकारात्मक मनोवृत्ति (Positive Attitude) – यदि मनोवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति या विचार के प्रति अनुकूल है, तो उसे सकारात्मक मनोवृत्ति कहते हैं।
- 2) नकारात्मक मनोवृत्ति (Negative Attitude) – यदि मनोवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति या विचार के प्रति प्रतिकूल है, तो उसे नकारात्मक मनोवृत्ति कहते हैं।
- 3) उभयनिष्ठ मनोवृत्ति (Ambivalent Attitude) – यदि मनोवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति या विचार के प्रति अनुकूल और प्रतिकूल दोनों भावनाएं एकसाथ हो, तो उसे उभयनिष्ठ मनोवृत्ति कहते हैं।

□ मनोवृत्ति का निर्माण (Formation of Attitude)

मनोवैज्ञानिकों में यह जिज्ञासा का विषय है कि मनोवृत्तियों का निर्माण कैसे होता है? कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि मनोवृत्तियों का अर्जन होता है। किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति उसके अपने व्यक्तित्व और वातावरण की संयुक्त अन्तःक्रिया का परिणाम होती है, तो वहीं दूसरी ओर कुछ मनोवैज्ञानिक इसे सीमित रूप से जन्मजात सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इस रूप में हम व्यक्ति की मनोवृत्ति के निर्माण अथवा उसके विकास के लिए उत्तरदायी कारकों को 3 भागों में विभक्त कर सकते हैं –

- 1) आनुवांशिक कारक (Genetic Factors) – जिस प्रकार विज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि कुछ बीमारियां आनुवांशिक होती हैं। ठीक उसी प्रकार कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि मनोवृत्ति के निर्माण में सामाजिक व व्यक्तिगत कारकों के अलावा सीमित रूप से आनुवांशिक कारक भी उत्तरदायी हैं।

2) **व्यक्ति में निहित कारक (Factors within the Individual)** - व्यक्तिगत विभिन्नताएं मनोवृत्तियों को जन्म देती हैं। वातावरण में कौन, किस प्रकार की मनोवृत्ति ग्रहण करेगा, यह व्यक्ति की अपनी बौद्धिक एवं शारीरिक विशेषताओं पर निर्भर करता है।

a) **शारीरिक वृद्धि एवं विकास (Physical Growth & Development)** - मनोवृत्तियों के विकास में शारीरिक वृद्धि एवं विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्वास्थ्य, शारीरिक अक्षमता या शरीर के किसी भी अंग का समुचित कार्य न करना। व्यक्ति को संवेगात्मक रूप से पीछे धकेलता है, जिससे उसके सामाजिक विकास में बाधा पड़ती है। ऐसे लोगों में प्रायः मनोवृत्तियों का विकास नकारात्मक होता है। जैसे - किसी विकलांग व्यक्ति की खेलों के प्रति मनोवृत्ति प्रायः तटस्थ या नकारात्मक होती है।

b) **बौद्धिक विकास (Intellectual Development)** - मनोवृत्तियों का विकास बौद्धिक विकास से भी प्रभावित होता है। बुद्धि के महत्वपूर्ण अवयव, जैसे - स्मरण शक्ति, सोचने-विचारने, तर्क एवं कल्पना करने की शक्तियां आदि मनोवृत्तियों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

3) **सामाजिक कारक (Social Factors)** - मनोवृत्तियों का निर्माण व विकास व्यक्तिगत रूप में न होकर सामूहिक रूप में ही होता है। जिस समूह विशेष से व्यक्ति का अधिक लगाव होता है, उस समूह विशेष की मनोवृत्तियों को ही व्यक्ति धारण कर लेता है। उसकी मनोवृत्ति का निर्माण पूर्ण रूप से सामाजिक वातावरण की देन है। वातावरण से संबंधी कारक व्यक्ति के घर परिवार से लेकर उसके चारों ओर फैले विस्तृत सामाजिक दायरे तक उसे प्रभाव में लाकर उसकी मनोवृत्तियों को ढालती रहती है। ये सामाजिक कारक निम्नलिखित हैं -

a) **घर एवं परिवार (House & Family)** - मनोवृत्तियों के निर्माण की प्रारंभिक प्रक्रिया घर एवं परिवार से ही शुरू होती है। बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। वह इसी आधार पर अपने माता-पिता, बड़े भाई-बहन से आत्मसात कर उनकी मनोवृत्तियों को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेता है।

b) **सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण (Social & Cultural Factors)** - अन्य प्रकारों के व्यवहारों की ही भाँति मनोवृत्ति के निर्माण व विकास पर संस्कृति व समाज का व्यापक रूप से प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समाज व संस्कृति की अपनी-अपनी मान्यताएं, विश्वास, मानक तथा विचारधाराएं होती हैं। व्यक्ति का समाजीकरण उन्हीं के संदर्भ में होता है। बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता है, उसका सामाजिक दायरा फैलता चला जाता है। वह कई सामाजिक व सांस्कृतिक समूहों का सदस्य बनता है। जिस समूह व संस्कृति के प्रति अधिक निष्ठा होती है, उसकी मनोवृत्तियों को वह अपना लेता है। उदाहरणार्थ - खाप पंचायत।

4) **सूचना व सम्प्रेषण (Information & Communication)** - मनोवृत्तियों के निर्माण में लोगों को उपलब्ध होने वाली सूचनाओं का अत्यधिक महत्व होता है। किसी व्यक्ति को किसी वस्तु के बारे में जैसी सूचनाएं प्राप्त होती हैं, उसी के अनुरूप वह मनोवृत्ति का निर्माण करता है। इसके अलावा संचार, सम्पर्क एवं प्रचार के साधन, जैसे - पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, इंटरनेट आदि से प्राप्त सूचनाएं भी मनोवृत्तियों को जन्म देने और उनका विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। व्यक्ति इन माध्यमों द्वारा प्रचारित विचारों से प्रभावित हो जाता है और धीरे-धीरे उसके विचार अपनाने लगता है। उदाहरणार्थ - संचार माध्यमों का उपयोग सकारात्मक मनोवृत्तियों, जैसे - भ्रूण हत्या को रोकने, ऑनर किलिंग को रोकने आदि पैदा किए जाने में किया जा सकता है।

5) **अभिप्रेरण (Motivation)** - मनोवृत्ति निर्माण में आवश्यकताओं तथा उनकी पूर्ति का अत्यधिक महत्व है। यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि जिन कार्यों, व्यवहारों, विचारों या वस्तुओं से व्यक्ति की आवश्यकताएं पूरी होती हैं, तो उनके प्रति उसकी सकारात्मक मनोवृत्ति स्थापित हो जाती है। जो उसकी आवश्यकता पूर्ति में बाधा उत्पन्न पहुंचाते हैं, उनके प्रति उसकी नकारात्मक मनोवृत्ति स्थापित हो जाती है।

6) **पूर्वाग्रह (Prejudices)** - मनोवृत्ति निर्माण में पूर्वाग्रह भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनका स्वरूप नकारात्मक होता है। इसका आशय किसी समूह या उसके सदस्यों के प्रति निर्मित आधारहीन मनोवृत्ति से है। विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग

एक-दूसरे के प्रति प्रायः नकारात्मक भावना विकसित कर लेते हैं, जैसे - हिन्दू और मुसलमान का एक-दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह।

- 7) **उद्दीपक पुनरावृत्ति तथा परिचितता (Stimulus Repetition & Familiarity)** - मनोवृत्ति निर्माण में उद्दीपकों के साथ परिचय तथा उनकी पुनरावृत्ति भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। विज्ञापन की पुनरावृत्ति से व्यक्ति संबंधित वस्तु से परिचित हो जाता है और उसके प्रति पसंदगी में वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ - जब दीपिका पादुकोण किसी साबुन का विज्ञापन करते हुए कहती है कि 'यह मेरी सुन्दरता का राज है', तो वे महिलाएं व युवतियां, जो उनकी सुन्दरता को आदर्श मानते हुए उनके जैसा दिखना चाहती हैं, आसानी से साबुन के प्रति अपनी मनोवृत्ति निर्मित कर लेती हैं।
- 8) **समूह संबंध (Group Affiliation)** - मनोवृत्ति निर्माण में समूहों की सदस्यता का भी व्यापक प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति जिस समूह का सदस्य होता है या जिसकी सदस्यता समय-समय पर ग्रहण करता है, उसमें उस समूह की विचारधारा, मान्यताओं, मूल्यों, विश्वासों एवं प्रतिमानों के अनुरूप मनोवृत्तियां भी विकसित होने लगती हैं।
- 9) **पुरस्कार एवं दण्ड (Reward & Punishment)** - जब किसी व्यक्ति के किसी कार्य की प्रशंसा व पुरस्कार अथवा आलोचना या दण्ड दिया जाए, तो वह व्यक्ति उस कार्य के प्रति उसी अनुरूप मनोवृत्ति विकसित कर लेता है। उदाहरणार्थ - यदि किसी की जान बचाने के फलस्वरूप किसी को पुरस्कार और पीड़ा पहुंचाने पर दण्ड देना।
- 10) **व्यक्तिगत अनुभव (Personal Experience)** - बहुत सी मनोवृत्तियां हमारे दैनिक जीवन के व्यक्तिगत अनुभव से बनती हैं। किन्तु कई बार हम दूसरों के अनुभवों से भी सीखते हैं।

□ मनोवृत्ति के प्रकार्य (Functions of Attitude)

सामाजिक मनोविज्ञान में मनोवृत्ति के कार्यों के लिए अनेक विद्वानों ने अनुसंधान किया है तथा यह जानने का प्रयास किया है कि लोग किसी मनोवृत्ति को क्यों धारण करते हैं और उन्हें धारण करने वाले व्यक्तियों को किस तरह प्रभावित करती हैं। इस संदर्भ में डेनियल काट्स ने महत्वपूर्ण शोध किया है। उनका मानना है कि व्यक्ति द्वारा किए गए विशिष्ट कार्यों के विश्लेषण से मनोवृत्तियों को बेहतर ढंग से पहचाना जा सकता है। कोई व्यक्ति किसी मनोवृत्ति को इसलिए धारण करता है, क्योंकि उससे उसे लक्ष्य प्राप्ति में सहायता मिलती है, अर्थात् - उनका कार्य सिद्ध होता है। वस्तुतः मनोवृत्ति व्यक्ति के जीवन को सकारात्मक एवं नकारात्मक ढंग से प्रभावित करती है। अतः इसके कार्यों को भी इसी दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। मनोवृत्ति के निम्नलिखित प्रकार्य हैं -

- 1) **संज्ञानात्मक/ज्ञान विषयक प्रकार्य (Cognitive Functions)** - प्रत्येक मनुष्य को व्यवस्थित, अर्थपूर्ण, स्पष्ट तथा सार्थक ज्ञान की आवश्यकता होती है, ताकि वह व्यावहारिक जीवन में समाज, राष्ट्र और विश्व के बारे में एक बेहतर समझ बना सके तथा उनसे सामन्जस्य भी स्थापित कर सके। हमारी इस आवश्यकता को पूरा करने में मनोवृत्ति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि मनोवृत्ति सकारात्मक हो, तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने ज्ञान व अनुभवों में वृद्धि करता है, क्योंकि उसके अन्दर जानने की जिज्ञासा होती है। इसके विपरीत मनोवृत्ति के नकारात्मक होने पर ज्ञानवर्धन की संभावना अत्यन्त कम होती है।

इसके अलावा विश्व में अनन्त ज्ञान व सूचनाएँ हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हमें सभी सूचनाओं के बारे में ज्ञान हो और सामान्य जीवन जीने के लिए न ही इसकी आवश्यकता है। अतः नकारात्मक मनोवृत्ति इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिन वस्तु, विचार, व्यक्ति या विषय के ज्ञान की हमें आवश्यकता नहीं होती है, उसके बारे में हमारी नकारात्मक मनोवृत्ति होने से हम उसके प्रति लापरवाह बने रहते हैं। इस प्रकार कई बार नकारात्मक मनोवृत्ति व्यर्थ व अनुपयोगी सूचनाओं से बचा लेती है।

- 2) **उपयोगितावादी प्रकार्य (Utilitarian Functions)** - मनोवृत्ति का उपयोगितावादी कार्य ही यह है कि वह वस्तु, विचार, व्यक्ति या विषय की उपयोगिता के आधार पर हमें यह बताता है कि हमारे लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है। जिस कार्य से व्यक्ति को लाभ या पुरस्कार मिलता है या फिर मिलने की संभावना रहती है, वह उसे बार-बार करने की कोशिश करता है, लेकिन जिस कार्य से दण्ड मिलता है या मिलने की संभावना होती है, वह जैसे कार्यों को करने से बचता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जिन वस्तुओं और व्यक्तियों से हमें पुरस्कार मिलता है, उनके प्रति हमारी मनोवृत्ति सकारात्मक होती है। दूसरी ओर जिन वस्तुओं और व्यक्तियों से हमें दण्ड या नुकसान का डर होता है, उनके प्रति हमारी मनोवृत्ति नकारात्मक होती है। इस प्रकार इस मनोवृत्ति का मुख्य कार्य यह है कि वह पुरस्कार पाने या दण्ड से बचने के साधन के रूप में कार्य करती है।

- 3) **आत्म-रक्षात्मक प्रकार्य (Ego-Defensive Functions)** - हमारी मनोवृत्तियां कई बार हमें हमारे अन्तर्द्वन्द से निकालकर हमारे सम्मान की रक्षा का कार्य करती है। चिंता, निराशा, दुःख, क्लेश, असफलता आदि से अपनी आत्म-रक्षा करने के लिए व्यक्ति संघर्ष करता है तथा नई मनोवृत्ति विकसित कर लेता है। इससे उसकी क्षमताएं बढ़ जाती हैं तथा वह जीवन के कटु सत्यों को आसानी से स्वीकार कर लेता है। इसके अलावा कई लोग अपने किए गए गलत कार्यों को न्यायसंगत ठहराने व अपराध-बोध से बचाव के लिए रक्षात्मक तरीकों का प्रयोग करते हैं। यह भी मनोवृत्ति का आत्म-रक्षात्मक कार्य है।
- 4) **मूल्य अभिव्यक्ति प्रकार्य (Value Expressive Functions)** - मनोवृत्तियां हमारे मूल्यों को व्यक्त करने में हमारी सहायता करती हैं, जिससे व्यक्ति स्वयं को बेहतर तरीके से समझ पाता है। हम अपनी मनोवृत्तियों के आधार पर ही यह समझ पाते हैं कि हमारे मूलभूत मूल्य क्या हैं? मनोवृत्ति की यह अभिव्यक्ति सांकेतिक भी हो सकती है, जैसे - ओलंपिक खेलों में यदि कोई भारतीय झंडा लहरा रहा है, तो हम समझ सकते हैं कि वह भारतीय टीम का समर्थक है।
- 5) **सामाजिक पहचान प्रकार्य (Social Identity Functions)** - मनोवृत्ति का एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि इसके माध्यम से व्यक्ति को सामाजिक पहचान मिलती है। यदि कोई व्यक्ति सकारात्मक भाव से समाज हित में परोपकारी कार्य करता है, तो समाज उसकी प्रशंसा करता है और यदि कोई व्यक्ति समाज विरुद्ध कार्य करता है, तो समाज उसकी आलोचना करता है। स्पष्ट है कि दोनों ही स्थितियों में मनोवृत्ति किसी व्यक्ति की सामाजिक पहचान स्थापित करती है।

□ मनोवृत्ति एवं सम्बन्धित अवधारणाएं (Attitude & Related Concepts)

कुछ ऐसे भी सम्प्रत्य हैं, जो मनोवृत्ति से संबंधित हैं, जो निम्नलिखित हैं -

- 1) **मनोवृत्ति एवं मत (Attitude & Opinion)** - मनोवृत्ति एवं मत घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। मत का आशय किसी विचार, विश्वास या आस्था से है, जिसमें पूर्ण निश्चितता नहीं पाई जाती है। मत अस्थायी होता है, यह एक तरह का विश्वास है और इसमें मनोवृत्ति की तुलना में परिमार्जन की संभावना अधिक रहती है (Opinion is a belief particularly one that is tentative and still open to modification)। इसके विपरीत मनोवृत्ति अपेक्षाकृत स्थायी होती है तथा इसके कारण सम्बन्धित वस्तु या व्यक्ति के प्रति सक्रिय रूप में व्यवहार किया जाता है। अभिवृत्ति की भाँति मत में भी संज्ञानात्मक घटक पाया जाता है, परन्तु मत में अन्य घटक नहीं पाए जाते हैं। इनमें कुछ अन्तर इस प्रकार हैं -
- मत में संज्ञानात्मक पक्ष ही पाया जाता है, जबकि मनोवृत्ति में भाव एवं क्रिया प्रवृत्ति भी पाई जाती है।
 - मत अपेक्षाकृत अस्थायी होता है, जबकि मनोवृत्ति अपेक्षाकृत स्थायी होती है।
 - मनोवृत्ति से व्यवहार की दिशा तथा तीव्रता निश्चित की जा सकती है, जबकि मत से नहीं। व्यक्ति एक निश्चित मत रखते हुए भी बहुत सक्रिय होगा, यह आवश्यक नहीं है।
 - मनोवृत्तियां सामाजिक अन्तर्क्रियाओं के आधार पर स्वतः बनती रहती हैं, उनके लिए बहुत चेतन प्रयास नहीं करना पड़ता है, जबकि मत का निर्माण जानबूझकर चेतन स्तर पर किया जाता है।
- 2) **मनोवृत्ति एवं मूल्य (Attitude & Values)** - मनोवृत्ति एवं मूल्य भी परस्पर सम्बन्धित संप्रत्यय हैं। मूल्य का आशय किसी समूह या संस्कृति के सदस्यों द्वारा धारित आचरण की वांछित अवस्था के बारे में विचार से है (Values are ideas about desirable states affairs shared by members of a group of culture)। मूल्य का आशय किसी वस्तु या विचार के साथ सम्बद्ध सकारात्मक या नकारात्मक भाव से है (Value is positive or negative affect attached to an object or idea)। मनोवृत्ति एवं मूल्य दोनों ही सीखे जाते हैं, सामान्यतः दोनों ही स्थायी होते हैं, एक बार निर्मित हो जाने के पश्चात् इनमें आसानी से परिवर्तन नहीं होता है, दोनों ही व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि मनोवृत्ति एवं मूल्य सम्बन्धित तो हैं, परन्तु उनमें काफी असमानता भी है, जो निम्नलिखित हैं -
- मूल्य में भावात्मकता की प्रधानता होती है, जबकि मनोवृत्ति में अन्य घटक (संज्ञान एवं क्रिया प्रवृत्ति) भी महत्वपूर्ण होती है।
 - किसी समूह या संस्कृति के सदस्यों में अन्य वस्तुओं के प्रति एक जैसे विचार का पाया जाना मूल्य का द्योतक है, जबकि लोगों की मनोवृत्तियों में असमानता भी पाई जाती है।

- c) मनोवृत्ति प्रायः सकारात्मक या नकारात्मक होती है, जबकि मूल्य के अनेक प्रकार हो सकते हैं, जैसे - राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, सैद्धान्तिक आदि।
- d) मनोवृत्ति की तुलना में मूल्य अधिक स्थायी होते हैं, उन्हें परिवर्तित करना कठिन होता है।
- e) व्यक्ति जिस विचार या वस्तु को महत्व देता है, उसके प्रति तादात्म्य स्थापित कर लेता है, जैसे - परोपकारी व्यक्ति में दूसरों की सहायता तथा उनकी समस्याओं का स्वयं से सम्बद्ध करने की प्रवृत्ति होती है। मनोवृत्ति में एसा होना आवश्यक नहीं है।

3) **मनोवृत्ति एवं विश्वास (Attitude & Belief)** - मनोवृत्ति एवं विश्वास दो अलग सम्प्रत्यय होते हुए भी परस्पर सम्बन्धित हैं। विश्वास एक प्रकार का संज्ञान ही है। इसका निर्माण किसी वस्तु, विचार या व्यक्ति के बारे में किया जाता है। विश्व के किसी पक्ष के प्रति व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण एवं संज्ञानों के अपेक्षाकृत स्थायी संगठन को विश्वास कहा जाता है (A belief is an enduring organization of perceptions and cognitions about some aspect of the individual's world)। विभिन्न वस्तुओं के बारे में जो विचार या संज्ञान बनता है, उसे ही विश्वास कहते हैं (Beliefs are cognitions to thoughts about the characteristics to the objects)। मनोवृत्तियों के निर्माण में विश्वास का महत्वपूर्ण योगदान है। इनमें निम्नलिखित अन्तर हैं -

- a) विश्वास में मूलतः संज्ञानात्मक पक्ष, अंशतः व्यवहारात्मक पक्ष तथा भावात्मक पक्ष अनुपस्थित होता है, जबकि मनोवृत्ति सामान्यतः तीनों पक्षों का योग होता है।
- b) प्रत्येक मनोवृत्ति के निर्माण में एक विश्वास सन्निहित होता है, वह विश्वास ही उसका संज्ञानात्मक पक्ष होता है। किन्तु विश्वास के लिए अनिवार्य नहीं है कि वह किसी मनोवृत्ति से संबंधित हो।
- c) मनोवृत्ति की तुलना में विश्वास कम परिवर्तनशील होता है।
- d) विश्वास में भावात्मक घटक का कोई विशेष महत्व नहीं होता है।
- e) मनोवृत्ति में प्रेरणा तथा दिशा-निर्देश का गुण होता है, विश्वास में ऐसा प्रायः कम ही देखा जाता है।
- f) विश्वास का निर्माण, कल्पना या अंधविश्वास पर निर्भर करता है, जैसे - ईश्वर है, जबकि मनोवृत्तित्व अनुभव पर आधारित होती है।
- i) विश्वास की तुलना में मनोवृत्ति अधिक व्यापक अवधारणा है।

4) **मनोवृत्ति एवं प्रेरणा (Attitude & Motivation)** - मनोवृत्ति एवं प्रेरणा में भी सम्बन्ध पाया जाता है। अभिप्रेरणा सम्प्रत्यय का उपयोग व्यवहार में दिशा एवं तीव्रता की व्यख्या के लिए किया जाता रहा है (Motivation is a concept that has long been used to account for direction the intensity of behaviour)। अभिप्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार को दिशा प्रदान करती है तथा लक्ष्य प्राप्त होने तक व्यवहार में निरन्तरता का बने रहना अभिप्रेरणा पर ही निर्भर करता है। चूँकि मनोवृत्तियाँ भी व्यवहार को दिशा निर्देशित करती हैं। इसी कारण इन सम्प्रत्ययों में काफी घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। फिर भी इनमें निम्नलिखित अन्तर हैं -

- a) मनोवृत्तियाँ अपेक्षाकृत स्थायी होती हैं, जबकि अभिप्रेरणा का उत्पन्न होना आवश्यकता (Need) पर निर्भर करता है।
- b) आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर अभिप्रेरणा का प्रभाव समाप्त हो जाता है, जबकि मनोवृत्तियाँ स्थायी रूप से व्यवहार को प्रभावित करती रहती हैं।
- c) अभिप्रेरणा जन्मजात और अर्जित दोनों ही प्रकार की होती हैं, जबकि मनोवृत्तियाँ केवल अर्जित ही होती हैं।
- d) अभिप्रेरणा में संज्ञानात्मक घटक की भूमिका कम और मनोवृत्ति में अधिक होती है।
- e) अभिप्रेरणा में क्रियात्मक पक्ष (Conative Aspect) का महत्व अधिक प्रदर्शित होता है, जबकि मनोवृत्ति में सभी 3 घटक महत्वपूर्ण होते हैं।
- f) अभिप्रेरणा का क्षेत्र सीमित और मनोवृत्तियों का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है।

5) **मनोवृत्ति एवं रूचि (Attitude & Interest)** - मनोवृत्ति एवं रूचि दोनों का संबंध व्यक्तित्व से है। दोनों ही जन्म-जात न होकर अर्जित प्रक्रियाएं हैं, किन्तु इनकी प्रकृति एवं व्यवहार में अन्तर है। रूचि से तात्पर्य है कि कोई व्यक्ति एक से अधिक विकल्पों की उपस्थिति में किसी प्रकार की क्रियाएं करने के लिए आन्तरिक रूप से प्रेरित होता है। सरल शब्दों में रूचि से हमारा आशय किसी विशेष चाह से होता है। मनोवृत्ति एवं रूचि में निम्नलिखित अन्तर हैं -

- रूचि में हम किसी व्यक्ति, विचार या वस्तु के प्रति विशेष लगाव के कारण एक ही दिशा की ओर बढ़ते हैं, जबकि मनोवृत्ति में सकारात्मक व नकारात्मक दोनों दिशाओं में बढ़ा जा सकता है।
- रूचि प्रायः सकारात्मक विचार होता है, जबकि मनोवृत्ति में अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों तरह के विचार होते हैं।
- मनोवृत्ति का क्षेत्र रूचि के क्षेत्र की अपेक्षा अधिक व्यापक है। रूचि में व्यक्ति की प्रतिक्रिया उसी तक सीमित रहती है, जिसमें उसे रूचि है।
- रूचि का प्रयोग अधिकतर व्यवसायिक एवं शैक्षणिक क्षेत्र में होता है, जबकि मनोवृत्ति दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में प्रयुक्त होती है।

□ मनोवृत्ति परिवर्तन (Attitude Change)

सामान्यतः मनोवृत्तियां अर्जित की जाती हैं। अतः उचित परिस्थितियां उत्पन्न करके इन्हें अपेक्षित दिशा या मात्रा में परिवर्तित भी किया जा सका सकता है। किन्तु कभी-कभी यह परिवर्तन कठिन भी हो जाता है, विशेषकर संतुष्टिदायक मनोवृत्तियों को परिवर्तित करने में। इसके अलावा विपरीत दिशा में भी परिवर्तन कठिन होता है, जैसे - अनुकूल मनोवृत्ति को प्रतिकूल या प्रतिकूल मनोवृत्ति को अनुकूल बनाना कठिन होता है। किन्तु ऐसी ही मनोवृत्तियां, जो व्यक्ति के लिए कम महत्वपूर्ण हैं, उन्हें परिवर्तित करना सरल होता है।

♦ मनोवृत्ति परिवर्तन के प्रकार (Kinds of Attitude Change)

मनोवृत्ति परिवर्तन के मुख्यतः 2 प्रकार हैं -

- 1) अनुकूल/संगत परिवर्तन (Congruent Change)** - यदि मनोवृत्ति परिवर्तन वर्तमान मनोवृत्ति की दिशा में है, तो इसे अनुकूल परिवर्तन कहते हैं, अर्थात् - सकारात्मक से और अधिक सकारात्मक या नकारात्मक से और अधिक नकारात्मक। इससे स्पष्ट है कि इस तरह के परिवर्तन की दशा में मनोवृत्ति की वर्तमान तीव्रता में वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ - भारत का अमेरिका के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का और अधिक सकारात्मक होना या पाकिस्तान के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति में और अधिक वृद्धि होना।
- 2) प्रतिकूल/असंगत परिवर्तन (Incongruent Change)** - यदि मनोवृत्ति परिवर्तन वर्तमान मनोवृत्ति की दिशा के विपरीत दिशा में होता है, तो इसे प्रतिकूल परिवर्तन कहा जाएगा, अर्थात् - अत्यधिक नकारात्मक से कम नकारात्मक होना और अत्यधिक सकारात्मक से कम सकारात्मक होना या सकारात्मक से नकारात्मक और नकारात्मक से सकारात्मक होना।

♦ मनोवृत्ति परिवर्तन के निर्धारक (Determinants of Attitude Change)

- 1) समूह संबंधन (Group Affiliation)** - मनोवृत्ति निर्माण की भाँति मनोवृत्ति परिवर्तन में भी समूह संबंधन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि किसी मनोवृत्ति को समूह का व्यापक समर्थन प्राप्त है तथा व्यक्ति संबंधित समूह का सदस्य है, तो ऐसी मनोवृत्ति में प्रतिकूल परिवर्तन उत्पन्न करना कठिन होगा। किन्तु इसमें अनुकूल परिवर्तन सरलता से उत्पन्न किया जा सकता है।
- 2) नव-समूह संबंधन (New Group Affiliation)** - यदि कोई व्यक्ति किसी नए समूह में प्रवेश करता है या उसका सदस्य बनता है, तो उसकी वर्तमान मनोवृत्ति प्रणाली में परिवर्तन की संभावना प्रबल हो जाती है। वह नए समूह में सम्मान पाने के लिए तथा समूह का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए समूह के मान्यताओं तथा नियमों को आत्मसात करता है। इस कारण उसकी पुरानी मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है। वह नए समूह के सदस्यों के अनुरूप मनोवृत्ति विकसित करने लगता है।
- 3) बाधित सम्पर्क (Enforced Contact)** - बाधित सम्पर्क से तात्पर्य है कि यदि ऐसे लोगों को, जिनमें परस्पर मेल नहीं है, एकसाथ रहने के लिए बाध्य कर दिया जाए या उन्हें कुछ समय तक एकसाथ रहने का अवसर प्रदान किया जाए, तो वे एक-दूसरे को निकट से समझने का प्रयत्न करेंगे। इससे उनकी नकारात्मक मनोवृत्तियां कमजोर पड़ सकती हैं और

सकारात्मक मनोवृत्ति का विकास होगा। जैसे - यदि हिन्दू एवं मुसलमान छात्रों को एकसाथ रखा जाए, तो वे एक-दूसरे को समझने का अवसर पाएंगे और उनके बीच की दूरी घट सकती है। बाधित सम्पर्क से उनमें धीरे-धीरे मैत्री भाव बढ़ सकता है और एक-दूसरे के बारे में पूर्वाग्रह एवं रूढ़धारणाएं परिवर्तित हो सकती हैं।

- 4) **अपेक्षित भूमिका निर्वाह (Required Role Playing)** - बाधित सम्पर्क की ही भाँति अपेक्षित भूमिका निर्वाह भी नकारात्मक मनोवृत्तियों को सकारात्मक मनोवृत्तियों में परिवर्तित करने की अच्छी तकनीक है। उदाहरणार्थ - कोई व्यक्ति अन्य जातियों के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति रखता है, किन्तु यदि उससे व्यापारी की भूमिका निर्वाह करवाई जाए, तो वह अपने व्यापार को बनाने के लिए विभिन्न जातियों के लोगों से विनम्र व्यवहार करेगा। इससे उसका दृष्टिकोण अन्य जातियों के प्रति अनुकूल हो सकता है। इसी प्रकार एक शिक्षक से अपेक्षा की जाती है कि अपने छात्रों के प्रति जाति, लिंग या धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। स्पष्ट है कि यदि व्यक्ति से एक निश्चित प्रकार की भूमिका का निर्वाह करवाया जाए, तो उसकी मनोवृत्ति में अपेक्षित दिशा में परिवर्तन होगा।
- 5) **अन्तर-सांस्कृतिक संपर्क (Cross-Cultural Contacts)** - मनोवृत्ति के निर्माण तथा परिवर्तन में संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति व्यवहार की वही पद्धति को अपनाता है, जिसे उसकी संस्कृति स्वीकृति या अनुमोदन प्रदान करती है। अलग-अलग संस्कृतियों के लोग एक ही विषय पर अलग-अलग मनोवृत्ति रखते हैं। यदि विभिन्न संस्कृतियों के लोगों में परस्पर मेलजोल का अवसर उपलब्ध कराया जाए, तो उन्हें एक-दूसरे को समझने का प्रत्यक्ष अवसर प्रदान होगा, जिससे मनोवृत्ति में भी परिवर्तन होगा। इसके अलावा एक ही संस्कृति में ही समय के साथ परिवर्तन आ जाता है। अतः स्वाभाविक है कि उस संस्कृति से जुड़े लोगों की मनोवृत्ति में भी परिवर्तन हो जाएगा।
- 6) **जन-माध्यम एवं सम्प्रेषण (Mass-Media & Communication)** - विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को प्रसारित करने के ऐसे माध्यम जो कम से कम समय तक अधिक से अधिक लोगों तक सूचना पहुंचा सकते हैं, उन्हें जन संचार का माध्यम कहा जाता है। रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र, पत्रिकाएं, इंटरनेट आदि से लोगों के विचारों एवं भावनाओं में अपेक्षित रूप से परिवर्तित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ - परिवार नियोजन तथा अन्य प्रकार की सामाजिक समस्याओं को नियंत्रित करने में सरकार जन-माध्यम का प्रयोग करती है, ताकि लोगों की मनोवृत्ति में सकारात्मक बदलाव लाया जा सके।
- 7) **प्रतिष्ठा संसूचन (Prestige Suggestion)** - मनोवृत्तियों को परिवर्तित करने में संसूचन (सुझाव) का विशेष महत्व है। यदि समाज के प्रतिष्ठित लोगों द्वारा वैचारिक परिवर्तन का सुझाव दिया जाए, तो परिणाम और भी उत्साहवर्धक प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ - महत्मा गांधी द्वारा अस्पृश्यता का विरोध, अन्ना हजारे द्वारा भ्रष्टाचार का विरोध, अमिताभ बच्चन द्वारा पल्स पोलिया का विज्ञापन आदि।
- 8) **व्यक्तित्व परिवर्तन की तकनीकें (Personality Change Techniques)** - व्यक्तियों के व्यक्तित्व को परिवर्तित करके भी उनकी प्रतिकूल मनोवृत्तियों को परिवर्तित किया जा सकता है। यद्यपि यह एक कठिन प्रक्रिया है, क्योंकि एक बार व्यक्तित्व का विकास हो जाने पर व्यक्ति की मनोवृत्तियां भी उसी रूप में विकसित होती है। इस संदर्भ में विज्ञान व प्रौद्योगिकी विकास ने कई तकनीकों का विकास किया है, जिनके माध्यम से व्यक्तित्व में सकारात्मक बदलाव लाया जा सकता है। उदाहरणार्थ - सटीक एवं प्रमाणिक तथ्य उपलब्ध कराकर व्यक्ति के ज्ञानात्मक (संज्ञानात्मक) पक्ष में बदलाव लाया जा सकता है। क्रीड़ा चिकित्सा (Play Therapy) के माध्यम से आक्रामकता तथा असांजिक व्यवहार को नियंत्रित किया जा सकता है।

□ मनोवृत्ति एवं व्यवहार में संबंध (Relation between Attitude & Behaviour)

सामान्यतः यह माना जाता है कि व्यक्ति वही व्यवहार करता है, जैसी उसकी मनोवृत्ति होती है। किन्तु मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए विभिन्न शोध इस धारणा का खण्डन करते हैं। कभी-कभी ऐसे अवसर एवं परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं कि मनोवृत्ति एवं व्यवहार में अन्तर आ जाता है। हम मनोवृत्ति के विपरीत व्यवहार करने लगते हैं, तो कई बार व्यवहार ही मनोवृत्ति को निर्धारित करता है। वस्तुतः मनोवृत्ति व व्यवहार का संबंध अत्यधिक जटिल है। किसी मनोवृत्ति का व्यवहार में परिवर्तित होना अनेक कारणों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कई कारण व परिस्थितियां मनोवृत्ति के अनुरूप व्यवहार करने में बाधा उपस्थित करती हैं, जो निम्नलिखित हैं -

- 1) **सामाजिक दबाव (Social Pressure)** - सामाजिक दबाव किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारक है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा उसे सामाजिक नियमों, परम्परा एवं मानकों के अनुरूप व्यवहार करना पड़ता है। कई बार व्यक्ति मनोवृत्ति व्यक्तिगत रूप से समाज के नियमों, परम्पराओं या मानकों से असंगत होती है, किन्तु सामाजिक दबाव के कारण वह अपनी मनोवृत्ति को व्यवहार रूपान्तरित नहीं कर पाता है। उदाहरणार्थ - अन्तर जातीय विवाह, धर्मांतरण। उल्लेखनीय है कि एक रूढ़िवादी समाज में व्यक्ति के मनोवृत्ति की व्यवहार में परिवर्तित होने की संभावना कम रहती है, जबकि प्रगतिशील समाज में सामाजिक दबाव कम होने के कारण व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल व्यवहार कर पाता है।
- 2) **बाध्यता (Code of Conduct)** - इसका आशय व्यक्ति के क्रिया-कलाप को किसी नियम द्वारा बाधित किए जाने से है। भले ही वह उसकी मनोवृत्ति के अनुकूल हो या न हो। उदाहरणार्थ - सार्वजनिक स्थल पर धूम्रपान निषेध, गाड़ी चलाते समय हेलमेट पहनने की बाध्यता आदि।
- 3) **मूल्यांकन (Evaluation)** - जब व्यक्ति ऐसी स्थिति में होता है, जहां उसके व्यवहार को दूसरे व्यक्ति देख रहे हो, तो वह व्यक्ति दूसरों की अपेक्षा के अनुरूप ही व्यवहार करता है। ऐसी स्थिति में उसके व्यवहार से वास्तविक मनोवृत्ति प्रकट नहीं होती है। उदाहरणार्थ - साक्षात्कार के समय, विवाह के लिए वर या वधू का चुनाव करते समय आदि।
- 4) **आवश्यकता (Need)** - जब व्यक्ति ऐसी स्थिति में होता है, जहां उसे अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों से कोई आवश्यकता या जरूरत होती है, तो ऐसी स्थिति में उसके किए गए व्यवहार से वास्तविक मनोवृत्ति प्रकट नहीं होती है। उदाहरणार्थ - नेताओं द्वारा चुनाव के समय जनता से लोकलुभावन वादे करके वोट मांगना।
- 5) **व्यक्तित्व (Personality)** - व्यक्ति का व्यक्तित्व भी मनोवृत्ति व व्यवहार के संबंध को प्रभावित करता है। व्यक्तित्व 2 तरह के हो सकते हैं - अन्तर्मुखी (Introvert) एवं बहिर्मुखी (Extrovert)। बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति से ज्यादा संभावना है कि वह अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल व्यवहार करेगा।
- 6) **महत्वाकांक्षा (Aspiration)** - महत्वाकांक्षी व्यक्ति सदैव अपना व्यवहार अपने लक्ष्य को ध्यान में रखकर करेगा। भले ही वास्तविकता में वह वैसी मनोवृत्ति न रखता हो। सकारात्मक मनोवृत्ति वाले व्यक्ति भी कई बार आगे बढ़ने की चाहत में अनैतिक व्यवहार करते हैं।
- 7) **अनुभव (Experience)** - सामान्यतः मनोवृत्ति का निर्माण व्यक्ति के अनुभव से निर्मित होता है। यदि मनोवृत्ति का निर्माण प्रत्यक्ष अनुभव से हुआ है, तो व्यवहार मनोवृत्ति के अनुकूल होगा। किन्तु यदि मनोवृत्ति का निर्माण अप्रत्यक्ष अनुभव से हुआ है, तो मनोवृत्ति इतनी दृढ़ नहीं होती है। अतः व्यवहार के साथ उसकी अनुकूलता कम होगी। उदाहरणार्थ - युद्ध के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति उस व्यक्ति की अधिक तीव्र होगी, जिसने युद्ध का प्रत्यक्ष अनुभव किया हो।
- 8) **समय अन्तराल (Time Interval)** - जब व्यक्ति समय के दबाव में कार्य करता है, तब वह प्रायः तत्काल निर्णयन हेतु मनोवृत्ति के अनुकूल व्यवहार प्रदर्शित करता है। समय के अभाव में उसके पास विभिन्न सूचनाओं तथा तथ्यों को सावधानीपूर्वक विश्लेषण हेतु पर्याप्त समय नहीं होता है। किन्तु यदि उसके पास पर्याप्त समय हो, तो ऐसी स्थिति में उसके अपनी पूर्व मनोवृत्ति के अनुसार व्यवहार करने की संभावना कम हो जाती है। उदाहरणार्थ - महिलाओं द्वारा शॉपिंग, विद्यार्थियों द्वारा कोचिंग चयन आदि।

□ मनोवृत्ति एवं विचार में संबंध (Relation between Attitude & Thought)

विचार मनोवृत्ति के संज्ञानात्मक पक्ष से संबंधित अवयव है। सामान्यतः मनोवृत्ति के निर्माण में विचार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, किन्तु कई बार मनोवृत्तियों का भी विचार पर प्रभाव पड़ता है। विचार मनोवृत्ति को कितना और किस तरह से प्रभावित करेंगे यह निर्भर करता है कि विचार की तीव्रता कितनी है, उसकी विश्वसनीयता कितनी हो, उसे प्रेषित करने वाले व्यक्ति की सम्प्रेषण क्षमता कैसी है, ग्रहण करने वाली की आयु एवं क्षमता क्या है आदि। विचार बच्चों की अपेक्षा वयस्कों की मनोवृत्ति को अधिक प्रभावित करेगा, क्योंकि उनमें सोचने और समझने की क्षमता अधिक विकसित होती है। इसके अलावा मनोवृत्ति पर उत्तम सम्प्रेषण कौशल का प्रभाव भी पड़ता है।

□ नैतिक मनोवृत्ति (Moral Attitude)

नैतिक मनोवृत्ति नैतिक मूल्य, नैतिक निर्णयों, नैतिक सिद्धान्तों आदि के संबंध में व्यक्ति के संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष को इंगित करती है। किसी व्यक्ति, विचार, वस्तु, विषय के सही या गलत, उचित या अनुचित होने के बारे में नैतिक निर्णय व्यक्त करना ही नैतिक मनोवृत्ति कहलाता है। दूसरे शब्दों में नैतिक मनोवृत्ति एक प्रकार का गुणात्मक मूल्यांकन (Qualitative Evaluation) है, जिसमें उचित या अनुचित का भाव निहित होता है। नैतिक मनोवृत्ति सभी मनुष्यों में पाई जाती है तथा इसकी के आधार पर लोग किसी वस्तु के सही व गलत होने के बारे में अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं।

वस्तुतः नैतिकता का संबंध मूल्यों से है, पुनः मूल्यों का संबंध संस्कृति से है। प्रत्येक संस्कृति का अपना-अपना सांस्कृतिक प्रतिरूप होता है, उसके अपने-अपने मूल्य, मानक और परम्पराएं होती हैं। अतः किसी संस्कृति के सदस्यों के मनोवृत्ति के निर्माण पर उसके सांस्कृतिक प्रतिरूपों का भी प्रभाव पड़ता है। इसी कारण जहां एक संस्कृति के लोगों की मनोवृत्ति में अधिक समानता पाई जाती है, वहीं भिन्न-भिन्न संस्कृति के लोगों की मनोवृत्ति में अधिक भिन्नता। नैतिक मनोवृत्तियों को 2 तरह देख सकते हैं -

- 1) **परिणामसापेक्ष नैतिक मनोवृत्ति (Consequentialistic Moral Attitudes)** - जब हम किसी कार्य के उचित व अनुचित होने का निर्धारण उसके परिणाम से करते हैं, तो परिणाम सापेक्षवादी मनोवृत्ति कहते हैं। इसका समर्थन उपयोगितावादी व अर्थक्रियावादी (Pragmatic) दार्शनिकों द्वारा किया जाता है। यह मनोवृत्ति उस स्थिति में मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती है, जब हमें अपने कार्यों को लेकर स्वयं को द्वंद की स्थिति में पाते हैं।
- 2) **परिणामनिरपेक्ष नैतिक मनोवृत्ति (Non-consequentialistic Moral Attitudes)** - यह मनोवृत्ति इस मान्यता पर आधारित है कि केवल परिणाम के आधार पर ही किसी कार्य के उचित या अनुचित होने का निर्धारण नहीं होना चाहिए, बल्कि कार्य के पीछे के उद्देश्यों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

□ राजनीतिक मनोवृत्ति (Political Attitude)

राजनीतिक विषयों, मूल्यों, सिद्धान्तों, विचारधाराओं आदि पर निर्मित प्रवृत्ति को ही राजनीतिक मनोवृत्ति कहते हैं। आमतौर पर किसी राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में हमारी जो स्थिति होती है, उसी के अनुरूप हम अपनी राजनीतिक मनोवृत्ति को विकसित करते हैं। उदाहरणार्थ - कुलीन, यथास्थितिवादी, संस्कृति, परम्पराओं आदि पर जोर देने वाले दक्षिणपंथी राजनीतिक मनोवृत्ति धारण करते हैं। इसके विपरीत जो आर्थिक-सामाजिक न्याय जैसे मूल्य पर अधिक जोर देने वाले वामपंथी राजनीतिक मनोवृत्ति धारण करते हैं। राजनीतिक मनोवृत्ति के द्वारा ही हम राजनीतिक व्यवस्थाओं के सही या गलत, राजनीतिक दलों की नीतियों, कार्यक्रमों, सरकार के कार्यों के बारे में राय बनाते हैं।

♦ राजनीतिक मनोवृत्तियों का निर्धारक करने वाले कारक

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में विभिन्न राजनीतिक मूल्यों, सिद्धान्तों एवं विचारधाराओं के आधार पर अलग-अलग राजनीतिक मनोवृत्ति विकसित कर लेते हैं, जैसे - उदारवाद-रूढ़िवाद, वामपंथ-दक्षिणपंथ, अराजकतावाद, समाजवाद, साम्यवाद, उग्रवाद, नक्सलवाद, माओवाद आदि। प्रत्येक बाद के पृथक् मूल्य, विश्वास एवं कार्य-पद्धति है। कई बार ऐसा देखा गया है कि कुछ लोग अपने प्रारंभिक जीवन में उग्रवादी होते हैं, किन्तु आगे चलकर उदारवादी राजनीतिक मनोवृत्ति विकसित कर लेते हैं। वस्तुतः किसी व्यक्ति की राजनीतिक मनोवृत्ति के निर्धारण में कई कारकों की भूमिका होती है, जो निम्नलिखित हैं -

- | | | |
|----------------------------|----------------------------|--|
| 1) परिवार। | 2) लिंग। | 3) धर्म। |
| 4) जाति। | 5) भाषा। | 6) शिक्षा। |
| 7) क्षेत्र। | 8) संचार एवं सूचना माध्यम। | 9) संदर्भ समूह। |
| 10) सामाजिक आर्थिक परिवेश। | 11) धन। | 12) दबाव समूह। |
| 13) भ्रष्टाचार। | 14) नेताओं का व्यक्तित्व। | 15) राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति। |

□ मनोवृत्ति की प्रशासन में उपयोगिता

भारत एक बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, जहां विभिन्न धर्म, जाति एवं संस्कृतियां निवास करती हैं। इन सभी धर्म, जाति एवं संस्कृतियों के अलग-अलग रीति-रिवाज, परम्पराएं, नैतिक नियम हैं, जिनके कारण अलग-अलग समुदाय में अलग-अलग मनोवृत्तियों का निर्माण

होता है। इनके निर्माण में पूर्वाग्रह एवं रूढ़ियुक्तियों का भी योगदान होता है, जिससे कई बार समाज में तनाव व संघर्ष भी देखने को मिलता है। ऐसी स्थिति में राज्य का कर्तव्य है कि वह शांति एवं व्यवस्था को बनाए रखे। साथ ही ऐसी नीतियों का निर्माण करें, जिससे सामाजिक-आर्थिक न्याय स्थापित हो और सभी का विकास हो। स्पष्ट है कि राज्य को इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निष्पक्षता से कार्य करना होगा। यदि राज्य के प्रशासक जातीय, भाषायी, धार्मिक, क्षेत्रीय आदि पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हैं तथा नकारात्मक मनोवृत्ति के साथ कार्य करते हैं, तो वहां कभी-भी न्यायपूर्ण समाज स्थापित नहीं हो सकता है।

इसके विपरीत यदि प्रशासक के मूल्य व मनोवृत्ति सकारात्मक होगी, तो प्रशासन में बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। सकारात्मक मनोवृत्ति वाले व्यक्ति में ईमानदारी, निष्ठा, शिष्टाचार, कर्तव्य पालन, उत्तरदायित्व आदि मूल्य होंगे, जो कुशल प्रशासन एवं संचालन के लिए महत्वपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ - वर्तमान में भ्रष्टाचार प्रशासन में बहुत गंभीर समस्या है। अनेक कानून बनने के बाद भी भ्रष्टाचार में कोई कमी नहीं हुई है। भ्रष्टाचार रोकने के लिए अत्यधिक कानून बनाने की बजाय यदि हम प्रशासकों की मनोवृत्ति को परिवर्तित कर दे, तो भ्रष्टाचार को नियंत्रित किया जा सकता है।

सकारात्मक मनोवृत्ति रखने वाला प्रशासक धर्म, जाति, लिंग, भाषा, क्षेत्र आदि सभी बातों से ऊपर उठकर अपने कर्तव्यों का वहन करेगा। वह प्रगतिशील व लोकतांत्रिक मूल्यों, जैसे - स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बन्धुत्व आदि की स्थापना के लिए प्रयास करेगा। इस प्रकार प्रशासन में हम सकारात्मक मनोवृत्ति वाले व्यक्तियों को शामिल करके बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।



प्रबोधन/अनुनयात्मक सम्प्रेषण Persuasive Communication

व्यक्तियों की भावनाओं, विचारों एवं मनोवृत्तियों को अपेक्षित दिशा तथा मात्रा में परिवर्तित करने में जिन कारकों को अहम भूमिका होती है, उनमें प्रबोधन/अनुनयात्मक सम्प्रेषण एक महत्वपूर्ण कारक है। प्रबोधन सम्प्रेषण का उद्देश्य किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के विचारों एवं मनोवृत्तियों को सम्प्रेषक की इच्छाओं के अनुरूप परिवर्तित करना होता है। यहां उल्लेखनीय है कि सम्प्रेषण और प्रबोधन में अन्तर है। सम्प्रेषण का आशय किसी संदेश या विचार को व्यक्तियों तक पहुंचाना है, जबकि प्रबोधन का उद्देश्य प्रेषित सूचना द्वारा व्यक्तियों के विचारों या मनोवृत्तियों को अपेक्षित रूप में परिवर्तित करना होता है।

सिकार्ड एवं बेकमैन के अनुसार 'किसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए व्यक्तियों की मनोवृत्ति या उनके व्यवहार को परिवर्तित करने हेतु प्रेषित सूचना को प्रबोधन सम्प्रेषण कहा जाता है' ('Persons are presented with information calculated to change their attitudes or behaviour')। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रबोधन सम्प्रेषण का आशय किसी निश्चित उद्देश्य के साथ किसी सूचना या संदेश को किसी अन्य व्यक्ति तक प्रेषित कर के उसके व्यवहार, विचार या मनोवृत्ति को अपनी योजनानुसार परिवर्तित करना होता है। मनोवृत्ति को परिवर्तित करने की यह एक महत्वपूर्ण तकनीक है। उदाहरणार्थ – सरकार द्वारा चलाए गए लिंग समानता संबंधी कार्यक्रम व लड़की बचाव जैसे अभियानों का परिणाम यह रहा कि 2001 की तुलना में 2011 में लिंगानुपात (Sex Ratio) में बढ़ोत्तरी हुई। इस प्रकार प्रबोधन सम्प्रेषण को निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है –

- 1) प्रबोधन सम्प्रेषण अपेक्षित दिशा में व्यवहार परिवर्तन की सुनियोजित पद्धति है।
- 2) इसकी प्रभाविकता सम्प्रेषक और सम्प्रेषण की विषयवस्तु की विशेषताओं से प्रभावित होती है।
- 3) इस पद्धति में सूचनाएं तार्किक एवं अधिकारिक रूप में प्रयुक्त की जाती है।
- 4) इसमें लोगों तक सूचनाओं को प्रेषित करने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पद्धति प्रयुक्त की जा सकती है।
- 5) ऐसी सूचनाओं से दर्शकों या श्रोताओं में ग्रहणशीलता बढ़ती है।
- 6) इस विधि में सूचनाओं या प्रचारों और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए विशिष्ट व्यक्तियों के नाम भी उनके साथ जोड़े जा सकते हैं।

□ प्रबोधन सम्प्रेषण के निर्धारक (Determinants of Persuasive Communication)

प्रबोधन सम्प्रेषण के निर्धारकों को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है –

- 1) **सम्प्रेषक/अनुनयकर्ता (Communicator/Persuader)** – प्रबोधन सम्प्रेषण को प्रभावशाली बनाने में सम्प्रेषक या सूचनादाता की अपनी विशेषताएं बहुत ही उपयोगी होती हैं। विभिन्न अध्ययनों से प्रमाणित हुआ है कि उच्च विश्वसनीयता वाले सम्प्रेषक मनोवृत्ति परिवर्तन कराने में अधिक सफल होते हैं। उदाहरणार्थ – एनर्जी ड्रिंक का विज्ञापन एक सामान्य व्यक्ति के बजाय एक खिलाड़ी द्वारा किया जाना ज्यादा विश्वसनीय प्रतीत होगा।

इसके अलावा सम्प्रेषक की व्यक्तिगत आकर्षकता (Attractiveness of Communicator) भी अभिवृत्ति या व्यवहार को प्रभावित करती है। इस प्रसंग में यह पाया गया है कि सम्प्रेषक स्वयं में खूबसूरत है तथा संवेगात्मक अपील करता है, तो लोगों का व्यवहार अपेक्षित रूप से प्रभावित होता है। उदाहरणार्थ – सौन्दर्य प्रसाधन का कोई विज्ञापन मेरी कॉम की बजाय प्रियंका चौपड़ा द्वारा किए जाने पर अधिक अपील करेगा।

सम्प्रेषक की आकर्षकता में समानता कारक (Similarity) द्वारा भी वृद्धि होती है। यदि दर्शक सम्प्रेषक के साथ किसी प्रकार की समानता अनुभव करते हैं, तो प्रबोधन सम्प्रेषण का प्रभाव बढ़ जाता है, जैसे – बच्चों को आकर्षित करने के लिए कार्टून द्वारा विज्ञापन।

- 2) **सम्प्रेषण की विषय-वस्तु (Content of Message)** – संदेश की विषय-वस्तु मनोवृत्ति को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण कारक है। वहीं संदेश प्रभावी होगा, जो श्रोताओं की भावनाओं को आन्दोलित/उत्तेजित कर दे। सामान्यतः ऐसा देखा गया है कि जब किसी डर के साथ कोई भावात्मक आग्रह जुड़ा होता है, तब यह ज्यादा प्रभावी होता है। इसके लिए 2 बातों का ध्यान रखना आवश्यक है –

- a) भावनाएं अत्यधिक तीव्र नहीं होनी चाहिए, क्योंकि तीव्र भावनाएं हमारी सोचने समझने की शक्ति को समाप्त कर देती हैं। अगर भावनाएं ज्यादा भयावह होंगी, तो लोग उसे संदेश को देखना ही बंद कर देंगे।
- b) यदि भावात्मक आग्रह के बाद व्यक्ति को कुछ ऐसा समाधान बताया जाए, जिससे वह अपने डर को दूर कर सके, तो ऐसा भावात्मक आग्रह ज्यादा सफल होगा।

उदाहरणार्थ – कैंसर रोगी की भयानक तस्वीरों के माध्यम से लोगों में तम्बाकू के प्रति भय पैदा करना, ताकि वह उसका सेवन न करें।

- 3) **सम्प्रेषण का माध्यम (Channel of Communication)** – प्रबोधन सम्प्रेषण या दी जाने वाली सूचनाओं से मनोवृत्ति परिवर्तन की सम्भावना इस तथ्य पर निर्भर करती है कि उन्हें प्रेषित करने का माध्यम क्या है? विभिन्न अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि मुखोन्मुख अनुनय या आमने-सामने की स्थिति (Face to Face) में सम्प्रेषण का अधिक प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ – बच्चों के व्यवहार परिवर्तन पर शिक्षकों के विचारों व सुझावों का प्रभाव अधिक पड़ता है। इसके अलावा ऐसी बहुत-सी सूचनाएं होती हैं, जिन्हें हम प्रत्यक्ष माध्यम से नहीं कह सकते हैं। अतः उसके लिए जन-संचार माध्यमों का प्रयोग किया जाता है।
- 4) **श्रोता या लक्षित व्यक्ति (Audience or Target Person)** – मनोवृत्ति परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारकों में श्रोता की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण होती है। किसी भी संदेश के प्रभावी होने के लिए यह बेहद जरूरी है कि श्रोता संदेश को अच्छी तरह समझने की स्थिति में हो। एक थके हुए, परेशान, दुःखी व्यक्ति के सामने देश का प्रभाव कम होगा। इसके अलावा श्रोता की बौद्धिक योग्यता, यौन भिन्नता, संज्ञानात्मक आवश्यकताएं, उम्र आदि प्रबोधन सम्प्रेषण को प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ – अधिक बुद्धिमान व्यक्ति सूचनाओं को शीघ्र समझ लेते हैं, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह उसके अनुरूप व्यवहार करेंगे। क्योंकि यदि उनके मूल्यांकन में सम्प्रेषण का लक्ष्य उचित नहीं, तो वह व्यवहार नहीं करेंगे। जबकि कम बुद्धिमान व्यक्ति सूक्ष्म मूल्यांकन न कर सकने के कारण शीघ्र ही अपेक्षित व्यवहार कर सकते हैं।
- 5) **सम्प्रेषण परिवेश (Communication Environment)** – सम्प्रेषण की विभिन्न प्रकार की सामाजिक एवं भौतिक परिस्थितियों में करना पड़ता है। ऐसे परिवेशीय कारकों द्वारा भी मनोवृत्ति प्रभावित होती है। सम्प्रेषण की प्रभाविकता इस बात पर निर्भर करती है कि सम्प्रेषण के समय व्यक्ति किसी परिवेश या स्थान पर है और उसके बारे में उसकी भावना या धारणा कैसी है? यदि सम्प्रेषण के समय परिवेश के साथ अनुकूल या सामन्जस्य अनुभव किया जाता है, तो सम्प्रेषण के प्रति रूचि बढ़ जाती है। इससे मनोवृत्ति परिवर्तन कराने में सफलता अधिक मिलती है।

अनुपालन Compliance

अनुपालन एक ऐसा व्यवहार है जिसका मनोवृत्ति परिवर्तन, अनुनयात्मक सम्प्रेषण, अनुरूपता एवं परोपकार या परमार्थ (Altruism) से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनुपालन को कृत्रिम या दिखावटी अनुरूपता या व्यवहार परिवर्तन भी कहा जाता है। क्योंकि अनुपालन की दशा में कोई व्यक्ति सम्प्रेषक के निर्देशों के अनुरूप व्यवहार में परिवर्तन कर सकता है, परन्तु वह आन्तरिक स्तर पर असहमत हो सकता है। उदाहरणार्थ – किसी व्यक्ति या समूह के दबाव के कारण कोई सुझाव या बात मान ली जाए, परन्तु आन्तरिक स्तर पर असहमति भी बनी रहे, तो इसे अनुपालन कहा जाएगा। अनुपालन से व्यवहार में उत्पन्न परिवर्तन में स्थायित्व नहीं रहता है। व्यक्ति भय, दण्ड, पुरस्कार, प्रशंसा या निन्दा आदि में से किसी कारण से व्यवहार अन्य लोगों की अपेक्षा के अनुरूप परिवर्तित कर लेता है। परन्तु वह भीतर-भीतर असहमत रह सकता है। अतः दबाव की दशा समाप्त होने पर व्यवहार में उत्पन्न हुई अनुरूपता भी समाप्त हो सकती है, क्योंकि असहमति होने पर व्यक्ति तनाव अनुभव करता है। वह उससे मुक्ति पाने के प्रयास में व्यवहार पुनः बदल सकता है।

पूर्वाग्रह एवं विभेद Prejudice & Discrimination

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और जिस समाज में वह रहता है, वह सामाजिक संबंधों का एक जाल है। सामाजिक संबंध अत्यन्त ही जटिल होता है और इनका स्वरूप अत्यन्त ही विस्तृत होता है। समाज में निर्मित होने वाले संबंधों का आधार व्यक्ति के वे व्यवहार हैं, जिनका संपादन सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति को करना पड़ता है। मनुष्य के व्यवहार भावनाओं पर आधारित होते हैं। भावनाएं 2 प्रकार की होती हैं – प्रतिकूल एवं अनुकूल।

प्रत्येक समाज या वर्ग के लोग एक-दूसरे के बारे में उसकी जाति, भाषा, रंग, लिंग, धर्म या नागरिकता के आधार पर अनेक प्रकार की अनुकूल या प्रतिकूल धारणाएं बना लेते हैं। उनकी धारणा सही है या गलत, इस बात पर ध्यान नहीं देते हैं। कई बार इन्हीं धारणाओं के आधार पर व्यक्ति भेदभावपूर्ण व्यवहार भी करता है। ऐसी धारणाओं को ही पूर्वाग्रह कहा जाता है। इनके कारण समाज में तनाव, झगड़ा, दंगा या प्रजातीय भेदभाव की समस्या उत्पन्न होती है।

□ पूर्वाग्रह का अर्थ (Meaning of Prejudice)

पूर्वाग्रह का सरलतम अर्थ है – किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि के बारे में जांच, वास्तविक अनुभव तथा समूचित ज्ञान से पहले ही मत अथवा धारणा का निर्माण कर लेना। पूर्वाग्रह शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के प्रेजुडिसियम (Prejudicium) शब्द से हुई है। इसका आशय पूर्व-निर्णय से है, अर्थात् – पहले से ही किसी के बारे में अपने विचारों का निर्धारण कर लेना पूर्वाग्रह है।

हार्डिंग के अनुसार 'यदि किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति में अन्य जातीय समूहों या वर्गों के प्रति तार्किकता, न्याय और मानवता का अभाव है, तो इसे पूर्वाग्रह कहा जाता है' ('Prejudice is defined as a failure of rationality, of a failure of justice, of a failure of human heartedness in an individual's attitude towards members of another ethnic group')। इसी प्रकार मायर्स का मानना है कि 'किसी समूह एवं उसके सदस्यों के प्रति निर्मित औचित्यविहिन नकारात्मक मनोवृत्ति ही पूर्वाग्रह है' ('Prejudice is an unjustifiable negative attitude toward a group & its individual members')।

स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह एक प्रकार की नकारात्मक मनोवृत्ति है, जिसका कोई भी तार्किक आधार नहीं होता है। इसमें संवेगात्मक मनोभाव, पक्षपात, आक्रामकता आदि की प्रबलता होती है। इसमें मानवता, वस्तुनिष्ठता एवं सत्यता का अभाव रहता है, जैसे – हिन्दू-मुस्लिमों की एक-दूसरे के प्रति धारणा, भारतीयों द्वारा अंग्रेजों को धोखेबाज मानना आदि।

□ पूर्वाग्रह की विशेषताएं (Characteristics of Prejudice)

- 1) **तार्किकता का अभाव (Failure of Rationality)** – पूर्वाग्रह तर्कों पर आधारित नहीं होते हैं। यह व्यक्ति के ठोस अनुभव तथा बौद्धिक आधारों पर आश्रित नहीं होते हैं। इनका निर्माण प्रायः रूढ़ियुक्त विचारधाराओं के आधार पर होता है। ये दोषपूर्ण, कठोर एवं दृढ़ होते हैं, इन्हें बदलना कठिन होता है।
- 2) **न्याय का अभाव (Failure of Justice)** – पूर्वाग्रह का न्याय से कोई संबंध नहीं होता है, जैसे – जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा या लिंग के आधार पर पूर्वाग्रह निर्मित कर लिए जाते हैं, जो अनुचित है। इससे समाज में विद्वेष तथा भेदभाव फैलता है।
- 3) **मानवता का अभाव (Failure of Human Heartedness)** – पूर्वाग्रह के कारण लोगों में मानवता की भावना घटती है। लोग दूसरों के प्रति उदासीनता, आक्रामकता, शत्रुता तथा अस्वीकार्यता का व्यवहार करते हैं। साम्प्रदायिक दंगे आज इसी कारण अधिक होते हैं।
- 4) **पूर्वाग्रह प्रायः नकारात्मक होते हैं (Prejudice are Often Negative)** – पूर्वाग्रह प्रायः नकारात्मक होते हैं, इसी कारण लोगों में एक-दूसरे वर्ग या सम्प्रदाय के प्रति असहिष्णुता, न्याय तथा मानवता का अभाव पाया जाता है।
- 5) **दोषपूर्ण सामान्यीकरण (Faulty Generalization)** – पूर्वाग्रह अवैध सामान्यीकरण के द्वारा बन जाते हैं, जो दोषपूर्ण होते हैं। यह एक ऐसा निष्कर्ष होता है, जिसमें पूरी परिस्थिति का उचित मूल्यांकन और विश्लेषण नहीं किया जाता है। इनमें दृढ़ता एवं अनम्यता होती है। लोग पूर्वाग्रह परिवर्तित नहीं करना चाहते हैं, जैसे – अगर हम किसी वर्ग के प्रति नकारात्मक विचार रखते हैं, तो उसके सभी सदस्यों को खराब ही मानेंगे। चाहे सभी लोग खराब हो अथवा न हो।

- 6) **सत्यता का अभाव (Failure of Reality)** - पूर्वाग्रह गलत सूचनाओं पर आधारित होते हैं। अतः इनका सत्यता से न तो मेल होता है और न ही किसी प्रकार का संबंध। उदाहरणार्थ - किसी जाति के लोगों को मुख, असभ्य या गंदा मानना।
- 7) **पूर्वाग्रह अर्जित होते हैं (Prejudice are Acquired)** - पूर्वाग्रह जन्म-जात नहीं होते, बल्कि अर्जित या सीखे हुए होते हैं। उदाहरणार्थ - प्रारंभ में बच्चों में आपस में भेदभाव नहीं पाया जाता है, परन्तु आगे चलकर वे एक-दूसरे के साथ भेदभाव करना सीख लेते हैं। उसमें सामाजिक अधिगम (Social Learning) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- 8) **पूर्वाग्रह भावात्मक होते हैं (Prejudice are Affective)** - पूर्वाग्रह में संवेगात्मक या भावात्मक विशेषता पाई जाती है, इसलिए इसकी तुलना मनोवृत्ति के भावात्मक घटक से की जाती है, अर्थात् - इसमें पसंदगी या नापसंदगी का भाव छिपा रहता है। इसके स्वरूप पर ही व्यक्ति का व्यवहार निर्भर करता है।
- 9) **मानसिक संतोष (Mentally Satisfaction)** - पूर्वाग्रह व्यक्ति को मानसिक संतोष प्रदान करती है, भले ही इसमें अनेक सामाजिक बुराइयां हो।

□ पूर्वाग्रह तथा उनके आधार पर विभेद (Prejudice & Discrimination)

पूर्वाग्रह जन्म-जात प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि यह एक सीखा हुआ व्यवहार है। व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया में कई तरह के पूर्वाग्रह का निर्माण होता है, जिनके आधार पर वह भेदभावपूर्ण व्यवहार करता है। पूर्वाग्रह अनेक प्रकार के होते हैं। अतः इनके आधार पर कई तरह के विभेद किए जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं -

- 1) **यौन पूर्वाग्रह (Sex Prejudices)** - विश्व के विभिन्न समाजों में आज भी पुरुषों एवं महिलाओं में भेदभाव देखा जाता है। पुरुषों को अधिक योग्य, सक्षम, विचारवान एवं प्रभावशाली माना जाता है, जबकि महिलाओं को दबू, असक्षम, कमजोर, घरेलू एवं कोमल, माना जाता है। उन्हें शांत, एकांतप्रिय व कम सामाजिक होने की सलाह दी जाती है। यदि कोई महिला योग्य निकल जाती है, तो उसे अपवाद मान लिया जाता है। इस प्रकार यौन आधारित पूर्वाग्रह का प्रभाव कई समाजों में आज भी पाया जाता है।
- 2) **शारीरिक पूर्वाग्रह (Bodily Prejudices)** - व्यक्तियों में शारीरिक संरचना, मुखाकृति, रंग-रूप, हाव-भाव आदि में भिन्नता पाई जाती है और इस भिन्नता के आधार पर पूर्वाग्रहों का विकास कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ - नीग्रो मोटे-काले व्यक्ति को असभ्य या झगड़ालू मान लेना। किसी मुखाकृति के प्रति आकर्षित होना, तो किसी मुखाकृति को देखकर घृणा का भाव आना।
- 3) **भाषा आधारित पूर्वाग्रह (Language based Prejudices)** - पूर्वाग्रह भाषा पर भी आधारित होते हैं। भाषा की विभिन्नता के कारण भी भेदभाव उत्पन्न होता है। लोग अपनी भाषा को अच्छी और दूसरे की भाषा को खराब मानते हैं या जिस भाषा का हमें ज्ञान नहीं होता, उसके प्रति हमारा नकारात्मक भाव होता है। कई बार भाषा की समानता के आधार पर मित्रता और असमानता के आधार पर बैमनस्य भी स्थापित हो जाता है।
- 4) **धार्मिक पूर्वाग्रह (Religious Prejudices)** - पूर्वाग्रह के विकास में धर्म का स्थान महत्वपूर्ण होता है। धार्मिक भिन्नताएं हर देश-काल में पाई जाती रही हैं। उदाहरणार्थ - भारत में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि प्रमुख धर्म हैं। विभिन्न धर्मावलंबी अपने-अपने धर्मों को सर्वश्रेष्ठ और दूसरे धर्म को निम्न मानते हैं। एक धर्म को मानने वाला व्यक्ति दूसरे धर्म के व्यक्ति से घृणा करता है और इस प्रकार उस धर्म के बारे में पूर्वाग्रह का निर्माण कर लेता है।
- 5) **संस्कृति आधारित पूर्वाग्रह (Culture based Prejudices)** - संस्कृति प्रत्येक समाज के जीवन की केन्द्र बिन्दु होती है। प्रत्येक देश और समाज की संस्कृति कुछ विशेषता लिए हुए होती है, जो दूसरे से भिन्न एवं अलग प्रतीत होती है। संस्कृति की भिन्नता के कारण व्यक्तियों में विभेद उत्पन्न हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ मानता है, तो वहीं दूसरे की संस्कृति की अवहेलना व निन्दा करता है।
- 6) **वेशभूषा आधारित पूर्वाग्रह (Dress based Prejudices)** - प्रत्येक व्यक्ति व समाज की वेशभूषा व खान-पान में अंतर पाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की ऐसी आदत होती है कि वह अपने पहनावे और खान-पान के तरीके को पसंद करता है, जबकि दूसरे के पहनावे और खान-पान से घृणा होती है। जैसे - शहरी लोग गांवों की वेशभूषा देखकर हंस पड़ते हैं

और उन्हें गवार या असभ्य कह देते हैं। उसी प्रकार गांव वाले शहर की वेशभूषा देखकर उन्हें बेशर्म व नग्नता पसंद कह देते हैं।

- 7) **प्रजातीय पूर्वाग्रह (Racial Prejudices)** - प्रजातीय पूर्वाग्रह हर देश व समाज में देखने को मिलता है। प्रजातीय दृष्टि से संसार के समस्त मानवों को कई वर्गों में विभाजित किया जाता है, जैसे - काकेशायड, मंगोलायड, नीग्रोयाड आदि। प्रजातीय भिन्नता सबसे बड़ा आधार व्यक्ति की शारीरिक भिन्नताएं होती हैं। इन प्रजातियों के मध्य विभिन्न भिन्नताओं के आधार पर घृणा व द्वेष का भाव उत्पन्न होता है, जिससे पूर्वाग्रह का निर्माण होता है।
- 9) **राजनीतिक पूर्वाग्रह (Political Prejudices)** - विश्व में कई प्रकार की राजनीतिक विचारधाराएं प्रचलित हैं, जैसे - उदारवाद, मार्क्सवाद, समाजवाद, गांधीवाद, अराजकतावाद आदि। ये विचारधाराएं एक-दूसरे के प्रति विभिन्न मुद्दों पर पूर्वाग्रह से ग्रस्त होती हैं। प्रत्येक विचारधारा अपने को श्रेष्ठ तथा दूसरे को निम्न साबित करने का प्रयास करती है।
- 10) **आर्थिक पूर्वाग्रह (Economic Prejudices)** - प्रत्येक समाज से आर्थिक दृष्टि से धनी व गरीब लोग पाए जाते हैं, उनमें एक-दूसरे के प्रति भेदभाव भी पाया जाता है। अमीर वर्ग गरीबों को निष्क्रिय, गैर-जिम्मेदार और आकांक्षाहीन मानते हैं, तो दूसरी तरफ गरीब वर्ग अमीरों को घोषक, मानवताविहीन एवं बेईमान मानते हैं।
- 11) **जातिगत पूर्वाग्रह (Casted Prejudices)** - भारत में अनेक जातियां और उप-जातियां निवास करती हैं। इन जातियों के भाषा, धर्म, संस्कृति, रीति-रिवाजों आदि में भिन्नताएं पाई जाती हैं। प्रत्येक जाति दूसरी जाति को हीन व संकीर्ण मानती है। इस हीन भावना व संकीर्णता के आधार पर जातिगत पूर्वाग्रह विकसित हो जाते हैं।

□ **पूर्वाग्रह का विकास एवं कारण (Development & Causes of Prejudices)**

पूर्वाग्रह एक नकारात्मक मनोवृत्ति है। अतः इसका विकास मनोवृत्ति के तीनों तत्वों के स्तर पर होता है - संज्ञानात्मक (विरोधी विचार), भावात्मक (घृणात्मक भावनाएं) एवं क्रियात्मक (विरोधी क्रियाएं)। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि पूर्वाग्रह क्यों बनते हैं? इसके अनेक कारण हैं, जो निम्नलिखित हैं -

• **पूर्वाग्रह विकास के सामाजिक कारण (Social Causes of Prejudice Development)**

- 1) **सामाजिक अधिगम (Social Learning)** - पूर्वाग्रहों के निर्माण में सामाजिक अधिगम या समाजीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रत्येक समाज में कुछ रूढ़ियां होती हैं, जो समाज में अशिक्षा व कुसंस्कारों को जन्म देती है। यह अशिक्षा व कुसंस्कार बालक के व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। इस प्रकार की अशिक्षा व कुसंस्कार पूर्वाग्रहों के निर्माण व विकास में सहायक होते हैं।
- 2) **सामाजिक असमानता (Social Inequality)** - प्रत्येक समाज में सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएं पाई जाती हैं। ये असमानताएं भी पूर्वाग्रहों का विकास करती हैं। सामाजिक विषमता के कारण ही पुरुष व महिला वर्गों में परस्पर पूर्वाग्रह पाया जाता है। अमीर वर्ग अपनी सम्पन्नता को अपनी योग्यता का परिणाम मानता है, जबकि गरीब इसे सामाजिक व्यवस्था का दोष मानता है। इस असमानता से इन वर्गों में एक-दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह की भावना बढ़ती है।
- 3) **संस्कृति व धर्म (Culture & Religion)** - पूर्वाग्रहों के निर्माण में संस्कृति एवं धर्म महत्वपूर्ण कारण हैं। संस्कृति एवं धर्म का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर जन्म से लेकर मृत्यु तक पड़ता है। लोग अन्य धर्म एवं संस्कृति को जाने बगैर अपने धर्म एवं संस्कृति को श्रेष्ठ मानते हैं। विभिन्न कुतर्कों के माध्यम से अन्य धर्मों को निम्न दिखाने का प्रयास करते हैं। विभिन्न धार्मिक नेता अपने स्वार्थ हेतु इस तरह के पूर्वाग्रहों को बढ़ाने में प्रोत्साहित करते हैं।
- 4) **अन्तः एवं बाह्य समूह (Ingroup & Outgroup)** - पूर्वाग्रह का निर्माण इस आधार पर भी होता है कि कौन अपने समूह, वर्ग या जाति का है और कौन दूसरे समूह, वर्ग या जाति का है। सामान्यतः अपने समूह के लोगों के प्रति लगाव तथा दूसरों के प्रति दूरी का भाव प्रदर्शित किया जाता है। इससे भेदभाव की भावना बढ़ती है और पूर्वाग्रहों को बढ़ावा मिलता है।
- 5) **संस्थागत समर्थन (Institutional Support)** - प्रायः यह अनुभव किया जाता है कि जिस समूह, जाति या धर्म में जो पूर्वाग्रह प्रचलन में होते हैं, उन्हें उसका उसके नेताओं का समर्थन मिलता रहता है। इससे लोग उनके अप्रभाव में भी बने रहते हैं। ये संस्थाएं कई बार अपने समूहों के गलत कार्यों की भी प्रशंसा करती हैं, जबकि दूसरे के अच्छे कार्यों की भी

आलोचना करते हैं। इस कारण से भी एक-दूसरे के प्रति पूर्वाग्रहों का निर्माण होता है।

♦ **पूर्वाग्रह विकास के मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes of Prejudice Development)**

- 1) **नैराश्य एवं आक्रामकता (Frustration & Aggression)** - किसी कारण से उत्पन्न कुण्ठा या निराशा पूर्वाग्रह का कारण बन सकती है और व्यक्ति लड़ाई, झगड़ा, मार-पीट पर उतारू हो सकता है। प्रायः किसी चीज से वंचित होने पर या इच्छानुसार कार्य न होने पर निराशा का भाव पैदा होता है। परिणामस्वरूप इससे संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों के प्रति पूर्वाग्रह पैदा हो जाता है।
- 2) **प्रतिस्पर्धा (Competition)** - प्रतिस्पर्धा भी पूर्वाग्रह को उत्पन्न करती है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि सक्षम वर्ग निम्न वर्ग को आगे बढ़ते देखना कम पसंद करता है।
- 3) **व्यक्तित्व (Personality)** - पूर्वाग्रहों के निर्माण में व्यक्तित्व कारक 2 दृष्टिकोण से महत्व रखते हैं।
 - a) **स्थिति एवं तादात्म्यकरण की इच्छा (Status & Identification Need)** - यदि किसी व्यक्ति को अपने समूह में विशिष्ट स्थिति प्राप्त है या उसे प्राप्त करने की इच्छा उसमें है, तो वह उस समूह के साथ तादात्म्यकरण स्थापित कर लेता है तथा अन्य लोगों से भेदभाव, इश्या एवं दूरी रखने लगता है। यदि व्यक्ति को लगता है कि उसकी स्थिति को खतरा है, तो भी वह लोगों के प्रति नकारात्मक धारणा निर्मित कर लेता है। इसी प्रकार विशेष स्थिति प्राप्त व्यक्ति स्वयं को श्रेष्ठ एवं दूसरों को निम्न समझने लगता है।
 - b) **निरंकुश व्यक्तित्व (Authoritarian Personality)** - सामान्यतः निरंकुश व्यक्तित्व के लोगों में पूर्वाग्रह की मात्रा अधिक पाई जाती है। निरंकुश व्यक्ति कठोर, जिद्दी, आक्रामक, प्रभुत्व पसंद आदि विशेषताओं से युक्त होता है। वह लोगों से अधीनता चाहता है। उसमें शत्रुता एवं बदला लेने की भावना भी अधिक पाई जाती है।
- 3) **आघातजन्य अनुभव (Traumatic Experiences)** - कई बार पूर्वाग्रह का विकास व्यक्ति के कष्टप्रद अनुभवों पर भी निर्भर करता है। उदाहरणार्थ - भारत के विभाजन के समय हुए खून-खराबे एवं साम्प्रदायिक दंगे आज भी लोगों के मन में हैं। उस समय उत्पन्न नकारात्मक भाव आज भी पूर्वाग्रह के निर्माण एवं सम्पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इसी तरह आघात पहुंचाने वाली अन्य घटनाएं भी पूर्वाग्रह निर्माण पर अपना प्रभाव डालती हैं।

□ **पूर्वाग्रह के हानि/परिणाम (Disadvantages/Consequences of Prejudices)**

- 1) प्रजातांत्रिक देशों में पूर्वाग्रह विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा मानी जाती है। विभिन्न प्रकार के भाषायी, जातिगत, धार्मिक, पूर्वाग्रह राष्ट्रीय विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। इससे देश भाषावाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकतावाद, अलगाववाद, क्षेत्रवाद आदि समस्याओं से ही संघर्ष करता है।
- 2) पूर्वाग्रह से समाज में द्वेष, शत्रुता, आक्रामकता एवं विघटन बढ़ता है तथा सामाजिक समरसता, सद्भाव एवं एकता को नुकसान पहुंचता है।
- 3) पूर्वाग्रह से उत्पन्न विनाश या कलह से सामाजिक प्रगति में बाधाएं आती हैं। कभी-कभी उनकी क्षतिपूर्ति नहीं हो पाती है, जैसे - धार्मिक पूर्वाग्रहों से उपजे साम्प्रदायिक दंगों में जन-धन की हानि।
- 4) पूर्वाग्रह विभिन्न रूढ़ियों एवं परम्पराओं पर आधारित होते हैं, जो व्यक्ति के वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं।
- 5) पूर्वाग्रह मंदविष (Slow Poison) की तरह कार्य करते हैं। यह राष्ट्र व समाज को भीतर ही भीतर खोखला करते हैं।

□ **पूर्वाग्रह को रोकने या कम करने के उपाय (Means of Preventing of Reducing Prejudices)**

विभिन्न समूहों में संबंधों को उचित रूप देने के लिए उनमें परस्पर व्याप्त पूर्वाग्रहों को दूर करना आवश्यक है। यह एक कठिन कार्य है, किन्तु असंभव नहीं है। अन्तर्समूह एवं जातीय पूर्वाग्रहों (Intergroup & Ethnic Prejudices) को कम करने में कुछ तकनीकों का प्रयोग किया जाता है -

- 1) **असंगत भूमिकाएं (Incongruent Roles)** - व्यक्ति जो भी भूमिका निभाता है, उससे कुछ प्रत्याशाएं जुड़ी होती हैं। यदि उसे अस्वभाविक भूमिका में रख दिया जाए, तो वह उससे असहमत होने पर भी उसके अनुरूप व्यवहार करने लगेगा। इससे

आपसी पूर्वाग्रह घटेगा।

- 2) **अन्तराश्रित व्यवहार (Interdependent Behavior)** - यदि 2 समूहों में परस्पर पूर्वाग्रह है, तो उसे कम करने के लिए उनके सामने उभयनिष्ठ लक्ष्य प्राप्त करने की समस्या उत्पन्न करके पारस्परिक सहयोग को बढ़ाया जा सकता है।
- 3) **समूह सदस्यता में परिवर्तन (Changes in Membership)** - यदि किसी व्यक्ति को ऐसे समूह का सदस्य बना दिया जाए, जिसके बारे में उसकी भावना नकारात्मक है, तो उसके पूर्वाग्रहों में कमी आ जाएगी।
- 4) **अन्तर्समूह सम्पर्क (Intergroup Contact)** - विभिन्न वर्गों या समूहों के बीच व्याप्त पूर्वाग्रहों को कम करने का यह एक उत्तम उपाय है। लोग परस्पर सम्पर्क में आकर एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ सकते हैं और गलतफहमियां दूर कर सकते हैं।
- 5) **शैक्षिक कार्यक्रम (Educational Programmes)** - पूर्वाग्रहों को कम करने में शिक्षा की विशेष भूमिका है। शैक्षिक कार्यक्रमों में सद्भाव एवं सामन्जस्य बढ़ाने वाली बातें जोड़कर आपसी भाईचारा, मानवता तथा सौहार्द्र का वातावरण बनाया जा सकता है।
- 6) **प्रचार (Propaganda)** - आज के युग में प्रचार का महत्व काफी बढ़ गया है। जनसंचार के विभिन्न माध्यमों से सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने वाली बातों, विचारों एवं घटनाओं का प्रसारण करके पूर्वाग्रह को कम कर सकते हैं।
- 7) **कानूनी प्रतिबन्ध (Legal Restrictions)** - विभिन्न प्रकार के जातीय, साम्प्रदायिक, धार्मिक भेदभाव पर कानूनी प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें रोका जा सकता है। सरकारें समय-समय पर ऐसे कानून बनाती भी हैं। इनसे पूर्वाग्रह एवं भेदभाव रोकने में काफी सहायता मिलती है।
- 8) **नागरिक समितियां (Civil Committees)** - पूर्वाग्रहों के प्रभाव को कम करने के लिए नागरिकों की समितियां भी लाभदायक हैं। विभिन्न वर्गों, धर्मों एवं जातियों के वरिष्ठ एवं सम्मानित लोगों की समितियां बनाकर पूर्वाग्रह कम करने और भाईचारा बढ़ाने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया जा सकता है। अशांति एवं दंगों के समय ऐसी समितियां सफल रहती हैं।

रूढ़िवादिता Stereotypes

पूर्वाग्रहों की ही तरह रूढ़िवाद भी एक तरह के तथ्यहीन या भ्रामक अवधारणा है। पूर्वाग्रह के विकास में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन्हें पूर्वाग्रहों का संज्ञानात्मक कारण (Cognitive Cause) माना जाता है, क्योंकि रूढ़ियुक्तियां मनुष्य की सोच या चिंतन का परिणाम होती हैं, जैसे - अंधेरे में पड़ी रस्सी को सर्प मान लेना एक भ्रामक निष्कर्ष है। उसी तरह लोग जब किसी व्यक्ति के बारे में उसके वर्ग के आधार पर अच्छी या खराब बातों का निर्धारण करते हैं, चाहे वास्तव में उसमें वे गुण हो या न हो। ऐसे निर्णय ही रूढ़िवादिता कहलाते हैं। यह अनुकूल या प्रतिकूल भी हो सकती है। यह कहना की पाकिस्तानी धोखेबाज, अमेरिकी बुद्धिमान और जापानी बड़े परिश्रमी होते हैं, रूढ़िवादिता के उदाहरण हैं, क्योंकि आवश्यक नहीं है कि सभी पाकिस्तानी धोखेबाज, अमेरिकी बुद्धिमान और जापानी परिश्रमी ही होते हैं।

□ रूढ़िवादिता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Stereotypes)

रूढ़िवादिता अंग्रेजी के स्टीरियोटाइप्स शब्द का हिन्दी अनुवाद है। हम अपनी समझ व विचारधारा के अनुसार दूसरे व्यक्ति या समूह के प्रति जो मनोभाव बना लेते हैं, उसे रूढ़िवादिता कहा जाता है। उदाहरणार्थ - 12 बजे सरदार का दिमाग, सिन्धी बच्चा कभी न सच्चा आदि प्रचलित रूढ़िवादिता के उदाहरण हैं। इन रूढ़ियुक्तियों के द्वारा इस आशय की जानकारी प्राप्त होती है कि दूसरा व्यक्ति उनके बारे में किस प्रकार की विचारधारा रखता है।

बैरान एवं बाइरने के अनुसार 'किसी समूह के सदस्यों के बारे में तार्किक आधार के अभाव में विश्वासों का पुलिंदा बना लेना रूढ़िवादिता कहा जाता है' ('Stereotype is a cluster of beliefs usually lacking a rational basis regarding the members of some group')। इसी प्रकार किम्बाल यंग रूढ़िवादिता को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि 'यह एक अवधारणा है, जिसके द्वारा हम अन्य व्यक्तियों का मिथ्या वर्गीकरण कर देते हैं, जिनके प्रति रूचि या अरूचि, स्वीकृति या अस्वीकृति की तीव्र

संवेगात्मक अनुभूति जुड़ी रहती है' ('Stereotype is a false classificatory concept to which, as a rule, some stronge emotional feeling tone of like or dislike')। स्पष्ट है कि रूढ़िवादिता अशुद्ध या मिथ्या रूप से किसी व्यक्ति में, उसकी वर्ग सदस्यता के आधार पर, अनुकूल या प्रतिकूल गुणों के निर्धारण की प्रवृत्ति है। इसके कारण हम किसी व्यक्ति में उसकी जाति, वर्ग, सम्प्रदाय या धर्म के बारे में प्रचलित अवधारणाओं के अनुरूप विशेषताएं निर्धारित करते हैं। चाहे उसमें वैसी विशेषताएं हो या न हो।

□ रूढ़ियुक्तियों की विशेषताएं (Characteristics of Stereotype)

- 1) **मिथ्या वर्गीकरण (False Classification)** - रूढ़ियुक्तियां अतार्किक, अबौद्धिक व मिथ्या होती हैं। रूढ़ियुक्तियों से प्रभावित होने के कारण व्यक्ति अन्य व्यक्तियों में उसके वर्ग से संबंधित गुणों का निर्धारण करता है। चाहे वह गुण संबंधित वर्ग में हो या न हो।
- 2) **विश्वास पर आधारित (Based of Belief)** - रूढ़ियुक्तियां अत्यधिक सरलीकृत सामान्यीकरण विश्वास पर आधारित होती हैं। लोगों की यह धारणा होती है कि अमुक वर्ग के सभी सदस्यों में एकसमान विशेषता पाई जाती है। उदाहरणार्थ - अमेरिकन को बुद्धिमान, ब्रिटिश को धोखेबाज मानना अतिसरलीकृत निष्कर्ष है।
- 3) **सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रवृत्ति (Positive & Negative Tendency)** - रूढ़ियुक्तियां केवल नकारात्मक ही नहीं होती हैं, बल्कि सकारात्मक भी होती हैं। रूढ़ियुक्तियों से वर्ग विशेष के लोग सहमत होते हैं।
- 4) **परिवर्तन कठिनाई से होता है (Difficult to Change)** - प्रायः रूढ़ियुक्तियां परिवर्तित नहीं होती हैं। यदि उनमें परिवर्तन होता भी है, तो बड़ी कठिनाई से। उदाहरणार्थ - किसी भारतीय को यह समझाना कठिन होगा कि सभी पाकिस्तानी धोखेबाज नहीं होते हैं।

□ पूर्वाग्रह व रूढ़ियुक्तियों में अन्तर (Difference between Prejudices & Stereotypes)

पूर्वाग्रह तथा रूढ़ियुक्तियां परस्पर संबंधित अवधारणा है। इनमें अन्तर स्थापित करना अपेक्षाकृत कठिन है, फिर भी इनमें निम्नलिखित अन्तरों का उल्लेख किया जा सकता है -

पूर्वाग्रह	रूढ़ियुक्तियां
पूर्वाग्रहों का स्वरूप नकारात्मक होता है।	रूढ़ियुक्तियां नकारात्मक व सकारात्मक दोनों तरह की होती हैं।
पूर्वाग्रह से विरोधी भाव झलकता है।	रूढ़ियुक्तियां अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी तरह का व्यवहार करा सकती हैं।
पूर्वाग्रह का संबंध मनोवृत्ति के व्यवहारपरक घटक से अधिक है।	रूढ़ियुक्तियों का स्वरूप संज्ञानात्मक घटक से अधिक संबंधित है।
पूर्वाग्रह कम स्थायी होते हैं।	रूढ़ियुक्तियों में स्थायित्व अधिक पाया जाता है।
पूर्वाग्रह को परिवर्तित करना सरल है।	रूढ़ियुक्तियों को परिवर्तित करना कठिन होता है।
पूर्वाग्रह प्रायः नकारात्मक परिणाम देते हैं। पूर्वाग्रहों के आधार पर ही विभेद किया जाता है।	रूढ़ियुक्तियों से सकारात्मक परिणाम भी सामने आते हैं, जैसे - किसी को अच्छे गुणों के आधार पर पसंद करना।

□ रूढ़ियुक्तियों के प्रकार (Types of Stereotypes)

रूढ़ियुक्तियों को मुख्यरूप से 2 भागों में विभाजित किया जा सकता है -

- 1) **व्यक्तिगत रूढ़ियुक्ति (Personal Stereotype)** - व्यक्तिगत युक्तियां व्यक्तियों से सम्बन्धित होती हैं, जैसे - अध्यापक कठोर होते हैं। इस प्रकार की रूढ़ियुक्तियों का सम्बन्ध मात्र अध्यापक से होता है।
- 2) **सामूहिक रूढ़ियुक्ति (Group Stereotype)** - इसका सम्बन्ध समूह से होता है, जैसे - किसी जाति के व्यक्ति अच्छे होते हैं। यह सामूहिक रूढ़ियुक्ति है।

□ रूढ़ियुक्तियों की उपयोगिता (Utility of Stereotypes)

सामाजिक जीवन में रूढ़ियुक्तियों का अत्यन्त आवश्यकता है, इसका कारण यह है कि इनसे समाज को लाभ होता है। सामाजिक जीवन में रूढ़ियुक्तियां जिन कार्यों का सम्पादन करती हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं -

- 1) रूढ़ियुक्तियां मानव व्यवहारों का निर्देशन करती हैं। आज के व्यस्त समय में रूढ़ियुक्तियां मानव समय को नष्ट होने से बचाती हैं। रूढ़ियुक्तियां अनेक वस्तुओं और व्यक्तियों को समूहों में बांटती हैं। इसलिए हमें हर व्यक्ति या वस्तु के बारे में अलग-अलग सोचना नहीं पड़ता है।
- 2) रूढ़ियुक्तियां समाज के सामने व्यक्तियों और समूहों की प्रतिमाएं प्रदान करते हैं, जिसके अनुसार व्यक्ति को अपने व्यवहारों को संशोधित और परिमार्जित करने में मदद मिलती है।
- 3) रूढ़ियुक्तियां हमें भविष्यवाणी करने में भी मदद करती हैं, जैसे - गोरखे सेना में अच्छे सिपाही होते हैं। इस रूढ़ियुक्ति के आधार पर गोरखों के बारे में भविष्यवाणी करने में मदद मिलती है।
- 4) व्यावसायिक प्रचार में उपयोगिता की दृष्टि से भी रूढ़ियुक्तियों का अत्यन्त ही महत्व है। उदाहरणार्थ - फिल्म एक्ट्रेस प्रियंका चौपड़ा के सौन्दर्य के रहस्य लक्स साबुन आदि।
- 5) शिक्षा के क्षेत्र में भी रूढ़ियों का अत्यन्त ही महत्व है। शिक्षा संस्थाओं के नाम पर उनकी प्रकृति आदि का अनुमान लगाया जाता है, जैसे - आई. आई. टी., दयानन्द स्कूल, सरकारी स्कूल आदि।
- 6) अनुभव के क्षेत्र में भी रूढ़ियुक्तियों का कम महत्व नहीं है। अनुभव समाज की सबसे बड़ी रूढ़ियुक्ति है। जो बात अनुभवी व्यक्ति द्वारा कही जाती है, वह सही होगी ही, इसमें कोई संदेह नहीं है।

□ रूढ़ियुक्तियों का विकास एवं निर्धारण (Development & Determinants of Stereotypes)

पूर्वाग्रहों की भाँति रूढ़ियुक्तियों के विकास पर भी अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। ये भी अर्जित, न कि जन्म-जात होती हैं। रूढ़ियुक्तियों के मुख्य निर्धारक निम्नलिखित हैं -

- 1) **सामाजिक अधिगम (Social Learning)** - अन्य व्यवहारों की भाँति रूढ़ियुक्तियां भी समाज में रहकर सीखी जाती हैं। समाज के वरिष्ठ लोग अन्य समूहों या उसके सदस्यों के बारे में बच्चों को जैसा बताते हैं, उसी के अनुसार बच्चों का संज्ञान बनता है। उदाहरणार्थ - यह कहने पर कि अमुक जाति के लोग बहादुर, ज्ञानी, परिश्रमी या कामचोर होते हैं, बच्चों के मन पर वैसी ही छाप पड़ जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक अधिगम या समाजीकरण विभिन्न प्रकार की रूढ़ियुक्तियों के विकास का अवसर देता है।
- 2) **मिथ्या ज्ञान (False Knowledge)** - रूढ़ियुक्तियां आंशिक ज्ञान तथा अनुभव पर आधारित होती हैं। यदि एक जाति, वर्ग या समूह का कोई व्यक्ति कोई अनुचित व्यवहार कर जाता है, तो उसके समूह या जाति के बारे में भी लोग वैसी ही धारणा बना लेते हैं।
- 3) **सांस्कृतिक मान्यताएं (Cultural Beliefs)** - प्रत्येक समूह या समाज में अन्य समूहों, जातियों वर्गों या देशों के बारे में कुछ न कुछ अनुकूल एवं प्रतिकूल धारणाएं प्रचलन में होती हैं। उनका पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरण होता रहता है। इससे रूढ़ियुक्तियों का प्रभाव बना रहता है।
- 4) **सामाजिक दूरी (Social Distance)** - यदि समाज के विभिन्न वर्गों में आपस में अपेक्षित मेलजोल नहीं है, तो इससे एक-दूसरे के बारे में गलतफहमी पैदा होने की सम्भावना बढ़ती है। इस कारण लोग एक-दूसरे के बारे में प्रायः नकारात्मक या मिथ्या धारणाएं बना लेते हैं।
- 5) **प्रतिष्ठा संसूचना या सुझाव (Prestige Suggestion)** - लोग दूसरे समूहों, वर्गों जातियों या धर्मों के सदस्यों के बारे में इसलिए भी रूढ़ियुक्तियां बना लेते हैं, क्योंकि उनके समूह के प्रतिष्ठित लोगों का वैसा ही सुझाव या विचार होता है। उदाहरणार्थ - जातीय नेता ने अगर किसी पार्टी को खराब घोषित कर दिया, तो उसके समर्थन उसे वोट नहीं देंगे।
- 6) **अज्ञानता (Lack of knoweldge)** - रूढ़ियुक्तियों का विकास व्यक्ति की अज्ञानता के कारण भी होता है। प्रायः लोग अज्ञानता के कारण अन्य लोगों के बारे में नकारात्मक धारणाएं बना लेते हैं, अर्थात् - वास्तविक सूचनाओं के अभाव में

रूढ़ियुक्तियों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होता रहता है।

7) **कटु अनुभव (Bitter Experiences)** - रूढ़ियुक्तियों का निर्माण व्यक्ति को होने वाले कटु या असुखद अनुभवों द्वारा भी होता है। यदि व्यक्ति को किसी से कोई कष्ट पहुंचता है, तो वह उसके और उसके समूह (जाति) के बारे में अनेक नकारात्मक रूढ़ियुक्तियां बना लेता है।

भारतीय संदर्भ में रूढ़िवादिता Stereotypes in Indian Context

भारत में अनेक जातियों, सम्प्रदायों एवं धर्मों के लोग रहते हैं। कहा जाता है कि विविधता में एकता यहां की सांस्कृतिक धरोहर है। किन्तु यहां पर विभिन्न समूहों, वर्गों, जातियों एवं धर्मावलम्बियों तनाव तथा संघर्ष की घटनाएं घटित होती रहती हैं। इस तरह के संघर्ष व तनाव के पीछे पूर्वाग्रह एवं रूढ़ियुक्तियां भी उत्तरदायी हैं, जिन्हें हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझ सकते हैं -

□ जातिगत रूढ़िवादिता (Caste Stereotypes)

भारत में अनेक जातियां तथा उपजातियां विद्यमान हैं, जिनकी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में काफी अन्तर है। इनकी सामाजिक तथा आर्थिक असमानता काफी गहरी एवं प्राचीन है। ऐतिहासिक विकास के क्रम में विभिन्न जातियों में एक-दूसरे के प्रति रूढ़ियुक्तियों का विकास हुआ, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहा। वस्तुतः जाति एक जन्म आधारित व्यवस्था है, जिसमें व्यक्ति के जन्म से ही उसकी जाति तय हो जाती है। अतः उसमें जातिगत गुणों का गुणारोपण पहले से ही अन्य जातियों द्वारा कर दिया जाता है, चाहे उसमें वह गुण हो या न हो। इसके अलावा भारत में जातिवादी व्यवस्था का इतना कठोर विभाजन हुआ कि खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, संस्कार, परम्पराएं, विवाह आदि तक में रूढ़ियुक्तियां विकसित हुई हैं, जिनका कोई तार्किक आधार नहीं है।

आज भी इन जातियों के बीच सामाजिक दूरी काफी हद तक बनी हुई है, जिससे भारतीय समाज में जातीय तनाव एवं संघर्ष की घटनाएं घटित होती हैं। इसका मुख्य कारण कुछ उच्च जातियों के लोग निचली जातियों को तुच्छ मानते हैं तथा निम्न जातियों के लोग उच्च जातियों के लोगों को शोषक मानते हुए उनके प्रति नकारात्मक भावना रखते हैं।

□ धार्मिक रूढ़िवादिता (Religious Stereotypes)

भारत एक धर्मबहुल राष्ट्र है, जहां पर विभिन्न प्रकार के धर्म, पंथ एवं सम्प्रदाय विद्यमान हैं। प्रत्येक धर्म का उद्भव एवं विकास तत्कालीन समय की आवश्यकता की पूर्ति हेतु हुआ था। अतः उद्भव के दृष्टिकोण से कोई भी धर्म बुरा नहीं है। दूसरा, धर्म के 2 पक्ष होते हैं - आन्तरिक एवं बाह्य। निरपेक्ष दृष्टिकोण से विचार किया जाए, तो सभी धर्मों के आन्तरिक पक्ष समान हैं। सभी धर्म मानव कल्याण को अपना परम लक्ष्य मानते हैं। समस्या केवल धर्म के बाह्य पक्ष को लेकर है। बाह्य पक्ष के अन्तर्गत पूजा स्थल, धर्म ग्रंथ, धार्मिक कर्मकाण्ड, उपासना पद्धति आदि आते हैं। उदाहरणार्थ - एक धर्म अहिंसा को परम मूल्य मानता है, तो दूसरा धर्म हिंसा को। कोई धर्म देवी-देवताओं की पूजा करता है, तो कोई धर्म निरीश्वरवादी है। स्पष्ट है कि विभिन्न धर्मों के बाह्य पक्ष में अत्यधिक विभिन्नता के कारण स्वभाविक रूप से पूर्वाग्रहों या रूढ़ियुक्तियों का विकास हो जाता है। इसके कारण विभिन्न धर्मावलम्बी एक-दूसरे के प्रति नकारात्मक भाव रखते हैं, जो कई बार साम्प्रदायिक दंगों के लिए उत्तरदायी होता है।

□ वर्ग तनाव (Class Tension)

आर्थिक दृष्टि से देखा जाए, तो समाज में 2 वर्ग होते हैं - एक, धनी या सबल वर्ग (Rich of Advantaged Class) और दूसरा, गरीब या निर्बल (Poor of Disadvantaged) वर्ग। इनमें से धन-सम्पदा की दृष्टि से जमीन और आसमान का अन्तर होते हैं। सबल वर्ग के पास सुख एवं आराम के सारे या अधिकांश साधन होते हैं, जबकि गरीब वर्ग के पास नाममात्र के ही साधन उपलब्ध होते हैं। इन्हें क्रमशः पूंजीपति तथा श्रमिक वर्ग या शोषक एवं शोषित वर्ग भी कहा जा सकता है। इन वर्गों में एक-दूसरे के प्रति अनेक प्रकार के पूर्वाग्रह एवं रूढ़ियुक्तियां पाई जाती हैं। इस कारण इनमें भी तनाव तथा संघर्ष की घटनाएं होती रहती हैं। इसे वर्ग-तनाव कहा जाता है। वर्ग-तनाव के कारण लड़ाई, झगड़ा, मारपीट, लूटपाट एवं हत्याएं तक भी होती हैं। कुछ राज्यों में जमींदारों एवं भूमिहीनों में भी ऐसा ही तनाव दिखाई पड़ता है।

संवेगिक/भावात्मक बुद्धि Emotional Intelligence

पशुओं की तुलना में मनुष्य को कई ज्ञानात्मक योग्यताओं से संपन्न माना जाता है, जो उसे विवेकशील प्राणी बनाती है। वह तर्क कर सकता है, भेद कर सकता है, समझ सकता है और नई स्थिति का सामना भी कर सकता है। निश्चित रूप से वह पशुओं से श्रेष्ठ है, परन्तु सभी मनुष्य एक जैसे नहीं होते हैं। व्यापक रूप से उनमें विभिन्नताएं पाई जाती हैं। एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों में आसानी से विभिन्नताएं देख सकता है, कई विद्यार्थी बहुत जल्दी सीखते हैं और कई विद्यार्थी बहुत देर से सीखते हैं।

आखिर वे कौन-से कारण हैं, जिनसे एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा किसी विशिष्ट स्थिति के प्रति अधिक प्रभावशील अनुक्रिया करता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अभिरूचि, मनोवृत्ति एवं कौशल का सफलता प्राप्ति में महत्वपूर्ण स्थान होता है, परन्तु फिर भी ऐसी कोई चीज अवश्य है, जो इन विविध विभिन्नताओं का कारण है। मनोविज्ञान में इसे बुद्धि (Intelligence) कहा जाता है।

बुद्धि (Intelligence) से आशय मनुष्य की विवेकपूर्ण क्षमता या योग्यता से है, जो सामान्यतः जन्मजात होती है। इस क्षमता के माध्यम से मनुष्य किसी परिस्थिति में सही निर्णय लेने, जटिल विचार को जल्दी समझने, तार्किक रूप से सोचने तथा अपने वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से निपटता है। सरल शब्दों में बुद्धि व्यक्ति की वह समग्र क्षमता है, जिसके द्वारा वह उद्देश्यपूर्ण कार्य करता है, विवेकपूर्ण चिंतन करता है और अपने वातावरण का प्रभावशाली ढंग से सामना करता है (Intelligence is the aggregate capacity of an individual to act purposefully, to think rationally & to deal effectively with his environment)।

सामान्यतः एक लम्बे समय तक यह मान्यता रही कि व्यक्ति की सफलता के लिए बुद्धि आवश्यक तत्व है। संवेगों की अपेक्षा बुद्धि को ज्यादा महत्ता दी गई। इस मान्यता के अनुसार जिसके पास बुद्धि अधिक है, वही विवेकपूर्ण एवं तर्कसंगत चिंतन कर सकता है। इस मान्यता को विभिन्न दार्शनिकों (प्लेटो, डेकार्ट, हीगल आदि) का भी समर्थन प्राप्त था।

20वीं शताब्दी में जर्मन मनोवैज्ञानिक विलियम स्टर्न ने बुद्धि के आकलन का तरीका विकसित किया, जिसे बुद्धि-लब्धि (Intelligence Quotient - IQ) की संज्ञा दी गई। बुद्धि-लब्धि को मापने के लिए स्टर्न ने मानसिक आयु/वास्तविक आयु अनुपात बनाया और उसे ही बुद्धि-लब्धि कहा गया। उदाहरणार्थ - 6 वर्ष की आयु का बच्चा 8 वर्ष की आयु के बच्चे के समान कार्य करता है, तो वह अपनी आयु के औसत बच्चों से 8/6, अर्थात् - 1.33 दर्जे अधिक बुद्धिमान होगा। दशमलव अनुपात को दूर करने के लिए उसने अनुपात को 100 से गुणा करने का नियम बनाया।

$$\text{बुद्धि-लब्धि (IQ)} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100, \text{ अर्थात् } \frac{M. A.}{C. A.} \times 100$$

आगे चलकर विभिन्न अस्तित्ववादी दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों ने इस मान्यता को चुनौती दी। डेविड वेसलर ने माना कि व्यक्ति की सफलता में केवल बौद्धिक पक्ष शामिल नहीं है, बल्कि भावनात्मक पक्षों को भी महत्व दिए जाने की जरूरत है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अनेक अनुसंधानों में यह पाया कि अधिक बुद्धि-लब्धि वाले व्यक्ति भी असफल हैं। उनका ऐसा मानना था कि जीवन में सफल होने के लिए केवल उच्च बुद्धि-लब्धि होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि जीवन के प्रति भावात्मक समझ भी आवश्यक है। इसी भावात्मक समझ को मनोवैज्ञानिकों द्वारा संवेगात्मक बुद्धि कहा गया। कालान्तर में कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तो यहां तक माना कि सफलता के लिए उच्च बुद्धि-लब्धि की बजाय उच्च संवेगात्मक बुद्धि का होना आवश्यक है।

संवेगात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence) पद का विधिवत प्रयोग का श्रेय सर्वप्रथम 1990 ई. में दो अमेरिकन प्रोफेसरों डॉ. जॉन मेयर और डॉ. पीटर सेलोवे को जाता है। किन्तु जिस रूप में संवेगात्मक बुद्धि पद की सर्वत्र चर्चा की जाती है, उसे इस तरह से लोकप्रिय बनाने का श्रेय केवल अमेरिकन मनोवैज्ञानिक डेनियल गोलमैन को ही जाता है। उन्होंने 1995 ई. में प्रकाशित एक अपनी एक पुस्तक 'संवेगात्मक बुद्धि : बुद्धि-लब्धि से अधिक महत्वपूर्ण क्यों' (Emotional Intelligence : Why it can matter more than I. Q) के माध्यम से इसे विशेष चर्चा का विषय बनाया।

□ संवेगात्मक बुद्धि : अर्थ, परिभाषा एवं अवधारणा

(Emotional Intelligence : Meaning, Definition & Concept)

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने संवेगिक बुद्धि के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखते हुए इसे कई तरह से परिभाषित करने का प्रयास किया है। किन्तु साधारण शब्दों में कहे, तो संवेगिक बुद्धि, वह बुद्धि है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने संवेगों को पहचानकर उनका नियंत्रण करता है और कार्य-कुशलता व कार्य की सफलता के लिए इसका प्रभावशाली ढंग से उपयोग करता है।

अमेरिकन मनोवैज्ञानिक **मेयर और सेलोवे** के अनुसार संवेगात्मक बुद्धि को एक ऐसी क्षमता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिससे 4 विभिन्न रूपों में संवेगों को उचित दिशा देने में मदद मिले, जैसे - संवेग विशेष का प्रत्यक्षीकरण, उसका अपनी विचार प्रक्रिया में समन्वय करना, उसे समझना तथा उसका प्रबंध करना (Emotional Intelligence may be defined as the capacity to reason with emotion in four areas, to perceive emotion, to integrate it in thought, to understand it & to manage it)। इस परिभाषा की शब्दावली पर विचार करे, तो 4 बातें स्पष्ट होती हैं -

- 1) **संवेगों को प्रत्यक्ष करने की क्षमता (Perceiving Emotions)** - किसी व्यक्ति की मुखमुद्रा, शारीरिक भाषा, बोलने के अन्दाज, संकेतों, ध्वनियों, आवाजों आदि का प्रत्यक्ष कर उसके संवेगों व भावनाओं को ठीक प्रकार से जानना, संवेगों का प्रत्यक्षीकरण कहलाता है। एक प्रकार से इस क्षमता के माध्यम से किसी व्यक्ति की मनःस्थिति को जानने का प्रयास किया जाता है। उदाहरणार्थ - किसी बच्चे द्वारा स्कूल न जाने के लिए तरह-तरह के बहाने बनाना। उसके संवेगों के प्रत्यक्षीकरण से हमें यह जानकारी प्राप्त हो जाती है कि वह दिखावटी आँसू निकाल रहा है।
- 2) **संवेगों को अपनी विचार प्रक्रिया से जोड़ पाने की क्षमता (Using Emotions to Integrate thought Process)** - इस क्षमता से तात्पर्य व्यक्ति की भावनाओं या संवेगों का प्रत्यक्षीकरण करने के उपरान्त उसे अपनी विचार प्रक्रिया से समन्वय करने से है। इस प्रक्रिया के तहत अपनी भावनाओं और संवेगों का विश्लेषण कर निर्णय लेने में उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ - पत्नी के अत्यधिक नराजगी भरे व्यवहार को देखकर पति द्वारा तुरंत प्रतिक्रिया करने की बजाय उसके संवेगों को अपनी विचार प्रक्रिया से जोड़कर यह सोचना कि क्या मैंने कहीं कोई गलती तो नहीं की है।
- 3) **भावनाओं को समझना (Understanding Emotions)** - इस क्षमता से तात्पर्य संवेगों की प्रकृति, उनकी तीव्रता तथा उनके परिणामों से भली-भाँति अवगत रहने से है। यदि कोई व्यक्ति क्रोध प्रकट कर रहा है, तो हमारे लिए यह समझना जरूरी है कि इस क्रोध की वजह क्या है और इसका क्या मकसद हो सकता है। उदाहरणार्थ - एक शिक्षक द्वारा अपने विद्यार्थी को डांटना, इस डांट में तीन तरह के भाव छुपे हो सकते हैं - क्रोध, चिंता एवं स्नेह। यहां विद्यार्थी को शिक्षक की भावनाओं की समझना होगा कि इस डांट में घृणा या वैमन्स्यता का भाव नहीं है।
- 4) **भावनाओं का प्रबंधन (Managing Emotions)** - इससे आशय संवेगों की अभिव्यक्ति और उन्हें उपयोग में लाने के संदर्भ में उन पर भली-भाँति नियंत्रण स्थापित करने की क्षमता से है। विशेष तौर पर नकारात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ - किसी व्यक्ति से मतभेद होने की स्थिति में उसके प्रति नकारात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति से बचने का प्रयास करना।

इसके अलावा **डेनियल गोलमैन** के अनुसार संवेगात्मक बुद्धि का तात्पर्य उस कौशल से है, जिससे हम आन्तरिक जीवन का प्रबंध एवं संचालन करते हैं तथा लोगों के साथ समन्वय बैठकर चलते हैं। डेनियल गोलमैन ने संवेगात्मक बुद्धि को 5 क्षमताओं का समूह माना है।

- 1) **स्व-जागरूकता (Self Awareness)** - अपने संवेगों की सही जानकारी रखना संवेगात्मक बुद्धि का आधार है। जब तक अपनी भावनाओं, अनुभूतियों, क्षमताओं, कमजोरियों को सही ढंग से नहीं समझेंगे, तब तक इन पर नियंत्रण नहीं रख सकेंगे। जो व्यक्ति अपने मनोभाव की पहचान नहीं कर पाते, उनका भावात्मक संबंध दूसरों की दया पर निर्भर करता है।
- 2) **आत्म नियमन (Self Regulation)** - संवेगिक बुद्धि का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व अपने संवेगों का आत्म प्रबंधन करना है। इसके अन्तर्गत भावनाओं के प्रकृति, तीव्रता तथा अभिव्यक्ति को प्रबंधित करना है।

- 3) **आत्म अभिप्रेरण (Self Motivation)** - संवेगात्मक बुद्धि का तीसरा तत्व है आशावादी तरीके से स्वयं को प्रेरित करना। यदि व्यक्ति के जीवन अत्यधिक चुनौतियां, बाधाएं, संघर्ष आदि हैं, तो उसके अन्दर ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि वह स्वयं को प्रेरित कर सके। घोर निराशा एवं असफलता के क्षणों में भी स्वयं को प्रेरित करते रहना चाहिए।
- 4) **समानुभूति (Empathy)** - समानुभूति संवेगिक बुद्धि का चौथा तत्व है, जिसका तात्पर्य है दूसरों की अनुभूतियों, संवेगों को ठीक ढंग से पहचानने की क्षमता। भले ही वह व्यक्ति अपनी भावनाओं को छुपाने का प्रयास कर रहा हो। समानुभूति से युक्त व्यक्ति दूसरों की भावनाओं को अच्छी तरह समझता है तथा उसके साथ तादात्म्यकरण करने की योग्यता रखता है।
- 5) **सामाजिक बोध (Social Awareness)** - सामाजिक बोध से तात्पर्य अन्तरवैयक्तिक दक्षता से है। इसका आशय है कि दूसरों के संवेगों का संचालन करना। अन्य शब्दों में समाज के अन्य लोगों के साथ इस तरह का संबंध बनाना, ताकि उन संबंधों का कालान्तर में लाभ मिल सके। सामाजिक बोध के अन्तर्गत दूसरों की परिस्थितियों को समझना, दूसरे व्यक्तियों की भावनाओं को अनुभव करने और बिना बताए दूसरों की आवश्यकताओं को जानना शामिल है। सामाजिक बोधयुक्त व्यक्ति लोगों के मध्य बेहद लोकप्रिय होते हैं।

इस प्रकार संवेगात्मक बुद्धि के संबंध में उपरोक्त वर्णित दोनों अवधारणाओं एवं परिभाषाओं से जो निष्कर्ष निकलता है, उसके आधार पर हम अपने शब्दों में संवेगात्मक बुद्धि को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं -

“संवेगात्मक बुद्धि से तात्पर्य व्यक्ति विशेष की उस समग्र क्षमता से है, जिसमें व्यक्ति अपने तथा दूसरों के संवेगों को जानने, समझने एवं प्राप्त सूचनाओं के अनुसार अपने चिंतन और अपने व्यवहार में सामन्जस्य स्थापित करते हुए ऐसी वांछित व्यवहार अनुक्रियाएं करना, जिससे अपना समुचित हित करने हेतु अधिक से अधिक अच्छे अवसर प्राप्त हो सके।

□ संवेगिक बुद्धि की उपयोगिता एवं महत्व (Utilities & Application of Emotional Intelligence)

कुछ समय पूर्व तक यही धारणा सभी जगह विद्यमान थी कि व्यक्ति की सभी प्रकार की सफलताओं के पीछे पूरी तरह किसी न किसी रूप से उसकी मानसिक योग्यता एवं क्षमताओं का हाथ रहता है। इसलिए सामान्य बुद्धि की मात्रा, अर्थात् - बुद्धि-लब्धि (IQ) को ऐसा आधार या पैमाना माना जाता था कि जिससे यह भविष्यवाणी की जा सके कि व्यक्ति विशेष किसी कार्य विशेष के संपादन में किस सीमा तक सफल होगा। परन्तु इस अवधारणा का वर्चस्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में होने वाले नवीनतम अनुसंधानों ने अब लगभग समाप्त-सा ही कर दिया है।

इन प्रयासों को विशेष बल संवेगात्मक बुद्धि नामक अवधारणा के जन्म लेने के कारण ही मिला। विशेषकर अमेरिकन मनोवैज्ञानिक डॉ. डेनियल गोलमैन ने संवेगात्मक बुद्धि की उपयोगिता एवं महत्व को बहुत ही प्रभावशील ढंग से जनमानस के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। गोलमैन ने संवेगात्मक बुद्धि की उपयोगिता एवं महत्व के बारे में निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया है -

- 1) कोई व्यक्ति जीवन में कितना सफल होगा, उसकी भविष्यवाणी करने हेतु संवेगात्मक-लब्धि (EQ) बुद्धि-लब्धि (IQ) की तरह ही और बहुत-सी परिस्थितियों में उससे अधिक सामर्थवान सिद्ध हो सकती है। बुद्धि लब्धि का तो जीवन में मिलने वाली सफलताओं में केवल 20 प्रतिशत ही योगदान रहता है, शेष 80 प्रतिशत योगदान का श्रेय उसकी संवेगात्मक बुद्धि तथा उसके सामाजिक स्तर आदि को जाता है।
- 2) जिस व्यक्ति में यथेष्ट संवेगात्मक बुद्धि होती है, वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में इच्छित सफलता अर्जित कर सकता है।
- 3) संवेगात्मक बुद्धि के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह भी है कि इसे हम भावात्मक क्षमताओं में वृद्धि कर वांछित रूप से संवेगात्मक बुद्धि को विकसित कर सकते हैं।
- 4) संवेगात्मक बुद्धि हम सभी के समक्ष एक आदर्श रखती है कि हम किस प्रकार अपने जीवन को समर्थ, सुखमय, तनाव रहित और शांतिप्रद बना सकते हैं।
- 5) वर्तमान प्रतिस्पर्धी एवं कामकाजी दुनिया में सफलता प्राप्त करने हेतु सामान्य बुद्धि की तुलना में संवेगात्मक बुद्धि का ही अधिक योगदान पाया जाता है। एक व्यक्ति चाहे जितना भी अपने कार्य में निपुण या दक्ष हो, उसे प्रायः इसलिए असफलता होता हुआ पाया जाता है, क्योंकि उसमें अपने आप से तथा दूसरों के साथ भली-भाँति सामन्जस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक संवेगात्मक बुद्धि नहीं पाई जाती है।

- 6) जीवन में अगर कोई बात कहीं भी किसी सफलता में अधिक से अधिक सहायक हो सकती है, वह उसमें दूसरों के साथ अच्छे संबंध बनाए रख सकने की योग्यता ही है। इस बात में संवेगात्मक बुद्धि ही उसकी सबसे अधिक सहयोगी सिद्ध होती है।

इस प्रकार संवेगात्मक बुद्धि ने हमारे जीवन के विविध क्षेत्रों में इसकी आवश्यकता और उपयोग को लेकर एक क्रांति सी मचा दी है। आज घर, विद्यालय, चिकित्सालय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मंच, परामर्श एवं निर्देशन सेवाएं, औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठान, प्रबंधन क्षेत्र, शासन एवं प्रशासन आदि कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जहां संवेगात्मक बुद्धि के महत्व एवं उपयोगिता को अंगीकृत नहीं किया गया।

□ संवेगात्मक बुद्धि का विकास (Development of Emotional Intelligence)

संवेगात्मक बुद्धि के उचित विकास हेतु निम्नलिखित उपाय कारगर सिद्ध हो सकते हैं -

- 1) अपने स्वयं में और दूसरों में संवेगों के भली-भाँति प्रत्यक्षीकरण हेतु उचित योग्यताओं और क्षमताओं का प्रयास किया जाए।
- 2) दूसरे की भावनाओं और संवेगों को गलत ढंग से लेना, संबंधों को बिगाड़ने की दिशा में काफी घातक सिद्ध हो सकता है, क्योंकि जब हम अपने ढंग से उनकी भावनाओं और संवेगों को देखते हैं, तो इसमें पक्षपात एवं द्वेषपूर्ण दृष्टिकोण ही हावी रहता है। हमेशा यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्रेम और आपसी विश्वास ही संबंधों में नजदीकी लाता है, जबकि घृणा और बैर रखने से संबंधों में सदैव कटुता ही आती है।
- 3) सभी परिस्थितियों में यह समझा जाना चाहिए कि जिस प्रकार के संवेगों की अनुभूति हमें हो रही है, वैसे ही दूसरों को भी हो रही है या नहीं, इसके बारे में सही ज्ञान व चेतना का विकास होना चाहिए।
- 4) दूसरों के संवेगों और उनकी भावनाओं को समझने के लिए यह आवश्यक होता है कि उनकी बात को धैर्यपूर्वक सुना व समझा जाए। अनुसंधानों के द्वारा यह पाया गया है कि जिन व्यक्तियों में संवेगात्मक बुद्धि की अधिकता होती है, वे सामान्य रूप से दूसरे की बात अधिक अच्छी तरह से सुनते हुए पाए जाते हैं।
- 5) हम भावनाओं में बहकर ठीक तरह से नहीं सोच पाते हैं, इस गलत धारणा को मन से निकाल देना चाहिए। संवेगों को अपनी विचार प्रक्रिया से समन्वित करने के प्रयास किए जाने चाहिए। मस्तिष्क व हृदय दोनों का ही तालमेल उचित व्यवहार प्रक्रिया में सदैव ही सहयोगी सिद्ध होता है।
- 6) संवेग चाहे नकारात्मक हो या सकारात्मक, वह व्यक्ति विशेष के लिए परिस्थिति विशेष के अनुसार लाभकारी सिद्ध होते हैं, क्योंकि उनका प्रादुर्भाव व्यक्ति के मस्तिष्क, हृदय एवं इंद्रियों को उसकी व्यवहार क्रियाओं के माध्यम से जोड़ता है। क्रोध, मद, घृणा और अवसाद जिन्हें हम गलत संवेग समझते हैं, वे भी समय एवं परिस्थिति के अनुसार उतने ही आवश्यक और हितकारी होते हैं, जितने की साहस, प्रेम एवं शांति। बस हमें अपने संवेगों को उचित समय पर उचित मात्रा में उचित रूप से अभिव्यक्त करने का ढंग आता हो।

इस संबंध में महान ग्रीक दार्शनिक अरस्तु की यह बात को सदैव ही आदर्श मानकर चलना चाहिए कि “कोई भी व्यक्ति क्रोध कर सकता है - यह बहुत आसान है, परन्तु सही व्यक्ति के साथ सही मात्रा में सही समय पर सही प्रयोजन हेतु सही ढंग से क्रोध करना आसान नहीं है।”

- 7) कभी-भी अपनी भावनाओं तथा संवेगों को अपनी प्रगति की राह में बाधा नहीं बनने देना चाहिए। सभी तरह से उन्हें लक्ष्य प्राप्ति के लिए एक अच्छे अभिप्रेरक के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।
- 8) दूसरों के साथ वैचारिक आदान-प्रदान करने और आपसी संबंध बनाने हेतु उचित सामाजिक कौशलों का विकास किया जाना चाहिए। संबंधों को बनाए रखने के लिए इस बात का सदैव ध्यान रखा जाना चाहिए कि किसी भी परिस्थिति में बोल-चाल समाप्त न हो, दूसरे को अपनी बात कहने या अपना पक्ष रखने का पूरा मौका दिया जाए तथा जहां तक हो सके संबंधों में आई रिक्तता एवं कटुता को बहुत अधिक बढ़ने का अवसर न दिया जाए।
- 9) संवेगात्मक बुद्धि के विकास हेतु इस बात का ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि जितना ध्यान संज्ञानात्मक कौशलों तथा मानसिक विकास पर दिया जाता है, उतना ही ध्यान भावात्मक क्षेत्र की योग्यताओं तथा कौशलों पर भी दिया जाए।

सामना करना पड़ता है, जैसे - वित्त का अभाव, कर्मचारियों की कमी, राजनीतिक दबाव आदि। इन परिस्थितियों में प्रशासक को अपने सहयोगियों को निरंतर प्रोत्साहित एवं अभिप्रेरित करना होगा, ताकि समय पर लक्ष्य पूरा हो सके।

- 6) **उत्तरदायित्व की भावना का विकास** - प्रशासन की सफलता हेतु उत्तरदायित्व की भावना का विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। एक उच्च संवेगिक बुद्धि से युक्त प्रशासक सदैव उत्तरदायित्व लेने हेतु तैयार रहता है। विशेष रूप से सफलता का श्रेय अपने साथियों को देना और असफलता की जिम्मेदारी स्वयं लेना।
- 7) **कुशल नेतृत्व** - संवेगात्मक बुद्धि प्रशासक में समानुभूति, सहानुभूति, संवेदनशीलता, सहयोग, समन्वय, समायोजन एवं नेतृत्व की भावना व क्षमता को बढ़ाती है।
- 8) **सामाजिक व राजनीतिक समस्या के समाधान में सहायक** - देश में व्याप्त विभिन्न सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं, जैसे - जातिवाद, नक्सलवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, नस्लवाद, लैंगिक भेदभाव, भ्रूण हत्या आदि का समाधान जनता के सहयोग के बगैर नहीं हो सकता। एक संवेगिक बुद्धि से युक्त प्रशासक जनता के मनोविज्ञान को समझकर बेहतर सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, जिससे जनता की मनोवृत्ति को बदलकर इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।
- 9) **जनता का प्रशासन में विश्वास बनाने में सहायक** - सामान्यतः प्रशासन के पास अत्यधिक सीमित संसाधन होते हैं, जिनमें उन्हें जनसंख्या के एक बहुत बड़े वर्ग को बेहतर प्रशासन देने की चुनौती होती है। जिस कारण मांग व पूर्ति में बहुत बड़ा अन्तराल बना रहता है। साथ ही भ्रष्टाचार, काला बाजारी, भाई-भतीजावाद, लाल फीताशाही आदि के कारण समस्या और गंभीर हो जाती है। इन सबके परिणामस्वरूप जनता में प्रशासन के प्रति अविश्वास व असंतोष उत्पन्न होता है। इन परिस्थितियों में प्रशासक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कई बार जनता की समस्याओं का व्यवहारिक रूप से समाधान नहीं किया जा सकता है, किन्तु उसकी समस्या को धैर्यपूर्वक व संवेदनशीलता के साथ सुनना, उसे समस्या के समाधान के प्रति आश्वासन देना, उसके प्रति सहानुभूति रखकर हम उसके अविश्वास व असंतोष को दूर कर सकते हैं। यह कार्य एक उच्च संवेगिक बुद्धि से युक्त प्रशासक ही बेहतर ढंग से कर सकता है।
- 10) इन सब बातों के अलावा लोकतंत्र को मजबूती देने, आर्थिक-सामाजिक न्याय स्थापित करने, स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व के मूल्य को बढ़ावा देने, राष्ट्रीय की एकता व अखण्डता को बनाए रखने आदि में भी भावात्मक बुद्धि की महत्वपूर्ण भूमिका है।

Shaping Your Dreams

अभिरूचि Aptitude

प्रायः देखा जाता है कि सभी व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों – नेतृत्व, संगीत, कला, शिक्षा आदि में उनका कार्य स्तर भी अलग-अलग होता है। उदाहरणार्थ – राधा व सुनीता दोनों का बौद्धिक स्तर एक होने के बावजूद राधा को संगीत प्रशिक्षण से विशेष लाभ होता है, परन्तु सुनीता को कोई लाभ नहीं होता है।

इसी प्रकार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कई ऐसे व्यक्ति मिलेंगे, जो एक ही प्रकार की स्थितियों में रहते हुए किसी भी विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति में दूसरों को मात दे जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों में सामान्य बौद्धिक योग्यताओं के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट योग्यताएं होती हैं, जिसे अभिरूचि कहा जाता है, जो उन्हें विशिष्ट व्यवसायों व क्रियाओं में सफलता प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है। अतः सरल दृष्टिकोण से अभिरूचि सामान्य बौद्धिक योग्यता के अतिरिक्त एक विशिष्ट योग्यता है, जो व्यक्ति को विशिष्ट क्षेत्र में वांछित स्तर की निपूर्णता प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है।

□ अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition)

अभिरूचि से तात्पर्य किसी विशिष्ट क्षेत्र में कौशल या ज्ञान प्राप्त करने की अर्जित या जन्मजात क्षमता से है। इसमें किसी व्यक्ति के किसी विशिष्ट क्षेत्र में सफल होने की संभावना निहित होती है, यदि इस क्षमता को उचित वातावरण व प्रशिक्षण द्वारा विकसित किया जाए। दूसरे शब्दों में अभिरूचि वह बुनियादी क्षमता है, जिसे सामान्य तौर पर प्रतिभा कहते हैं, जिसके बारे में हम यह कह सके कि यदि उस व्यक्ति को उस क्षेत्र में प्रशिक्षण दिया जाए, तो वह व्यक्ति उस क्षेत्र में अच्छा निष्पादन कर पाएगा।

बिंदम के अनुसार अभिरूचि व्यक्ति के व्यवहार के उन विशिष्ट गुणों की ओर संकेत करती है, जो यह बताते हैं कि वह व्यक्ति किन्हीं विशिष्ट प्रकार की समस्याओं का किसी प्रकार सामना करेगा और उन्हें कैसे हल करेगा (Aptitude refers to those qualities characterising a person's way of behaviour which serves to indicate how well he can learn to meet and solve certain specified kinds of problems.)।

ट्रैक्सलर के अनुसार अभिरूचि व्यक्ति की एक स्थिति है, एक गुण या गुणों का समूह है जो उस संभव सीमा की ओर संकेत करता है, जहां तक वह व्यक्ति उचित प्रशिक्षण द्वारा किसी ज्ञान, कुशलता या ज्ञान समूह को प्राप्त कर सकता है, जैसे – कला, संगीत, मशीन संबंधी योग्यता, गणित संबंधी योग्यता, किसी विदेशी भाषा को पढ़ने या बोलने की योग्यता आदि (Aptitude is a condition, a quality or a set of qualities in individual which is indicative of the probable extent to which he will be able to acquire under suitable training some knowledge, skill or composite of knowledge, understanding and skill such as ability to contribute to art or music, mechanical ability, mathematical ability or ability to read and speak a foreign language)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अभिरूचि के ज्ञान से हमें किसी व्यक्ति की किसी विशिष्ट क्षेत्र में भावी सफलता का पता चल सकता है, परन्तु उस विशिष्ट क्षेत्र में उसे उचित प्रशिक्षण अवश्य मिलना चाहिए।

□ अभिरूचियां वंशानुगत होता है या अर्जित (Are Aptitude Inherited or Acquired)

व्यक्तित्व की कई अन्य विशेषताओं के समान अभिरूचियों के संबंध में भी यह कहना कठिन है कि वे वंशानुगत होती है या वातावरण की उपज होती है। सामान्यतः बहुत-सी अभिरूचियों के कई तत्व जन्मजात होते हैं, जैसे – संगीत के प्रति अभिरूचि रखने वाले व्यक्ति का गला सुरीला हो सकता है। इसी प्रकार टाइप के काम में अभिरूचि रखने वाले व्यक्तियों की उंगलियां लंबी व निपूर्ण हो सकती हैं। किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि यह अर्जित भी हो सकती हैं। यह भी हो सकता है कि किसी व्यक्ति में संगीत के प्रति अभिरूचि इसलिए पैदा हुई, क्योंकि वह अच्छे संगीतज्ञों की संगति में रहता है या किसी व्यक्ति में टाइप के प्रति अभिरूचि इसलिए उत्पन्न हुई हो, क्योंकि उसके माता-पिता टाइपिस्ट रहे हो।

□ अभिरूचि, योग्यता एवं उपलब्धि में अन्तर (Difference between Aptitude & Ability & Achievement)

सामान्य तौर पर अभिरूचि को योग्यता या उपलब्धि का पर्याय समझ लिया जाता है, किन्तु अभिरूचि, योग्यता व उपलब्धि में अन्तर है। योग्यता वर्तमान स्थिति के साथ संबंधित होती है, जबकि अभिरूचि पर्याप्त प्रशिक्षण मिलने पर किसी विशिष्ट क्षेत्र या क्रिया में भावी सफलता का संकेत देती है। उदाहरणार्थ – ईशिका में गायन की योग्यता है, किन्तु ईरा में गायन के प्रति अभिरूचि है। यदि ईरा को उचित प्रशिक्षण दिया जाए, तो वह गायिका बन सकती है।

अभिरूचि भावी सफलता की ओर संकेत करती है, योग्यता वर्तमान स्थितियों से संबंधित होती हैं, जबकि उपलब्धियों का संबंध भूतकाल की सफलताओं के साथ होता है। किसी व्यक्ति की उपलब्धि से यह ज्ञान होता है कि इस व्यक्ति ने किसी विशिष्ट क्षेत्र में क्या प्राप्त किया या सीखा था।

□ अभिरूचि एवं बुद्धि में अन्तर (Difference between Aptitude & Intelligence)

सामान्यतः दोनों अवधारणाएं एक-सी प्रतीत होती हैं, किन्तु इनमें सूक्ष्म अन्तर है। बुद्धि से तात्पर्य किसी व्यक्ति की सामान्य बौद्धिक क्षमताओं से है। बुद्धि परीक्षाएं आमतौर पर व्यक्ति की सामान्य योग्यताओं का परीक्षण करती है, जबकि अभिरूचि का संबंध व्यक्ति की विशिष्ट योग्यताओं के साथ होता है। अतः किसी व्यक्ति की बुद्धि के ज्ञान से हम मानसिक क्रियाओं से संबंधित किसी स्थिति में उस व्यक्ति के संबंध में भविष्यवाणी कर सकते हैं, जबकि अभिरूचि के ज्ञान से हमें व्यक्ति की उन विशिष्ट योग्यताओं का परिचय मिलता है, जो किसी विशिष्ट क्षेत्र में उसकी भावी सफलता की ओर संकेत करती है। अतः किसी विशिष्ट क्षेत्र, कार्य, प्रशिक्षण या कोर्स में व्यक्ति की भावी सफलता के संबंध में भविष्यवाणी करने के लिए हमें उसकी बुद्धि की बजाय उसकी अभिरूचियों का परिचय प्राप्त होना चाहिए। ऐसा हो सकता है कि किसी व्यक्ति की बुद्धिमत्ता अच्छी होने के बावजूद वह किसी क्षेत्र विशेष की अभिरूचि परीक्षण में अच्छा प्रदर्शन न करे। किन्तु सामान्यतः बुद्धि और अभिरूचि में सह-संबंध पाया जाता है।

□ अभिरूचि एवं रूचि में अन्तर (Difference between Aptitude & Interest)

रूचि का आशय है कि किसी व्यक्ति का दिए गए विकल्पों की उपस्थिति में किसी कार्य, वस्तु या क्षेत्र के प्रति विशेष लगाव और पसंद को दर्शाना, जैसे – गायन, क्रिकेट, नृत्य, चित्रकला आदि। सामान्य तौर पर अभिरूचि तथा रूचि साथ-साथ चलते हैं, किन्तु इससे हमें यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि दोनों समान हैं। हो सकता है कि व्यक्ति किसी विशिष्ट कार्य में रूचि तो ले, किन्तु उसके प्रति उसकी अभिरूचि न हो। ऐसी स्थिति में किसी विशिष्ट काम या अध्ययन में रूचि लेने का कारण अभिरूचि की बजाय कुछ और होता है, जैसे – कोई प्रलोभन, माता-पिता की अपेक्षा, नौकरी प्राप्त करने की संभावना, छात्रवृत्ति या आर्थिक सहायता की संभावना आदि। इसी प्रकार एक व्यक्ति की लम्बी तथा कुशल उंगलियां तो हो सकती हैं और वह मैकेनिकल अभिरूचि परीक्षण में भी अच्छा प्रदर्शन कर सकता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि घड़ी-साजी के काम में उसकी रूचि हो।

□ अभिरूचि का वर्गीकरण (Classification of Aptitude)

जीवन की किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति को कार्य या क्रिया (Activity) की संज्ञा दी जाती है। अभिव्यक्ति किसी भी ढंग से हो सकती है। उसके विभिन्न रूप हो सकते हैं और इन्हीं अर्थों में जीवन में हम कितने ढंग के कार्य करते हैं, उनकी कोई सीमा नहीं है। कौन व्यक्ति किस कार्यक्षेत्र में किस प्रकार की अभिरूचि रखता है, यह उसके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। कार्यक्षेत्रों की सीमा नहीं है, अतः अभिरूचियों की भी कोई सीमा नहीं है। इस दृष्टि से उनका वर्गीकरण भी एक दृष्टि से सीमाहीन ही है, परन्तु फिर भी उनके मापन और शिक्षा तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में उनकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर उन्हें निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है –

- 1) **संवेदनात्मक अभिरूचियां (Sensory Aptitudes)** – इस वर्ग में ऐसी अभिरूचियां शामिल की जा सकती हैं, जिनका संबंध बालक की संवेदनात्मक क्षमताओं तथा योग्यताओं (Sensory Abilities) से हैं। इस दृष्टि से किस बालक में वर्तमान में किस प्रकार की संवेदनात्मक अभिरूचि, जैसे – स्पर्श शक्ति (Power of Touch), घ्राण शक्ति (Power of Smell), श्रवण शक्ति (Power of Listening), देखने की शक्ति (Visionary Power), स्वाद शक्ति (Power of Taste) आदि से सम्बन्धित किस प्रकार की योग्यता है, जिसके आधार पर इन शक्तियों को काम में लाकर किए जाने वाले कार्यों में उस बालक के सफल हो जाने की भविष्यवाणी की जा सके, इस प्रकार के वर्ग समूह में आती है।

- 2) **मैकेनिकल अभिरूचियां (Mechanical Aptitudes)** - इस वर्ग में वे सभी अभिरूचियां शामिल की जा सकती हैं, जिनका सम्बन्ध मैकेनिकल यानी यांत्रिक कार्यों से होता है। सभी तरह के मिस्त्रीपन के कार्यों, जैसे - बढ़ईगिरी, स्कूटर, कार ठीक करने का कार्य, इंजिन ठीक करने का कार्य, सभी तरह की मशीनों की देखभाल, मरम्मत और उनसे काम लेने का कार्य आदि का सम्बन्ध इसी प्रकार की अभिरूचियों से होता है।
- 3) **कलात्मक अभिरूचियां (Artistic Aptitudes)** - इस वर्ग में वे सभी अभिरूचियां शामिल की जा सकती हैं, जिनका संबंध कलात्मक अभिव्यक्ति से होता है। उदाहरणार्थ - संगीतात्मक अभिरूचि (Musical Aptitude), नृत्यात्मक अभिरूचि (Aptitudes for Dance), रेखात्मक अभिरूचि (Aptitudes of Graphic Art), फोटोग्राफिक अभिरूचि (Photographic Aptitude), कविता रचना अभिरूचि (Poetic Aptitude) आदि।
- 4) **व्यावसायिक अभिरूचियां (Professional Aptitudes)** - इस वर्ग में सभी अभिरूचियां आती हैं, जिनका सम्बन्ध विभिन्न व्यवसायों से होता है तथा वह यह बताने में समर्थ होती हैं कि कौन किस कार्य या किस व्यवसाय विशेष में (आवश्यकत प्रशिक्षण आदि दिए जाने पर) सफल हो सकेगा। उदाहरणार्थ - लिपिक कार्य अभिरूचि (Clerical Aptitude), वकालत संबंधी अभिरूचि (Legal Aptitude), शिक्षण अभिरूचि (Teaching Aptitude), विमान चालक अभिरूचि (Pilot Aptitude) आदि।
- 5) **शैक्षिक अभिरूचियां (Scholastic Aptitudes)** - इसमें वे सभी अभिरूचियां आती हैं, जिनका संबंध शिक्षा संबंधी विभिन्न क्षेत्रों या विषयों से होता है तथा जिनकी सहायता से किसी बालक के बारे में यह भविष्यवाणी करने में आसानी होती है कि वह उचित शिक्षा सुविधाएं मिलने पर किसी विषय तथा क्षेत्र विषय में कुशलताओं का अर्जन ठीक प्रकार कर सकेगा। उदाहरणार्थ - वैज्ञानिक अभिरूचि (Scientific Aptitude), इंजीनियरिंग अभिरूचि (Engineering Aptitude), मेडीकल अभिरूचि (Medical Aptitude), वाणिज्य अभिरूचि (Commercial Aptitude), खेल-कूद अभिरूचि (Sports Aptitude) आदि।

□ अभिरूचि परीक्षण की उपयोगिता (Utility of Aptitude Tests)

अभिरूचि परीक्षणों का प्रयोग-क्षेत्र बहुत व्यापक है। वे निर्देश-सेवा की रीढ़ की हड्डी है। इनके परिणामस्वरूप हम उन कार्य-क्षेत्रों का अनुमान लगा सकते हैं, जिनमें किसी व्यक्ति के सफल होने की अत्यधिक संभावना है। अतः ये परीक्षण नवयुवकों को विभिन्न क्रियाओं तथा व्यवसायों से सम्बन्धित अध्ययन कोर्स चुनने में अत्यधिक सहायता कर सकते हैं।

दूसरे, शिक्षात्मक एवं व्यवसायिक चुनाव में भी ये बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। विभिन्न शिक्षा-कोर्सों तथा व्यवसायिक-कोर्सों के लिए उम्मीदवारों का वैज्ञानिक चुनाव करने में वे परीक्षाएं हमारे लिए अत्यधिक सहायक सिद्ध होती हैं। मन (Munn) के अनुसार 'वास्तव में अभिरूचि परीक्षा का महत्व इस बात में निहित है कि यह हमें उन व्यक्तियों में से - जो किसी निश्चित कौशल में योग्यता नहीं रखते, ऐसे व्यक्ति चुनने की योग्यता प्रदान करती हैं, जो उचित प्रशिक्षण प्राप्त करने पर उस कौशल में वांछित निपुणता प्राप्त कर सकते हैं' ('The chief value of aptitude testing is, in fact, that it enables us to pick out from those who do not yet have the ability to perform certain skills, those who, with a reasonable amount of training, will be most likely to acquire the skills in question and acquire them to a desirable level of proficiency.')

इस प्रकार निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों, विशिष्ट शैक्षणिक या व्यवसायिक कोर्स की प्रवेश परीक्षाओं या विशिष्ट कार्यों के लिए क्रिया का चुनाव करते समय 'अभिरूचि-परीक्षण' को उचित महत्व मिलना चाहिए। अभिरूचि-परीक्षण को रूचि-प्रश्नावली, व्यक्तित्व-परीक्षाओं, बुद्धि-परीक्षाओं के परिणामों के साथ समन्वित करके व्यक्तियों को उनकी क्षमतानुसार उनके उचित स्थानों तथा कार्यक्षेत्रों में लगाने के कार्य में सहायता मिल सकती है। इनसे उचित स्थान पर उचित व्यक्तियों के कार्य न करने से जो बर्बादी होती है, उसको रोका जा सकता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके द्वारा किए गए कर्मों का प्रभाव समाज व समाज के सदस्यों पर पड़ता है, यह प्रभाव सही या गलत हो सकता है। इसी प्रभाव के आधार पर हम उसके कर्मों की प्रशंसा या निंदा, अर्थात् – मूल्यांकन करते हैं। कभी-कभी कोई कर्म हमें तो अच्छा लगता है, परन्तु कुछ लोगों को खराब लगता है, तो कई बार अन्य लोगों को कोई कर्म अच्छा लगता है, तो हमें बुरा। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि हमारा आचरण संबंधी दृष्टिकोण भिन्न रहता है।

पर यदि यह पूछा जाए कि क्यों हम किसी कर्म को अच्छा या क्यों किसी कर्म को बुरा कहते हैं, तो इसके साधारणतः 2 उत्तर मिलते हैं। एक, हमें इस बात की चेतना है कि कौन-सा कर्म अच्छा या बुरा है। दूसरा, हमारा समाज कुछ कर्मों को अच्छा व कुछ कर्मों को बुरा मानता है। पर सामाजिक नियम व तरीके तो भिन्न-भिन्न होते हैं, तो क्या अच्छा व बुरा भी भिन्न-भिन्न होगा। इसी वजह से हमारे आचरण संबंधी विचार भिन्न होते हैं और हमारा आपसी संघर्ष होता है। जिसे हम उचित समझते हैं, दूसरे अनुचित। अतः नीतिशास्त्र में मनुष्य का आचरण कैसा होना चाहिए, कौन-से कर्म अच्छे या बुरे हैं, वास्तव में उनकी कसौटी क्या है, वे कहा तक ठीक हैं आदि का अध्ययन किया जाता है।

□ परिभाषा (Definition)

नीतिशास्त्र को अंग्रेजी में एथिक्स (Ethics) कहा जाता है, जिसकी उत्पत्ति यूनानी शब्द एथिका (Ethica) से हुई है, जिसका अर्थ होता है – रीति-रिवाज, व्यवहार, प्रचलन या आदत। नीतिशास्त्र के लिए मोरल फिलोसफी (Moral Philosophy) शब्द का भी प्रयोग होता है। मोरल शब्द लैटिन भाषा के मोरस (Moras) शब्द से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ भी रीति-रिवाज या आदत से है। इस तरह एथिक्स का शाब्दिक अर्थ है – मानव की रीति-रिवाजों या व्यवहारों का विज्ञान।

वस्तुतः रीति-रिवाज, व्यवहार, प्रचलन या आदत मनुष्य के अभ्यासजन्य आचरण हैं। मनुष्य की ऐच्छिक क्रियाओं को ही आचरण कहा जाता है। ऐच्छिक क्रियाओं से आशय उन क्रियाओं से हैं, जिन्हें करने में मनुष्य अपने संकल्प स्वातंत्र्य (Freedom of Will) का प्रयोग करता है। इस प्रकार नीतिशास्त्र का संबंध मनुष्य के ऐच्छिक क्रिया या आचरण से है।

उल्लेखनीय है कि नीतिशास्त्र केवल मनुष्य के आचरण का अध्ययन करता है, पशुओं के कर्मों का नहीं, क्योंकि पशुओं की क्रियाएं नहीं होती हैं। दूसरी शब्दों में नीतिशास्त्र में केवल समाज में रहने वाले मनुष्यों के आचरण का अध्ययन किया जाता है। इसका कारण है कि समाज में रहकर ही मनुष्य सच्चे अर्थ में मनुष्य बन पाता है। इस प्रकार नीतिशास्त्र में हम उन्हीं मानवीय ऐच्छिक कर्मों पर विचार करते हैं, जिसका असर समाज पर पड़ता है। मनुष्य के वैयक्तिक कर्म, जो समाज पर असर नहीं डालते, नीतिशास्त्र से बाहर हैं।

आचरण का अध्ययन भी 2 दृष्टिकोण से सम्भव है। एक, मनुष्य का आचरण कैसा होता है – कैसे हम कोई काम करते हैं। दूसरा, मनुष्य का आचरण कैसा होना चाहिए, अर्थात् – कैसा काम करना चाहिए – हमारा कौन-सा आचरण उचित है और कौन-सा अनुचित। नीतिशास्त्र का संबंध आचरण के औचित्य व अनौचित्य से है। कैसे कर्मों को उचित व किसे अनुचित कहा जाना चाहिए, यही इसकी केन्द्रीय समस्या है।

कर्मों के औचित्य व अनौचित्य को परखने के लिए कोई नियम अवश्य है। बिना किसी मापदण्ड यह कैसे जाना जा सकता है कि अमुक कर्म कैसा है। बिना किसी नियम के किसी भी कर्म का मूल्यांकन सम्भव नहीं है। अतः नीतिशास्त्र का लक्ष्य आचरण का नियम या मापदण्ड क्या है, इसकी मीमांसा करना है।

कुल मिलाकर नीतिशास्त्र में मानव आचरण के आदर्श की मीमांसा होती है, जिसमें मनुष्य के ऐच्छिक कर्मों, अर्थात् – आचरण के औचित्य व अनौचित्य का मूल्यांकन किया जाता है।

□ क्षेत्र (Scope)

किसी विषय के क्षेत्र का अर्थ है, उस विषय की सीमा, अर्थात् – वैसी समस्याएं, जिनका उस शास्त्र में अध्ययन या विमर्श होता है। नीतिशास्त्र में नैतिक चेतना से संबंधित विषयों का अध्ययन किया जाता है। यह विषय निम्नलिखित हैं –

- 1) नैतिक गुण का अर्थ (Moral Qualities) – उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, गुण-दोष आदि का वास्तविक अर्थ क्या है, नीतिशास्त्र में मुख्यतः इसी पर विचार किया जाता है। मानव आचरण का मूल्यांकन इन्हीं विचारों के द्वारा होता है। अतः इनका स्पष्ट अर्थ जान लेना आवश्यक है।

- 2) **नैतिक निर्णय (Moral Judgment)** - नीतिशास्त्र हमारे कर्मों का नैतिक निर्णय करता है, अर्थात् - वह बतलाता है कि कौन-सा कर्म उचित है तथा कौन-सा अनुचित। नैतिक निर्णय से संबंधित होने के कारण नैतिक निर्णय का स्वरूप, उनका विषय, उसकी मान्यताएं तथा नैतिक निर्णय करने की शक्ति का अध्ययन भी नीतिशास्त्र के विषय हो जाते हैं।
- 3) **नैतिक मापदण्ड (Moral Standard)** - प्रत्येक निर्णय में किसी मापदण्ड की आवश्यकता होती है, इसलिए नैतिक निर्णय में नैतिक मापदण्ड का ज्ञान आवश्यक है। अतः नैतिक मापदण्डों का अध्ययन नीतिशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।
- 4) **नैतिक पद्धति (Ethical Method)** - सभी निर्णयों का अपना तरीका होता है। इसी को हम उस निर्णय की पद्धति कहते हैं, इसलिए नीतिशास्त्र में हमें यह भी विचार करना है कि नैतिक निर्णय की पद्धति क्या है।
- 5) **कर्तव्य, अधिकार और नैतिक बाध्यता (Duty, Right & Moral Obligation)** - उचित तथा अनुचित की चेतना के साथ कर्तव्य एवं नैतिक बाध्यता की चेतना भी रहती है। जिसे हम उचित समझते हैं, उसे करना और जिसे अनुचित समझते हैं, उसे नहीं करना, हम अपना कर्तव्य समझते हैं। हम एक प्रकार के बंधन का अनुभव करते हैं, जो हमें उचित कर्म करने को बाध्य करता है तथा अनुचित कर्म नहीं करने को, इसीको नैतिक बाध्यता कहते हैं। हम अनुभव करते हैं कि हम नैतिक नियम के बंधन से जकड़े हुए हैं। कांट का कहना है कि उचित का कोई अर्थ नहीं है यदि उसका करना कर्तव्य नहीं समझा जाए। एक व्यक्ति का कर्तव्य दूसरे के लिए अधिकार हो जाता है तथा एक व्यक्ति का अधिकार दूसरे के लिए कर्तव्य। अतः कर्तव्य, अधिकार और बाध्यता का विचार नीतिशास्त्र में किया जाता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं, जिनका समाधान करना नीतिशास्त्र का कार्य है, क्योंकि कुछ कर्म कर्तव्य हो जाते हैं? नैतिक बाध्यता का स्वरूप क्या है? नैतिक बाध्यता की उत्पत्ति कैसे होती है?
- 6) **नैतिक भावना (Moral Sentiment)** - उचित कर्म करने से जो आनन्दानुभूति या संतोषानुभूति होती है तथा अनुचित कर्म करने से जो विषाद या पश्चाताप की अनुभूति होती है, उसी को नैतिक भावना कहते हैं। इन अनुभूतियों का नैतिक निर्णय में क्या स्थान है, इस प्रश्न पर भी नीतिशास्त्र में विचार-विमर्श होता है। नैतिक भावना का स्वरूप तथा उसकी उत्पत्ति भी नीतिशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।
- 7) **दण्ड तथा पुरस्कार (Punishment & Reward)** - हम कहते हैं कि उचित कर्म करने वाले को पुरस्कार मिलना चाहिए तथा अनुचित कर्म करने वाले को दण्ड। अतः दण्ड तथा पुरस्कार का अर्थ, उनके विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त नीतिशास्त्र के अध्ययन विषय हैं।

□ लक्ष्य एवं उपयोगिता (Objectives and Usefulness)

मानव जीवन का आदर्श बतलाना ही नीतिशास्त्र का मुख्य लक्ष्य है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य क्या होना चाहिए, उस लक्ष्य का वास्तविक स्वरूप क्या है, मनुष्य को कैसा रहना चाहिए, उसका कैसा आचरण नीति संबद्ध है आदि बातों का अध्ययन नीति मीमांसा में किया जाता है। इसलिए नीतिशास्त्र के सैद्धान्तिक व व्यवहारिक दोनों पक्ष हैं।

नीतिशास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन होने के कारण इसका पहला लाभ तो यह है कि बहुत-सी प्रचलित अशुद्धियों तथा रूढ़ीवादी नीति संबंधी अंधविश्वासों से मस्तिष्क मुक्त हो जाता है। मनुष्य अज्ञानता के कारण बहुत-सी ऐसी बातें नीतियुक्त मानता है, जो वास्तव में नीति की दृष्टि से मानवीय नहीं है।

नीतिशास्त्र व्यक्ति को अपने जीवन के आचरण में सलाह देता है तथा उनके अन्तःकरण को प्रकाशित करता है, जिसमें वह अपने तथा अन्य मनुष्यों के कर्मों, इच्छाओं तथा विचारों का सही ढंग से मूल्यांकन कर सके। इस तरह स्पष्ट है कि नीतिशास्त्र निषेधात्मक तथा भावात्मक दोनों पक्ष हैं और प्रत्येक पक्ष में इसका सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक मूल्य है।

आज के भौतिक युग में नीतिशास्त्र का उपयोग और अधिक बढ़ गया है। आज का मानव भौतिक सुखों की प्राप्ति में ही संलग्न है, जिससे वह अनैतिकता व बुराइयों से घिर गया है। ऐसी स्थिति में नैतिक का सही ज्ञान देने वाले नीतिशास्त्र की आवश्यकता और बढ़ गई है।

वर्तमान में विज्ञान व तकनीकी की प्रगति ने मानव के हाथों में असीम शक्ति प्रदान कर दी है। यदि वह नैतिकता की अवहेलना करता है, तो विज्ञान मानव जाति का संरक्षक न होकर संहारक बन सकता है। इस स्थिति में नीतिशास्त्र का अध्ययन काफी उपयोगी हो गया है।

□ नैतिक चेतना (Moral Consciousness)

चेतना का अर्थ है - बोध या जानकारी। अतः नैतिक चेतना का अर्थ है - नैतिक गुणों का बोध। उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य आदि नैतिक गुण हैं और उनके विचारने में जो मानसिक स्थिति या क्रिया होती है, उन्हें ही नैतिक चेतना कहा जाता है।

◆ नैतिक चेतना के तत्व (Factors of Moral Consciousness)

नैतिक चेतना एक जटिल मानसिक स्थिति है। इसमें किसी विषय का ज्ञान, भावना और क्रिया विद्यमान रहती है, इसलिए इसके 3 तत्व हैं -

- 1) **ज्ञानात्मक तत्व (Cognitive Factors)** - नैतिक चेतना में नैतिक भेदों का ज्ञान रहता है, अतः इसमें निम्नलिखित तत्व शामिल हैं -
 - a) नैतिक गुणों, अर्थात् - उचित या अनुचित के भेद का ज्ञान।
 - b) इस बात का ज्ञान कि नैतिक निर्णय का विषय ऐच्छिक कर्म है।
 - c) नैतिक निर्णय किसी नियम के आधार पर ही होता है। अतः इसमें नैतिक नियम की भी चेतना रहती है।
 - d) नैतिक नियम किसी आदर्श की पूर्ति के साधन होते हैं। अतः नैतिक चेतना में नैतिक आदर्श का भी ज्ञान रहता है।
 - e) अच्छे कर्मों को करना चाहिए और बुरे कर्मों को नहीं करना चाहिए। 'चाहिए' का बोध नैतिक निर्णय में रहता है, अतः नैतिक चेतना में दायित्व का बोध है।
 - f) दायित्व से संबद्ध अधिकार का बोध है। अतः नैतिक चेतना में नैतिक अधिकार का भी बोध है।
 - g) अच्छे कर्मों के करने पर जो गुण और बुरे कर्मों के आचरण करने पर जो दोष हम अर्जित करते हैं, उनकी भी चेतना रहती है।
 - h) ऐच्छिक कर्मों के लिए व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार रहता है, क्योंकि वे कर्म उसके अपने हैं। अतः नैतिक चेतना में जिम्मेदारी की भी चेतना रहती है।
- 2) **भावनात्मक तत्व (Affective Factors)** - नैतिक चेतना केवल बोद्धिक नहीं है, इसमें भावनाएं भी विद्यमान रहती हैं। जब किसी कर्म का नैतिक निर्णय होता है, तब प्रशंसा या निंदा के भाव अवश्य रहते हैं। इन भावनाओं को नैतिक भावना कहा जाता है।
- 3) **क्रियात्मक तत्व (Conative Factors)** - नैतिक चेतना में नैतिक आवेग व चुनाव की क्रिया भी विद्यमान रहती है।
 - a) **नैतिक आवेग (Moral Impulse)** - वैसे कर्म, जो उचित विचार आते उनके आचरण की प्रवृत्ति होती है और जो अनुचित विचार आते हैं, उन्हें नहीं करने की प्रवृत्ति होती है। अच्छे कर्मों को करने की इच्छा व बुरे कर्मों को नहीं करने की इच्छा होती है।
 - b) **चुनाव की क्रिया (Selection Process)** - करने और नहीं करने के संघर्ष के कारण चुनाव की क्रिया होती है। हम वैसे कर्मों को जिन्हें अच्छा विचारते हैं, चुन लेते हैं और वे ही करने का निश्चय करते हैं। अतः नैतिक चेतना में चुनाव की क्रिया भी विद्यमान है।

□ नैतिकता की आवश्यक मान्यताएं (Post to lates of Moral Judgment)

आवश्यक मान्यताएं अनिवार्य स्वीकृति हैं, जिसे किसी घटना की व्याख्या करने के लिए सत्य मान लिया जाता है। नैतिकता की भी कुछ मान्यताएं हैं, जिन्हें बिना तर्क-वितर्क के सत्य मान लिया जाता है। इन मान्यताओं के अभाव में नैतिकता का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। नैतिकता की 3 आवश्यक मान्यताएं हैं, जो निम्नलिखित हैं -

- 1) **व्यक्तित्व (Personalty)** - नैतिक निर्णय ऐच्छिक क्रिया पर ही किया जाता है। ऐच्छिक कर्म उसे कहते हैं, जिसे कर्ता स्वेच्छा से शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित का विचार आदि का संकल्प करके करता है। पेड़-पौधों की क्रिया में चेतना का अभाव है। पशुओं की क्रियाओं में चेतना रहती है, किन्तु शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित का भाव नहीं पाया जाता है। अतः उसी का कर्म ऐच्छिक कहला सकता है, जिसमें नैतिक चेतना हो और उसके अनुसार कार्य क्षमता विद्यमान हो। इस दृष्टिकोण से विवेक व चेतना से संपन्न मनुष्य ही ऐच्छिक कर्म का कर्ता हो सकता है, इसलिए नैतिकता का केन्द्र बिन्दु व्यक्तित्व है। यदि आचरण करने वाला कोई व्यक्तित्व न हो, तो नैतिक निर्णय अर्थहीन हो जाता है।

- 2) **विवेक (Reason)** - नैतिकता की आवश्यक मान्यताओं में विवेक एक अनिवार्य तत्व है। विवेक गुण के द्वारा ही मनुष्य जानवरों से श्रेष्ठ माना जाता है। उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ के पहचानने की क्षमता ही विवेक है। यदि व्यक्ति को विवेक न हो, तो फिर उसके आचरण पर नैतिक निर्णय कैसे दिया जा सकेगा। विवेक के आधार पर ही व्यक्ति नैतिक नियमों को जानता है। विवेकहीन व्यक्तियों के कर्म (जैसे - बालक, पागल आदि) नैतिक निर्णय के विषय नहीं बन सकते हैं। अतः नैतिक निर्णय के लिए विवेक एक अनिवार्य नैतिक मान्यता है।
- 3) **संकल्प स्वातंत्र्य (Freedom of Will)** - मनुष्य के ऐच्छिक कर्म ही नैतिक निर्णय के विषय हैं। ऐच्छिक कर्म संकल्प स्वातंत्र्य के बिना संभव नहीं है। उसी कर्म पर नैतिक निर्णय दिया जा सकता है, जिसे करने में व्यक्ति किसी बाह्य सत्ता द्वारा विवश न हो। जब व्यक्ति दूसरे के प्रभाव या दबाव में आकर कोई कर्म करता है, तब उसके लिए उसे उत्तरदायी बताना अनुचित है। जब कर्म करने में व्यक्ति की अपनी इच्छा स्वतंत्र नहीं, तब फिर उसके कर्म को उचित या अनुचित नहीं कह जा सकता है, इसलिए नैतिक निर्णय के लिए संकल्प स्वातंत्र्य का रहना नितांत आवश्यक है।

□ नीतिशास्त्र का अध्ययन

नीतिशास्त्र का अध्ययन 2 रूपों में किया जाता है -

1) एक विषय के रूप में।

2) एक व्यवस्था के रूप में।

- 1) **एक विषय के रूप में नीतिशास्त्र** - नीतिशास्त्र समाज से संबंधित वह मानकीय विज्ञान है, जो समाज को कुछ नैतिक मूल्य एवं सिद्धान्त प्रदान करता है और उनके आधार पर समाज में रहने वाले सामान्य मनुष्यों के ऐच्छिक कर्मों, अर्थात् - आचरणों का मूल्यांकन करता है। यह सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों तरह का विज्ञान है, क्योंकि यह सैद्धान्तिक मानदण्ड देने के साथ-साथ उनका व्यवहारिक मूल्यांकन भी करता है।
- 2) **एक व्यवस्था के रूप में** - नीतिशास्त्र विभिन्न समाजों में जो नैतिक व्यवस्थाएं मौजूद हैं, उनमें निम्नलिखित सामान्य विशेषताएं मौजूद होती हैं -
- समाज में नैतिक नियमों को लेकर एक सामान्य सहमति होती है। यह सामान्य सहमति ही नैतिक नियमों को जीवन देती है। हालांकि कभी-कभी इन नियमों को लेकर विचलन भी दिखाई पड़ता है।
 - नैतिक व्यवस्था परामर्शकारी प्रवृत्ति की होती है, अर्थात् - यह कुछ नियमों के पालन का परामर्श देती हैं।
 - किसी भी समाज में नैतिक नियमों के पालन के लिए व्यक्ति पर या तो बाह्य दबाव होता है या वह ऐसा आन्तरिक प्रेरणा की वजह से करता है।
 - नैतिक व्यवस्था एक गतिशील अवधारणा होती है, अर्थात् - इसमें स्थान एवं समय के साथ-साथ बदलाव होते रहते हैं।
 - नैतिकता एक सीखी गई चीज है, जन्मजात नहीं, अर्थात् - जन्म के बाद होने वाली समाजीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप व्यक्ति नैतिक नियमों को सीखता है। अतः व्यक्ति का समाजीकरण जितने प्रभावी ढंग से होता है, वह नैतिक नियमों का उतने ही अनुकूल ढंग से पालन करता है।

□ नैतिकता को निर्धारित करने वाले कारक ()

किसी समाज में नैतिकता को निर्धारित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं -

- 1) **भौगोलिक स्थितियां** - किसी भी समाज के नैतिक नियमों में उस स्थान की भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव होता है। अगर समाज ऐसे स्थान पर रहता है, जहां का वातावरण ठंडा हो, तो वहां जानवरों को मारकर उनकी खालों का उपयोग स्वयं के शरीर को गर्म रखने हेतु करना उचित माना जाता है। जबकि गर्म स्थानों पर ऐसा करना उचित नहीं माना जाता है। इसी तरह ऐसे समाज जहां पर कृषि का विकास अधिक होता है, वहां पर शाकाहार के प्रति आग्रह अधिक होता है। जबकि अल्पविकसित कृषि वाले क्षेत्रों में मांसाहार के प्रति आग्रह अधिक होता है।
- 2) **जनांकीय स्थितियां** - किसी भी समाज के जनसंख्या के स्वरूप का प्रभाव उस समाज की नैतिक नियमावली पर पड़ता है। उदाहरणार्थ - अगर किसी समाज में युवाओं की संख्या अधिक हो, तो वह समाज नवाचार की ओर उन्मुख रहता है (भारत की वर्तमान अवस्था)।

- 3) **सामाजिक संरचना** - समाज का ढांचा और उसके विकास का स्तर नैतिक नियमावलियों को प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ - पारम्परिक समाजों में परम्परा एवं रीति-रिवाजों पर अधिक बल दिया जाता है एवं नए विचारों के प्रति स्वीकृति कम होती है। जबकि आधुनिक समाज व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अधिक बल देते हैं एवं नए विचारों को स्वीकार करने के लिए तैयार रहते हैं।
- 4) **धार्मिक स्थितियां** - किसी भी समाज में धर्म का व्यापक असर होता है। अतः धर्म इन समाजों की नैतिक नियमावलियों को प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ - जैन समाज अहिंसा के मूल्य पर अधिक बल देता है। अगर एक समाज में अनेक धर्मों की उपस्थिति हो, तो इनकी नैतिक नियमावलियों में सहिष्णुता एवं शांतिपूर्ण सहअस्तित्व जैसे मूल्यों पर अधिक बल दिया जाता है।
- 5) **अर्थव्यवस्था** - अर्थव्यवस्था की प्रकृति, जैसे - कृषि आधारित अर्थव्यवस्था या औद्योगिक अर्थव्यवस्था की नैतिक नियमावलियों में अन्तर पाया जाता है। उदाहरणार्थ - कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में पर्यावरण को विशेष रूप से महत्व दिया जाता है। जबकि औद्योगिक अर्थव्यवस्था में ऐसा नहीं होता है।
- 6) **राज्य का स्वरूप** - नैतिकता पर राज्य के स्वरूप का भी प्रभाव पड़ता है। अगर राज्य लोकतांत्रिक है, तो नियमावलियों में समानता एवं स्वतंत्रता पर समान बल दिया जाता है। जबकि निरंकुश व्यवस्था पर समानता एवं स्वतंत्रता को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। इसी तरह अगर राज्य कमजोर हो, तो नैतिक नियमों पर सामाजिक परम्पराएं अधिक हावि होती हैं। जबकि मजबूत राज्य कानूनों को सामाजिक परम्पराओं से ऊपर रखता है।
- 7) **सामाजिक विकास** - विकसित समाज उदारवादी मूल्यों, जैसे - स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय पर अधिक बल देता है। जबकि अविकसित समाज में परम्पराओं, रूढ़िवादिता आदि पर अधिक बल दिया जाता है।

□ नीतिशास्त्र की प्रचलित विचारधाराएं

नीतिशास्त्र से संबंधित विभिन्न विचारधाराओं को 3 समूहों में बांटा जा सकता है -

- 1) कर्तव्यवाद/नियमवाद (De-ontology)।
- 2) प्रयोजनवाद/परिणामवाद (Teleology)।
- 3) सद्गुण नीतिशास्त्र (Virtue Ethics)।

♦ कर्तव्यवाद/नियमवाद (De-ontology) -

इसका अर्थ है - कोई कार्य नैतिक है या नहीं। इसका फैसला केवल इस आधार पर होगा कि नैतिक नियम क्या कहते हैं। उस कार्य के परिणाम का आकलन करके नैतिकता का फैसला नहीं किया जाएगा। उदाहरणार्थ - भाई-बहन के विवाह का नहीं होना एक नैतिक नियम है, जिसे किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ा जाएगा। इस समूह की विचारधाराओं के अन्तर्गत निम्नलिखित विचारकों के विचार आते हैं -

- 1) **कांट का नैतिक सिद्धान्त** - हमारे भीतर अन्तरात्मा हमें बताती है कि निरपेक्ष आदेश (Categorical Imperative) आदेश क्या है। मनुष्य को बिना किसी अन्य प्रश्न पर विचार किए केवल एवं केवल निरपेक्ष आदेश का पालन करना चाहिए, परिणाम या फल के बारे में सोचना भी अनैतिक है।
- 2) **गीता का निष्काम कर्म** - मनुष्य को केवल अपने स्वधर्म के अनुसार कर्म करना चाहिए। इस बात पर बिल्कुल विचार नहीं करना चाहिए कि उसका फल मिलेगा या नहीं।
- 3) **अन्तःप्रज्ञावाद** - इस सिद्धान्त के कई रूप हैं। मोटे तौर पर इसका अर्थ भी यही है कि कुछ निश्चित नैतिक नियम हैं, जो व्यक्ति को अपनी अन्तरात्मा या नैतिक इन्द्रियों से ज्ञात होते हैं।
- 4) **गांधीजी का नैतिक सिद्धान्त** - गांधीजी ने साध्य के साथ-साथ उस साध्य को प्राप्त करने के साधन की पवित्रता पर भी जोर दिया है। उनके अनुसार जितना साध्य महत्वपूर्ण है, उतना ही महत्वपूर्ण साधन है। इसी वजह से स्वतंत्रता आन्दोलन में उन्होंने सत्य एवं अहिंसा का मार्ग अपनाया।

♦ प्रयोजनवाद/परिणामवाद (Teleology)

इसका अर्थ है – कोई कार्य नैतिक है या नहीं, इसका निर्णय उस कार्य के परिणामों से तय होगा न कि किसी निश्चित नियम से। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि अगर कार्य के परिणाम शुभ है, तो कार्य भी शुभ है। यदि उसके परिणाम निश्चित हैं, किन्तु शुभ तत्व का अनुपात अशुभ तत्व से प्रबल है, तो भी वह सापेक्षतः नैतिक ही माना जाएगा। इस समूह में निम्नलिखित विचारधाराएं हैं –

- 1) **स्वार्थवाद (Egoism)** – इसका अर्थ है – प्रत्येक व्यक्ति मूल प्रकृति में स्वार्थी होता है तथा उसे प्रत्येक निर्णय इसी आधार पर करना चाहिए कि उसके स्वार्थ की अधिकतम संतुष्टि किस विकल्प द्वारा हो सकती है।
- 2) **सुखवाद (Hedonism)**– प्रत्येक व्यक्ति मूलतः अपने सुखों का आकांक्षी होता है। अतः उसे प्रत्येक स्थिति में उसी विकल्प का चयन करना चाहिए, जो उसे अधिकतम सुख प्रदान करें।
- 3) **उपयोगतावाद (Utilitarianism)**– यह भी एक प्रकार से सुखवाद की ही शाखा है, किन्तु यह व्यक्ति के स्वार्थपरक सुखों की बजाय अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख पर बल देती है।
- 4) **विकासवादी नीतिशास्त्र (Ethical Evolutionism)**– जिस तरह प्रकृति में उत्तरजीविता का संघर्ष होता है, उसी प्रकार विभिन्न नैतिक सिद्धान्तों में भी संघर्ष चलता रहता है। वही नैतिक नियम या मूल्य श्रेष्ठ हैं, जो मानव समाज को उत्तरजीविता के संघर्ष तथा विकास की प्रक्रिया में सहायता प्रदान करें।
- 5) **पूर्णतावाद (Perfectionism)** – प्रत्येक व्यक्ति का वास्तविक उद्देश्य अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना है। यह मुख्यतः बुद्धि के नियंत्रण में भावनाओं को रखते हुए हो सकता है। वही कार्य एवं सिद्धान्त नैतिक हैं, जो मनुष्य को पूर्णता तक पहुंचने में सहायता करें।

♦ सद्गुण नीतिशास्त्र (Virtue Ethics)

कोई कार्य नैतिक है या नहीं, इसका निर्णय इस बात से होगा कि सद्गुण से युक्त व्यक्ति उसके संबंध में क्या निर्णय लेता है। उदाहरणार्थ – अगर किसी व्यक्ति में न्याय का सद्गुण विकसित हो गया है, तो जटिल से जटिल स्थिति में भी उसका व्यवहार न्यायपूर्ण ही होगा। उसके व्यवहार या कार्य से विभिन्न विकल्पों को नैतिक या अनैतिक में वर्गीकृत किया जा सकता है।

□ नैतिक निर्णयन का प्रतिमान (Model for Ethical Decision Making)

नैतिक निर्णयन करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है –

- 1) कृत्य (Action), घटना, परिस्थिति तथा कृत्य के प्रभाव का विश्लेषण करना चाहिए।
 - a) यह देखना चाहिए कि अनैतिक कार्य किया जा चुका है, किया जा रहा है या बाद में होने वाला है। अगर होने वाला है, तो रोकने के उपाय प्राथमिक होंगे एवं अगर हो चुका है, तो उसके प्रभाव का प्रबंधन करना चाहिए।
 - b) जिस व्यक्ति ने कार्य किया क्या उसकी परिस्थितियां उसे बाध्य कर रही थीं या वह अनुकूल परिस्थितियों के बावजूद ऐसा कर रहा था। परिस्थितियों के अनुसार दण्ड में कठोरता या विनम्रता का समावेश होना चाहिए।
 - c) उस कार्य का प्रभाव किस पर पड़ा तथा कितना पड़ा है, यह देखना चाहिए। यदि अधिक मात्रा में उसी (कर्ता) का नुकसान हुआ, तो बहुत बड़े कदम उठाने की आवश्यकता नहीं है। यदि नुकसान किसी अन्य व्यक्ति को हुआ, तो कर्ता के कृत्य को गंभीर मानना चाहिए और यदि कृत्य का असर पूरे समाज को तो कृत्य अतिगंभीर मानना चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान रखे कि प्रभाव का स्तर क्या है। यदि किसी व्यक्ति या समाज के अस्तित्व को चुनौती है (जैसे – आतंकवाद), तो अतिगंभीर मामला बनता है। परन्तु किसी साधारण से पक्ष पर थोड़ा-सा प्रभाव पड़ रहा है (जैसे – छोटे बच्चे का क्लास रूप में चिल्लाना), तो हल्के उपायों से ही समाधान किया जाना चाहिए।
 - d) कर्ता की परिस्थितियों पर ध्यान देते समय उसकी आयु, पृष्ठभूमि तथा तात्कालिक परिस्थितियों पर ध्यान देना चाहिए अगर तात्कालिक परिस्थितियां कठिन हैं, तो यह ध्यान दे कि उनकी कठिनाई के पीछे कर्ता की जिम्मेदारी कितनी है।
- 2) निर्णयकर्ता के समाने कौन-कौन से नैतिक विकल्प उपलब्ध हैं, उनकी सूची बनाए। दूसरे शब्दों में नैतिक निर्णय लेते समय क्रमबद्ध रूप (Step by Step) से विचार करते हुए अधिकतम विकल्पों पर विचार करना चाहिए।।

3) विभिन्न नैतिक विकल्पों का क्या परिणाम होगा, यह विचार करें। परिणाम अल्पकालिक या दीर्घकालिक दोनों दृष्टियों से सोचने चाहिए एवं यह भी कि वे हमारे वास्तविक उद्देश्य से सुसंगत है या नहीं। जैसे कि -

- कर्ता पर क्या परिणाम होगा।
- जिसके साथ कृत्य हुआ, उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा।
- समाज पर या समाज की नैतिकता पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

4) सबसे उपयुक्त विकल्प का चयन करना।

- अगर कर्ता में सुधार की संभावना है या उसकी भूल मानवीय भूल है या परिस्थितियों के दबाव पर आधारित है, तो कोशिश करनी चाहिए कि उसे सुधारने का मौका मिले। खुद को उस परिस्थिति में रखकर यह स्वयं स्पष्ट हो जाता है।
- यदि सुधारने की संभावना कम है या अपराध बार-बार दोहराया जा रहा है, तो दण्ड देना होगा। किन्तु कोशिश करनी चाहिए कि दण्ड इतना कठोर न हो कि वह व्यक्ति उससे कभी उभर ही न सके। केवल सोचे, समझे तथा अतिजघन्य कृत्यों में ही अपूर्ण क्षति पर आधारित दण्ड दिए जाने चाहिए।
- बदला लेना अपने आप में नैतिक मानसिकता का संकेतक नहीं है, इसलिए केवल बदला लेने की भावना से किया गया कोई भी कृत्य अनैतिक माना जाएगा।
- अगर आप कभी चाहे कि दण्ड ऐसा हो, जिससे बाकी लोग सबक ले सके, तो इससे एक नैतिक समस्या पैदा होती है। जिस व्यक्ति को दण्ड दिया जा रहा है, वह साधन बन जाता है एवं जिन्हें संदेश देना है, वे साध्य बन जाते हैं। किसी मनुष्य (साध्य) के लिए किसी दूसरे मनुष्य को साधन बना लेना मूलतः अनैतिक है।

इस सिद्धान्त का प्रयोग एक विशेष तरह से करना नैतिक हो सकता है। अगर दण्ड ऐसा हो कि कृत्य के अनुपात से अधिक न हो तथा दण्ड सार्वजनिक रूप से न दिया जाए एवं दण्डित व्यक्ति की पहचान गुप्त रखी जाए। किन्तु किसी को दण्ड दिया गया है, यह बात समाज को बताई जाए। तो दूसरों को सुधारने वाला पक्ष भी नैतिक माना जा सकता है। ऐसा करते हुए भी 2 शर्तों पर ध्यान देना जरूरी है -

- दण्ड कृत्य से अधिक नहीं होना चाहिए (कई बार माता-पिता सारे बच्चों को शांत करने के लिए किसी एक बच्चे की छोटी-सी भूल पर भी उसकी ज्यादा पिटाई करते हैं, ताकि सारे बच्चे सहम जाए)।
- अपराधी को भी जहां तक संभव हो निजता का अधिकार मिलना चाहिए।

केस स्टडी

आपके बचपन का दोस्त, जिससे आप सभी राज बांटते होंगे एवं वह आपके सुख-दुःख का सबसे गहरा साथी है, जिसके लिए वह आप लगभग कोई भी त्याग कर सकते हैं। वह ग्रेजुएशन की अंतिम वर्ष की परीक्षा में नकल कर रहा है। आप क्या करेंगे?

उत्तर -

किसी परिस्थिति में नैतिक निर्णय कई पक्षों पर आधारित होता है, जैसे - कर्ता की स्थिति, कृत्य का प्रभाव, उपलब्ध नैतिक विकल्प व उनके परिणाम। इन प्रतिमानों के आधार पर मैं इस परिस्थिति में निम्नलिखित कदम उठाऊंगा -

- चूंकि वह मेरा मित्र है एवं मैं चाहता हूं कि उसके साथ कुछ गलत न हो, अतः मैं आंखों या हाथों के संकेतों के माध्यम से उसे नकल करने से रोकूंगा, ताकि उसे परीक्षा के लिए अयोग्य घोषित न किया जाए।
- अगर वह संकेतों से नहीं मानता है, तो भी मैं शिकायत करने से बचूंगा। क्योंकि -
 - कृत्य इतना गंभीर नहीं है कि उसके सम्पूर्ण भविष्य को संकट में डाला जाए। वास्तविक उद्देश्य उसे इस गलती से बचाना है न कि हमेशा के लिए अच्छे भविष्य से वंचित करना है।
 - चूंकि उससे मेरा निजी संबंध है, सार्वजनिक नहीं और निजी संबंधों में शर्तहीन प्रतिबद्धता अपेक्षित होती है। अतः मेरे शिकायत करते ही हमारा सुन्दर संबंध समाप्त हो जाएगा। इससे न तो उसे सुधारने की प्रेरणा मिलेगी और न ही हमारा गहरा संबंध बचेगा।

- 3) मेरी जिम्मेदारी यहीं समाप्त नहीं होगी, अगर वह परीक्षा भवन में बच भी गया, तो यह संभावना है कि कभी न कभी किसी और स्थिति में वह ऐसे ही साधनों का सहारा ले एवं चिंताजनक परिणामों तक पहुंचे। अतः परीक्षा के बाद मैं निम्नलिखित कदम उठाऊंगा -
- मैं उसे समझाऊंगा कि नकल से होने वाला लाभ काफी कम है, जबकि उससे संभावित नुकसान कई गुना अधिक है।
 - अगर वह किसी विषय पर कमजोर है, तो कोशिश करूंगा की उसे समझा सकू, ताकि उसे नकल की जरूरत ही न पड़े।
 - अगर इतने पर भी वह नहीं मानता है, तो उसे किसी बहाने से डराने का प्रयास करूंगा, जैसे - परीक्षा निरीक्षक ने ऐसा करते हुए देख लिया था एवं अगली बार तो वह बिल्कुल नहीं छोड़ेगा।

(इस समस्या का सामाधान करते हुए यह हर बिन्दु पर ध्यान रखना जरूरी है कि व्यक्तिगत संबंधों में किसी के गलत आचरण को रोकने के लिए बेहद सावधानी एवं परपक्वता की आवश्यकता होती है।)

लोक प्रशासन में सदाचार एवं नैतिक मूल्य

□ मूल्य (Values)

मूल्य व्यक्ति के वे गहरे तथा स्थायी विश्वास हैं, जो उसे बताते हैं कि क्या करना उचित है एवं क्या करना अनुचित। मूल्यों का संबंध विश्वास से है। विश्वासों को 2 वर्गों में बांटा जाता है - तथ्यात्मक विश्वास तथा मानकीय विश्वास। तथ्यात्मक विश्वास का अर्थ उन जानकारियों से है, जो सही हो या गलत, किन्तु हमें भरोसा है कि वे सही हैं। मानकीय विश्वास जानकारियों से नहीं, बल्कि नैतिक संबंधों से संबंधित होते हैं। ये बताते हैं कि व्यक्तियों को कैसे सद्गुणों का विकास करना चाहिए, कैसे आचरण करना चाहिए। कुछ दार्शनिकों ने इन्हें 'चाहिएमूलक' विश्वास कहा है। इन्हीं विश्वासों को मूल्य कहते हैं। जब मूल्य किसी व्यक्ति के चरित्र में उतर जाते हैं, तो यहीं सद्गुण कहलाते हैं। उदाहरणार्थ - साहस, न्याय, धैर्य आदि।

नैतिक मूल्य हमेशा मानवीय होते हैं, चाहे उनके साथ यह विशेषण लगा हो या नहीं। कारण यह है कि नैतिक आचरण का संबंध केवल मनुष्य से है, अन्य प्राणियों या पेड़-पौधों से नहीं।

♦ मानवीय मूल्य की विशेषताएं

- मानवीय मूल्य अमूर्त होते हैं, अर्थात् - उन्हें देखा नहीं जा सकता है। किन्तु मूल्यों के आधार पर जो मानदण्ड या प्रतिमान निर्मित होते हैं, वे मूर्त होते हैं। उदाहरणार्थ - मूल्य यह है कि बड़ों का सम्मान करना चाहिए। इस मूल्य की अभिव्यक्ति अपने उम्र से बड़े लोगों के चरण स्पर्श के रूप में होती है।
- मूल्यों को सीखा जाता है। मूल्य जन्मजात नहीं होते हैं, बल्कि समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से सिखाए जाते हैं।
- मूल्य समान्यतः स्थायी प्रकृति के होते हैं। परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में बदलाव भी हो सकता है।
- मूल्य व्यक्तित्व के भीतर गहरे स्तर पर स्थित होते हैं एवं व्यक्ति की सम्पूर्ण मानसिकता को प्रभावित करते हैं।
- विभिन्न मूल्यों के मध्य एक सौपान्तिक स्तर होता है, अर्थात् - हम अपने कुछ मूल्यों को दूसरे मूल्यों से बेहतर मानते हैं।

लोक सेवा हेतु आधारभूत मूल्य Foundational Values for Civil Services

प्रत्येक संस्था, संगठन एवं सेवा क्षेत्र की अपनी एक कार्य संस्कृति होती है। मूल्य किसी संस्था या संगठन से जुड़े किसी कार्य संस्कृति के महत्वपूर्ण घटक होते हैं। वस्तुतः प्रत्येक संगठन या संस्था के अलग-अलग मूल्य हो सकते हैं, जो व्यक्ति जिस संगठन या संस्था में विश्वास या आस्था रखता है, वह प्रायः उन मूल्यों का अनुसरण करता है। मूल्य प्रायः आदेशसूचक होते हैं, जिसमें अनिवार्यता के तत्व होते हैं। ये मूल्य ही संगठन या संस्था से जुड़े व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित कर सही मार्ग की ओर निर्देशित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरणार्थ – धार्मिक व नैतिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य आदि।

जहां तक लोक सेवा का प्रश्न है, तो इसमें भी मूल्य की भूमिका महत्वपूर्ण है। लोक सेवा का सरोकार प्रत्यक्ष रूप से लोगों के जीवन के साथ होने के कारण इसके साथ मूल्य अनिवार्य रूप से अपेक्षित है। वास्तव में यही वह तत्व है, जिसके आधार पर लोक सेवा की सम्पूर्ण कार्य कुशलता और नीतियों के क्रियान्वयन की सफलता-असफलता का निर्धारण होता है। जिन राष्ट्रों में लोक सेवा के उच्च मूल्य प्रचलित रहे हैं तथा उनका निष्ठा से पालन किया गया हो, उन राष्ट्रों में न केवल लोक सेवाओं ने अपने लिए उच्च प्रतिष्ठा अर्जित की है, बल्कि उन राष्ट्रों ने वैश्विक परिदृश्य में भी अपनी गौरवशाली एवं मजबूत उपस्थिति दर्ज करवाई है।

भारत जैसे विकासशील देश में जहां व्यापक पैमाने पर सामाजिक-आर्थिक समस्याएं, जैसे – गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, साम्प्रदायिक दंगे, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद आदि हैं, वहां इन समस्याओं को देखते हुए लोकसेवक में कुछ आधारभूत मूल्यों की अपेक्षा की जाती है, जो देश की एकता व अखण्डता को बनाए रखते हुए विकास पथ पर ले जाए। इन आधारभूत मूल्यों में सत्यनिष्ठा (Integrity), निष्पक्षता (Impartiality), असमर्थकतावादी (Non-partisanship), वस्तुनिष्ठता (Objectivity), समर्पण (Dedication), सहानुभूति (Sympathy), समानुभूति (Empathy), सहिष्णुता (Tolerance), अशक्त वर्ग के प्रति संवेदना (Compassion Towards the Weaker Sections), उत्तरदायित्व (Accountability), पारदर्शिता (Transparency) आदि महत्वपूर्ण हैं।

□ सत्यनिष्ठा (Integrity)

सत्यनिष्ठा लोक सेवा का एक महत्वपूर्ण आधारभूत मूल्य है। सत्यनिष्ठा, Integrity का अंग्रेजी पर्याय है, जो लैटिन भाषा के इंटीजर (Integer) शब्द से बना है। इंटीजर का अर्थ है पूर्ण (Complete), अर्थात् – सत्यनिष्ठा एक ऐसी आन्तरिक भावना है, जिसमें व्यक्ति के नैतिक सिद्धान्तों, मूल्यों और विश्वासों की उसके व्यवहार से पूर्ण संगती होती है। सरल शब्दों में सत्यनिष्ठा से आशय है जो सत्य है उसके प्रति निष्ठावान या अडिग रहना, अर्थात् – जिन सिद्धान्तों को आप सही मानते हैं, व्यवहार में भी उन्हीं को अपनाना, भले ही परिणाम अलाभकारी हो।

स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति में भी सत्यनिष्ठा का मूल्य होगा, वह सदैव अपने सिद्धान्तों, मूल्यों व विश्वासों के अनुरूप ही व्यवहार करेगा। सत्यनिष्ठा को नैतिक सिद्धान्तों की दृढ़ता, निर्दोष चरित्र, स्पष्टता, ईमानदारी एवं कर्तव्य पालन के पर्यायवाची के रूप में भी परिभाषित किया जाता है। सत्यनिष्ठा एक व्यापक अवधारणा है, जिसके विभिन्न रूप हो सकते हैं, जैसे – बौद्धिक सत्यनिष्ठा, व्यवसायिक सत्यनिष्ठा, व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा आदि।

- 1) **बौद्धिक सत्यनिष्ठा (Intellectual Integrity)** – बौद्धिक सत्यनिष्ठा का आशय मूल्यांकन की पूर्णता से है, अर्थात् – स्वयं के कार्यों का मूल्यांकन उन्हीं मापदण्डों पर करना, जिन मापदण्डों के आधार पर हम दूसरों के कार्यों का मूल्यांकन करते हैं। दूसरे शब्दों में आपकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं होना चाहिए और यदि कोई अन्तर्विरोध है, तो उसे आत्मचिंतन द्वारा दूर करने का प्रयास करना चाहिए।
- 2) **व्यवसायिक सत्यनिष्ठा (Professional Integrity)** – व्यवसायिक सत्यनिष्ठा से आशय व्यवसाय विशेष में स्वीकृत नैतिक सिद्धान्तों, मूल्यों, मानकों या निर्देशों के अनुसार कार्य करने से है, जैसे – डॉक्टर, वकील आदि का व्यवसाय। डॉक्टर द्वारा रोगी के बिना जानकारी क्लिनिकल ट्रायल नहीं करना चाहिए। वकील को पक्षकार के प्रति पूरी सत्यनिष्ठा रखनी चाहिए।
- 3) **व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा (Personal Integrity)** – व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा जीवन से जुड़ा हुआ है। व्यक्ति द्वारा मान्य मूल्यों, आदर्शों या नैतिक सिद्धान्तों से व्यवहार की सुसंगती बनाए रखना ही व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा है, जैसे – किसी कार्य को करने के लिए झूठ बोलना पड़े, तो आप वह करने की बजाय उसे छोड़ना पसंद करेंगे।

♦ सत्यनिष्ठा की आवश्यकता

सत्यनिष्ठा आदर्शों एवं व्यवहार के बीच का अन्तराल कम करती है, अर्थात् - किसी राज्य या समाज के नागरिक सत्यनिष्ठ हो, तो उस राज्य या समाज में जैसे आदर्श होंगे, वैसा या उसके अनुकूल ही आचरण होगा। इससे राज्य अपने सभी लक्ष्यों को सदैव प्राप्त कर पाएगा। इसका सबसे ज्यादा लाभ समाज के उन वंचित वर्गों को होगा, जो मूलरूप से राज्य की योजनाओं और उसके माध्यम से मिलने वाले लाभों पर निर्भर होते हैं। इसका दूसरा लाभ भ्रष्टाचार की मुक्ति के रूप में प्राप्त होगा, क्योंकि भ्रष्टाचार का आशय ही है नियमों से विचलन।

♦ सत्यनिष्ठा के लाभ

इससे व्यक्ति की प्रमाणिकता, विश्वसनीयता व सम्मान में वृद्धि होती है, जिससे उस व्यक्ति की राजनीति, प्रशासन या व्यवसाय की सफलता की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। सम्मान वृद्धि से पुनः स्वयं को तथा अन्य व्यक्तियों को और अच्छे कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। व्यक्ति को अपने वरिष्ठ, कनिष्ठ अधिकारियों व जनता का समर्थन प्राप्त होता है, जिससे उसे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में आसानी होती है। इसके अलावा सबसे महत्वपूर्ण बात कि स्वयं को आत्म-संतुष्टी का अनुभव होता है।

□ निष्पक्षता (Impartiality)

लोक सेवा में निष्पक्षता एक महत्वपूर्ण एवं आधारभूत मूल्य है, जो न्याय की स्थापना करता है। किसी विषय या मुद्दे के प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह के उसके गुण-दोष के आधार पर निर्णय करना ही निष्पक्षता है। वस्तुतः लोक सेवा में कार्य करने वाले व्यक्ति भी समाज का अंग होते हैं, उनका जुड़ाव भी किसी न किसी धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा आदि से होता है। अतः लोक सेवक के रूप में उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वह लोक नीतियों, कार्यों, योजनाओं का कार्यान्वयन बिना पक्षपात के करें। यदि उसमें निष्पक्षता के मूल्य का अभाव होगा, तो जनता में शासन या प्रशासन के प्रति अविश्वास बढ़ेगा, जो राज्य के लिए खतरा हो सकता है। इस प्रकार समाज व राष्ट्र में न्याय की स्थापना हेतु लोक सेवक को निष्पक्ष होना बेहद आवश्यक है।

□ असमर्थकतावादी/गैर-तरफदारी/राजनीतिक निष्पक्षता (Non-partisanship)

भारतीय लोकतंत्र संसदीय शासन प्रणाली पर आधारित है, जो बहुदलीय व्यवस्था को अपनाती है। विभिन्न दलों के अपने मूल्य, सिद्धान्त एवं विचारधारा है, जिनके आधार पर वह चुनाव में भाग लेते हैं। लोकतंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इनका चुनाव निष्पक्ष तरीके से हो। दूसरी ओर लोक सेवक के भी अपने निजी राजनीतिक मूल्य, सिद्धान्त व विचारधारा या किसी दल विशेष के प्रति झुकाव हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में लोक सेवक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कर्तव्यों का पालन निष्पक्ष रूप से करे।

सरकार का स्वरूप लोक सेवक के व्यक्तिगत विचारधारा से संगत हो या असंगत, उसे गैर-राजनीति दृष्टिकोण अपनाते हुए निष्पक्ष रूप से अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। चूंकि भारत में नौकरशाही स्थायी कार्यपालिका होती है। सरकार के बदलने के बाद भी उसमें कोई बदलाव नहीं होता है। अतः ऐसी स्थिति में उसे अपने समस्त कार्य दलगत भावनाओं से ऊपर उठकर करना चाहिए। इससे सरकार और लोक सेवक के मध्य बेहतर संबंध स्थापित होते हैं, जिसका लाभ अन्ततः जनता को मिलता है। राजनीतिक निष्पक्षता के के निम्नलिखित लाभ हैं -

- 1) इससे आम नागरिकों में लोक सेवकों के प्रति विश्वास पैदा होता है और उन्हें यह भी लगने लगता है कि प्रशासकों के कार्य राजनीतिक प्रभाव से मुक्त है।
- 2) इससे सरकार में यह विश्वास पैदा होता है कि उनके निर्णय व आदेश निष्ठापूर्ण कार्यान्वित किए जाएंगे, अर्थात् - लोक सेवकों द्वारा अपने कर्तव्य पालन में उनके व्यक्तिगत राजनीतिक सिद्धान्त बाधा नहीं डालेंगे।
- 3) इससे लोक सेवकों के कार्यों का मूल्यांकन निष्पक्ष होता है। उनकी पदोन्नति किसी राजनीतिक हित से प्रभावित नहीं होती है।

भारत में राजनीतिक निष्पक्षता को बनाए रखने के लिए लोक सेवक को किसी राजनीतिक संगठन के सदस्य होने तथा किसी भी राजनीतिक आन्दोलन या कार्य में भाग लेने या उसके लिए चंदा लेने या उसे किसी प्रकार की सहायता देने का निषेध किया गया है।

□ वस्तुनिष्ठता (Objectivity)

लोक सेवा से जुड़े किसी भी व्यक्ति से वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा की जाती है। वस्तुनिष्ठता से अभिप्राय किसी विषय पर लिए गए निर्णय प्रमाणिक, सही विकल्पों तथा तथ्यों पर आधारित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में विषय के गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिए जाएं, न कि व्यक्तिगत पूर्वाग्रह से वशीभूत होकर। उदाहरणार्थ - नियुक्तियों करते समय, किसी व्यक्ति को पुरस्कार, लाभ या कार्य की सिफारिश करते समय, संविदाओं की स्वीकृति करते समय आदि। वस्तुनिष्ठता से निर्णय में पारदर्शिता आती है। जनता को इस बात का ज्ञान होता है कि यह निर्णय क्यों लिया गया तथा किस आधार पर लिया गया है। निर्णय लेने के कारणों का उल्लेख होने से संदेह का वातावरण हटता है।

□ समर्पण (Dedication)

किसी भी कार्य या लक्ष्य की सफलता के लिए समर्पण सबसे महत्वपूर्ण मूल्य है। समर्पण एक ऐसी मनःस्थिति है, जिसमें व्यक्ति अपने कार्य के प्रति पूर्णरूप से प्रतिबद्ध रहता है। दूसरे शब्दों में लक्ष्य या उद्देश्य के प्रति भावात्मक लगाव रखते हुए प्रतिबद्धता के साथ कार्य करना ही समर्पण कहलाता है। यदि किसी कार्य के प्रति समर्पण का मूल्य नहीं है, तो उसकी सफलता की दर कम हो जाती है। सामान्यतः यह पाया जाता है कि लोक सेवक अपने कार्यों को औपचारिकता मानकर करते हैं, जिस कारण बेहतर परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं। यदि लोक सेवक अपने कार्य को नौकरी मात्र न समझकर पूर्ण समर्पण भाव से कार्य करे, तो समाज व राष्ट्र का विकास तीव्र गति से होगा। यदि लोक सेवक में लोक सेवा के प्रति समर्पण भाव है, तो उसका प्रभाव जनता पर भी जाता है। उनमें भी जागरूकता तथा सहभागिता का भाव उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में सरकारी नीतियों का क्रियान्वन प्रभावपूर्ण ढंग से होने लगता है।

□ समानुभूति (Empathy)

समानुभूति का शाब्दिक अर्थ है - समान अनुभूति। दूसरे शब्दों में समानुभूति व्यक्ति की वह गहरी भावात्मक समझ है, जिसमें वह स्वयं को दूसरे लोगों की स्थिति से जोड़कर, उनकी मनःस्थिति को समझते हुए समस्या के स्वरूप एवं उसकी गहनता को महसूस करता है। समानुभूति तभी संभव है, जब व्यक्ति में स्वयं अपनी भावनाओं और इच्छाओं को समझ पाने अथवा पहचान पाने की क्षमता हो। इस मूल्य का दार्शनिक आधार समानता व बंधुत्व की भावना है, जिसमें व्यक्ति किसी अन्य दूसरे व्यक्ति को मानव होने की पहचान से संबंधित करता है। इस आधार पर दूसरे किसी व्यक्ति के कष्ट का मूल्यांकन इसी दृष्टिकोण से करता है कि किसी मानव के जीवन में गरीमापूर्ण जीवन जीने के लिए जिन बुनियादी बातों की जरूरत हैं, वे उसे उपलब्ध है या नहीं। एक प्रशासक के रूप में इसका संबंध सहिष्णुता, संवेदनशीलता और सामाजिक न्याय जैसी अवधारणा से जुड़ा है, तो वहीं दूसरी ओर इसके मनोवैज्ञानिक पक्ष के संदर्भ में इसका संबंध में भावात्मक बुद्धिमत्ता (EI) से है। एक लोक सेवक में यदि समानुभूति का मूल्य होगा, तो वह जनता से बेहतर तरीके से संवाद स्थापित कर आपसी समझ को बढ़ा सकता है, जिससे वह उनकी समस्याओं को ठीक ढंग से समझकर उनका निराकरण कर सकता है।

□ सहानुभूति (Sympathy)

समानुभूति एवं सहानुभूति दोनों का संबंध मानव के भावात्मक पक्ष से होते हुए भी इनमें अन्तर है। जब हम किसी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं, तो इसका अर्थ है कि हम उसके लिए दुःखी होते हैं या उस पर दया दिखलाते हैं। लेकिन वास्तविक रूप में हम यह नहीं समझ पाते कि जिसके लिए हम दुःख प्रकट कर रहे हैं, वास्तव में वह व्यक्ति कैसा महसूस कर रहा है, अर्थात् हम उसकी वास्तविक मनोदशा को नहीं समझ पाते हैं। जबकि समानुभूति में स्व और पर का अन्तर समाप्त हो जाता है। एक प्रकार से सहानुभूति का अगला चरण ही समानुभूति होता है।

□ सहिष्णुता (Tolerance)

सहिष्णुता से आशय है - सहनशीलता, अर्थात् - अपने से भिन्न मत, व्यवहार, सिद्धान्त, विचार, धर्म, राष्ट्रीयता आदि को भी सहन करने की योग्यता सहिष्णुता है। किन्तु यह सहिष्णुता की नकारात्मक व संकीर्ण पक्ष को प्रदर्शित करता है। सकारात्मक एवं व्यापक अर्थों में सहिष्णुता से आशय अपने विरोधी विचारों, मतों, आदतों, व्यवहारों आदि का सम्मान करना, उन्हें सुनना एवं समझना और वे सही व तार्किक होने पर सहमति प्रकट करना है। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक राष्ट्र, जहां विभिन्न धर्म, भाषा, जाति, संस्कृति पाई जाती है, वहां सहिष्णुता का मूल्य अतिआवश्यक हो जाता है, विशेषकर धार्मिक संदर्भ में।

लोक सेवा में धर्म निरपेक्षता की अवधारणा साकारित करने के लिए लोक सेवक में सहिष्णुता का मूल्य अतिआवश्यक है। इसके माध्यम से लोक सेवक में विपरीत एवं विरोधी विचारों को सुनने और सहन करने की क्षमता होगी, जिससे उसके कार्य निष्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। जनता के विपरीत विचारों को सुनने से वह कई बार जनता की वास्तविक समस्याओं को भी समझ सकता है। उसके अन्दर संवाद, समायोजन और सहअस्तित्व की भवना का विकास होगा, जो प्रकारान्तर से बेहतर प्रशासन देने में सहायता करेगा।

□ अशक्त वर्ग के प्रति संवेदना/करुणा (Compassion Towards the Weaker Sections)

करुणा से आशय दुःखी एवं कमजोर व्यक्तियों एवं प्राणियों के प्रति उत्पन्न होने वाली ऐसी भावना से है, जो उनकी दुःखपूर्ण स्थिति समझने तथा उनके प्रति समानुभूति रखने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। करुणा व संवेदनशीलता में हम दूसरों के कष्टों के प्रति हम इतने भावुक हो जाते हैं कि हम उस कष्ट के निवारण के लिए कुछ करने को प्रेरित हो उठते हैं। विभिन्न धर्म एवं दार्शनिक सम्प्रदायों में भी करुणा का एक महान सदगुण स्वीकार किया गया है। करुणा में निहित लक्षणों को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है -

- 1) करुणामय व्यक्ति दूसरे के प्रति समानुभूति प्रदर्शित करता है, अर्थात् - उनके दुःखों को समझता है और महसूस करने की कोशिश करता है।
- 2) करुणामय व्यक्ति में दूसरों को कष्ट से मुक्ति दिलाने की तीव्र इच्छा रहती है।
- 3) करुणामय व्यक्ति दूसरों की मदद इसलिए नहीं करता है, क्योंकि ऐसा करना उसकी बाध्यता है, बल्कि ऐसा वह अपनी इच्छा से करता है।
- 4) करुणामय व्यक्ति अपनी दलालुता के बदले दूसरों से कुछ पाने की उम्मीद नहीं रखता है।

एक लोक सेवक में कमजोर वर्ग के प्रति करुणा का मूल्य होना चाहिए। प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे कमजोर लोग या वर्ग होते हैं, जिनके उत्थान हेतु विशेष प्रयास करने की आवश्यकता होती है, ताकि वह समाज की मुख्य धारा में मिल सके। भारत में संरक्षणवात्मक नीति के तहत कमजोर वर्गों को समाज की मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में लोक सेवकों से इस बात की अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान ऐसे कमजोर वर्गों के प्रति विशेष रूप से सहानुभूति व चिंता प्रदर्शित करेंगे। यदि लोक सेवक में कमजोर वर्ग के प्रति करुणा एवं संवेदनशीलता नहीं होगी, तो उनके भटकाव की सम्भवना प्रबल हो जाएगी। जो नए प्रकार की सामाजिक समस्याओं को जन्म दे सकती है।

□ जवाबदेहिता (Accountability)

जवाबदेहिता का अर्थ है - जिस व्यक्ति के पास कोई विवेकाधीन शक्ति है, उस पर यह बाध्यता का होना कि वह अपने कृत्यों की संतोषपद व्याख्या कर सके एवं ऐसी व्याख्या के न होने पर उसे दण्ड दिया जा सकता हो। उदाहरणार्थ - वह इस बात की संतोषप्रद व्याख्या कर सके कि कितना धन किस मद में खर्च किया गया और क्यों? किसी विशेष स्थिति में कौन-सा निर्णय लिया गया और क्यों? अधिकारी द्वारा दी जाने वाली व्याख्या में निम्नलिखित गुण होने चाहिए -

- 1) तार्किकता
- 2) यह दिखे कि उसने अपनी तरफ से सर्वश्रेष्ठ कदम उठाया है।
- 3) उसका कदम संविधान एवं कानूनों से सुसंगत सिद्ध होता है।
- 4) उसका कदम नैतिक संहिता तथा आचरण संहिता के अनुरूप हो।
- 5) यह दिखे कि उसने कोई तथ्य न छुपाया हो।
- 6) उसने कोई भेदभाव न किया हो।

♦ प्रशासन में उत्तरदायित्व स्थापित करने के लिए उपाय

- 1) सूचना के अधिकार का प्रभावी उपयोग।
- 2) नागरिक अधिकार पत्र।
- 3) सूचना तकनीकी का प्रयोग।
- 4) लोक सेवाओं की समयबद्ध आपूर्ति सुनिश्चित करना।

5) लोकपाल एवं लोकायुक्त व्यवस्था को मजबूत करना।

6) भ्रष्टाचार निवारक कानून को प्रभावी बनाना।

□ पारदर्शिता (Transparency)

पारदर्शिता का तात्पर्य प्रशासन के अन्तर्गत लिए जाने वाले निर्णयों, क्रिया-कलापों, विकास योजनाओं पर व्यय धन तथा उसकी प्रगति की जानकारी आदि से संबंधित सूचना तक जनता की पहुंच सुनिश्चित होने से है।

प्रशासन में पारदर्शिता प्रशासकों के उत्तरदायित्वों को सुनिश्चित करने के साथ-साथ प्रशासनिक क्रिया-कलापों में जनता की भागीदारी का आधार निर्मित करती है। वर्तमान समय में जबकि सरकार से अपेक्षा की जा रही है कि वह अन्दर की बजाय ज्यादा से ज्यादा बाहर हो, सूचना की सहज और निर्बाध उपलब्धता की महत्ता स्वयं सिद्ध है। सरकार के बाहर होने का अर्थ है - उसके कार्यों की पारदर्शिता व शासन के कार्यों में लोगों की भागीदारी। एक प्रशासनिक संगठन को पारदर्शी माना जाता है, जब इसके निर्माण और काम करने का ढंग जनता के लिए, मीडिया की छानबीन के लिए और सार्वजनिक चर्चा के लिए खुला हो। शासन की एक पारदर्शी व्यवस्था सरकार के निर्णय निर्माण में जनता द्वारा सहभागी होने में सहायता करती है। इसके विपरीत शासकीय कार्यों में गोपनीयता भ्रष्टाचार व सार्वजनिक सत्ता के दुरुपयोग को बढ़ावा देती है और प्रशासकों को तानाशाह बना देती है।

भारत में सरकार के काम-काज को पारदर्शी व उत्तरदायी बनाने के लिए भारत सरकार ने अक्टूबर, 2005 में सूचना का अधिकार कानून को अधिनियमित किया है। इस अधिकार के पीछे बुनियादी उद्देश्य यह है कि सरकार “लोगों के लिए” है, यह खुली और जवाबदेह होनी चाहिए तथा इसके अन्तर्गत जिन लोगों का यह प्रतिनिधित्व करती है, उनसे कुछ नहीं छिपाया जाना चाहिए।

इस कानून के साथ-साथ नागरिक अधिकार घोषणा-पत्र भी प्रशासन में पारदर्शिता स्थापित करने का समुचित साधन है। यह एक ऐसा दस्तावेज है, जो सेवा के मानक सूचना, चयन एवं परामर्श, निष्पक्षता, शिकायत निवारण, सौम्यता एवं धन के मूल्य के संबंध में अपने नागरिकों या ग्राहकों के प्रति संगठन की प्रतिबद्धता पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रयास का निरूपण करता है।

नैतिक अभिशासन (Ethical Governance)

नैतिक अभिशासन का तात्पर्य शासन तथा प्रशासन के सभी स्तरों पर नैतिक आचरण करने से है। इसकी स्थापना तभी संभव है, जब निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाए -

- 1) संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप शासन व्यवस्था का निर्माण करना।
- 2) विधि के शासन का सम्यक् रूप से पालन सुनिश्चित करना।
- 3) व्यक्ति के मूल एवं विधायी अधिकार पूरी तरह सुनिश्चित हो तथा उल्लंघन होने के स्थिति में उन्हें त्वरित राहत प्राप्त हो।
- 4) कानूनों का निर्माण इस ढंग से हो कि वे सामाजिक हित में हो।
- 5) शासन के सभी स्तरों पर समाज के विभिन्न वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।
- 6) अधिकारियों के चयन में योग्यता के साथ-साथ नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के परीक्षण पर बल दिया जाए।
- 7) शासन के विभिन्न स्तरों में जनता को प्रत्यक्ष भागीदारी का अवसर उपलब्ध हो।
- 8) शासन में पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने वाली संस्थाएं मौजूद हो।

□ नैतिक अभिशासन की स्थापना में समस्याएं

नैतिक अभिशासन की स्थापना में 2 तरह की समस्याएं आती हैं - नैतिक चिन्ता एवं नैतिक दुविधा।

♦ नैतिक चिन्ता

कोई ऐसा कार्य या स्थिति जिसमें किसी नैतिक पक्ष का उल्लंघन हुआ हो या होने की संभावना हो, बेशक अभी तक कर्ता के मन में नैतिक दुविधा उत्पन्न न हुई हो या वह स्थिति उस कर्मचारी या संगठन के लिए कुछ अन्य लाभ भी क्यों न पैदा करती हो, नैतिक चिन्ता कहलाती है। नैतिक चिन्ताएं अनेक प्रकार की होती हैं -

♦ शासन तथा राजनीतिक स्तर पर

- 1) कहीं सरकार ऐसा कोई कदम तो नहीं उठा रही, जो संविधान की भावना के विरुद्ध हो। उदाहरणार्थ - मूल अधिकारों का उल्लंघन।
- 2) कहीं सरकार जनता पर आवश्यकता से अधिक नियंत्रण तो नहीं लगा रही है।

♦ नौकरशाही स्तर पर

- 1) कहीं सरकारी सम्पत्ति की चोरी या दुरुपयोग तो नहीं किया जा रहा।।
- 2) कहीं सरकारी सम्पत्ति का व्यक्तिगत हित में तो उपयोग नहीं किया जा रहा।

♦ नैतिक चिन्ताओं का समाधान

- 1) प्रशासकों की नियुक्ति के समय नैतिक मूल्यों की परीक्षा एवं उनका मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया जाना चाहिए।
- 2) प्रशिक्षण के समय प्रशासकों को विभिन्न प्रशासनिक एवं लोकतांत्रिक मूल्यों से अवगत कराना चाहिए।
- 3) नैतिक संहिता एवं आचार संहिता को सही तरीके से बनाया जाना चाहिए एवं इनका गंभीरता से पालन सुनिश्चित करवाया जाना चाहिए।
- 4) भ्रष्टाचार के रोकथाम हेतु समुचित संस्थागत उपाय किए जाने चाहिए।
- 5) उचित कार्य संस्कृति के विकास पर बल दिया जाना चाहिए।

♦ नैतिक दुविधा

नैतिक दुविधा एक मानसिक द्वंद की स्थिति है, जिसमें किसी व्यक्ति को दो या दो से अधिक विकल्पों में से किसी एक का चयन करना होता है और उसके पास प्रत्येक विकल्प का समर्थन करने वाले नैतिक कारण होते हैं। सभी दुविधाएं नैतिक दुविधाओं की श्रेणी में नहीं आते हैं। उदाहरणार्थ - मेरे पास इस हफ्ते में केवल 1 दिन का खाली समय है और मैं यह तय नहीं कर पा रहा हूं माण्डू जाऊं या उज्जैन जाऊं, तो ये दुविधा तो है, लेकिन नैतिक दुविधा नहीं। नैतिक दुविधा के विकल्पों में से कम से कम किसी एक का नैतिकता आधारित होना आवश्यक है। नैतिक दुविधाओं की स्थितियों को 3 समूहों में बांटा जा सकता है -

- 1) **व्यक्तिगत लाभ बनाम नैतिक विकल्प** - ऐसे विकल्पों में दुविधा यह होती है कि व्यक्ति अपने फायदेमंद विकल्प को चुने या उसे चुने जो उसके लिए फायदेमंद तो नहीं, लेकिन नैतिक है।
- 2) **विभिन्न नैतिक मूल्यों में दुविधा** - इसे निम्नलिखित उदाहरण से समझा जा सकता है - एक अधिनस्थ कर्मचारी, जो बेहद गरीब है, किसी से रिश्तत मांगते हुए पकड़ा गया है एवं शिकायत आपके पास आई है। अगर कार्यवाही करेंगे, तो उसकी नौकरी छूटेगी और उसके परिवार के लिए मुश्किलें होंगी, लेकिन अगर कार्यवाही नहीं की गई, तो भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलेगा। यहां पर करुणा एवं कर्तव्य निष्ठा के मध्य दुविधा की स्थिति है।
- 3) **मिश्रित दुविधा** - ऐसी दुविधा जहां दोनों विकल्पों में नैतिकता का प्रश्न हो और दोनों ही व्यक्तिगत लाभ से संबंधित हों।

♦ सामान्य नैतिक दुविधाएं

सरकारी सेवाओं में कार्यरत व्यक्तियों को निम्नलिखित दुविधाओं का सामना करना पड़ता है -

- 1) कार्यालय की किसी सम्पत्ति का व्यक्तिगत हित में प्रयोग करू या नहीं।
- 2) अगर कार्यालय में कोई और व्यक्ति भ्रष्टाचार कर रहा है, तो आगे बढ़कर उसकी शिकायत करू या नहीं।
- 3) रिश्तत लूं या नहीं।
- 4) अगर अपने व्यक्तिगत काम के लिए कार्यालय से बाहर जाना पड़े, तो उतने समय की औपचारिक छूट्टी लूं या नहीं।
- 5) किसी सरकारी कार्य के लिए अपने परिवार के किसी संबंधी को अवसर दूं या किसी योग्य व्यक्ति को।

निजी सेवाओं में कार्यरत व्यक्तियों को निम्नलिखित दुविधाओं का सामना करना पड़ता है -

- 1) निजी संस्था के मालिक के तौर पर अपने स्टाफ को समय से अधिक कार्य करने पर आर्थिक सुविधाएं दूं या नहीं।
- 2) कंपनी का लाभ अधिकतम स्तर पर ले जाने की कोशिश करूं या सामाजिक उत्तरदायित्व पर अधिक बल दूं।

- 3) निजी संस्था के मालिक के तौर पर अगर दो कर्मचारियों में से किसी एक को चुनना हो, तो किसे महत्व दूं। वह जो ईमानदार है, पर कम योग्य है या जो अधिक योग्य है, पर ईमानदार नहीं है।
- 4) किसी कंपनी के कर्मचारी को यह दुविधा हो सकती है कि वह अपने हित में काम करे या कंपनी के हित में, वह अच्छा काम करे या फिर उच्च कर्मियों से अच्छे संबंध बनाए।

नैतिक मार्गदर्शन (Ethical Guidance)

किसी भी संगठन के लिए यह आवश्यक होता है कि वह अपने कर्मियों को बताए कि वे नैतिक मार्गदर्शन कहा से लें, अर्थात् - जब नैतिक दुविधा उत्पन्न हो, तो वे ऐसी स्थितियों में निर्णय कैसे लें। इस तरह का मार्गदर्शन देते समय संगठन को बातें स्पष्ट करनी होती है कि वे नैतिक दुविधा की स्थिति में नैतिक मार्गदर्शन के लिए किन स्रोतों का इस्तेमाल करें।

□ नैतिक मार्गदर्शन के स्रोत

नैतिक मार्गदर्शन के स्रोत के रूप में विधि (Laws), नियम (Rules), विनियम (Regulation) तथा अन्तरात्मा (Conscience) की बेहद महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये सभी अपने-अपने तरीके से व्यक्ति को सही या गलत की पहचान कराते हैं।

नैतिक दुविधा की स्थिति में किसी भी व्यक्ति को सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि उस स्थिति से निपटने के लिए किसी तरह की कोई विधि उपलब्ध है कि नहीं। अगर कोई विधि उपलब्ध है, तो निर्णय उसके आधार पर ही होना चाहिए। किन्तु अगर ऐसी विधि उपलब्ध नहीं है, तो व्यक्ति को नियमों के आधार पर निर्णय करना चाहिए। इसी प्रकार यदि ऐसी परिस्थिति के लिए नियम भी उपलब्ध न हो, तो व्यक्ति को विनियम के आधार पर निर्णय करना चाहिए। नैतिक मार्गदर्शन के अंतिम स्रोत के तौर पर, जबकि न तो ऐसी कोई विधि है, न ही कोई नियम और न ही कोई विनियम। तब व्यक्ति को अपनी अन्तरात्मा के आधार पर निर्णय करना चाहिए।

♦ नैतिक मार्गदर्शन के स्रोत के रूप में अन्तरात्मा (Conscience as sources of Ethical Guidance)

अन्तरात्मा के अन्तरिक विश्वास है, जो व्यक्ति को बताता है कि क्या सही है और क्या गलत है। यह धर्म-निरपेक्ष व धार्मिक दोनों ही विमर्शों में पाया जाता है। धार्मिक चर्चा में इसे व्यक्ति के अन्दर से मुखरित ईश्वरीय वाणी के रूप में देखा जाता है, तो वहीं धर्म-निरपेक्ष विमर्शों में इसे उन विशेष परिस्थितियों में व्यक्ति द्वारा सहज रूप में अमल में लाए जाने वाले सामान्य नैतिक सिद्धान्तों के रूप में देखा जाता है, जिनका सामना एक व्यक्ति को करना होता है। यह वह विशिष्ट मस्तिष्कीय कार्य है, जिसके सहारे एक बुद्धिमान व्यक्ति किसी कार्य विशेष के गुण-दोष का निर्णय करता है। इसे विधि का पर्याय नहीं माना जा सकता है। यह विधि द्वारा किसी ककार्य विशेष के लिए उल्लेखित सामान्य नियमों से हटकर व्यवहारिक नियमों को प्रस्तुत करती है। अन्तरात्मा विशेष क्रिया-कलापों पर विधि या नियम को लागू करती है, इसलिए यह विधि की तुलना में अधिक व्यापक अवधारणा है। अन्तरात्मा के विरुद्ध आचरण करने पर व्यक्ति को अपराध बोध होता है। यही अपराध बोध उसे गलत काम करने से रोकता है। लेकिन यदि किसी मामले में बार-बार अन्तरात्मा का उल्लंघन किया जाए, तो अन्तरात्मा का दबाव धीरे-धीरे कम होते हुए समाप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ -

कार्य के दौरान पहली बार रिश्वत लेने पर अन्तरात्मा का दबाव बहुत अधिक होता है, लेकिन अगर बार-बार ऐसा किया जाए, तो धीरे-धीरे अन्तरात्मा का दबाव कम होने लगता है।

♦ व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा का प्रयोग कहां करें

- 1) जहां व्यक्ति के पास स्पष्ट रूप से विवेकाधीन शक्ति हो।
- 2) कोई विधि, नियम या विनियम तो है, किन्तु उसमें स्पष्टता का अभाव है एवं तार्किक तरीके से उसकी एक से अधिक व्याख्या हो सकती है। ऐसे में व्यक्ति को अपनी अन्तरात्मा से किसी एक व्याख्या को चुनना होता है।
- 3) जिस समस्या के लिए कोई पूर्व उदाहरण उपलब्ध न हो एवं न ही कोई निश्चित विधि, नियम या विनियम हो।
- 4) विधि, नियम एवं विनियम संख्या में इतने अधिक हैं कि कोई भी व्यक्ति उन्हें पूरी तरह जानने का दावा नहीं कर सकता। इसलिए व्यवहार में कई बार अन्तरात्मा से ही निर्णय करना पड़ता है। विशेषकर तब, जब तत्काल निर्णय करना जरूरी हो एवं उपयुक्त नियम या विनियम खोजने में लम्बा समय लग सकता हो।

♦ अन्तरात्मा के प्रयोग हेतु सावधानियां

- 1) व्यक्ति को कोशिश करनी चाहिए कि ऐसे विवेक क्षमता विकसित करे कि उसकी अन्तरात्मा समुचित निर्णयों पर ही पहुंचे, अर्थात् - उसे नैतिक मूल्यों के निहतार्थ को समझने का प्रयास करना चाहिए।
- 2) अपनी अन्तरात्मा से निर्णय लेने के पूर्व उसे और स्पष्ट जानकारी जुटाने की कोशिश करनी चाहिए।
- 3) अगर व्यक्ति को उचित सलाह मिलती है, तो उस पर ध्यान देना चाहिए।
- 4) अन्तरात्मा से निर्णय लेते समय अति-आत्मविश्वास अवस्था से बचना चाहिए।

लोकसेवकों हेतु आचरण संहिता

आचरण संहिता नियमों का समुच्चय होता है, जिसमें किसी व्यक्ति या संगठन की जिम्मेदारियों का या किए जाने वाले कार्यों का वर्णन रहता है। आचरण संहिता एक सिद्धान्त, मूल्य, मानक अथवा व्यवहार का नियम है, जो किसी संगठन के निर्णयों, प्रक्रिया तथा व्यवस्था को इस तरह मार्ग निर्देशित करता है, जिससे कि -

- 1) उसके सभी भागीदारों के कल्याण को सुनिश्चित किया जा सके।
- 2) सभी संघटकों के अधिकारों का सम्मान सुनिश्चित किया जा सके, जो इसके संचालन से प्रभावित होते हैं।

प्रशासन में कार्य कुशलता एवं कार्यनिष्ठा बनाए रखने के लिए तथा प्रशासकीय व्यवहार के उचित संचालन के लिए इन आचरण नियमों की आवश्यकता होती है। सभी कर्मचारियों से इन आचरण नियमों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है। ये नियम लोकसेवकों के व्यवहार का नियमन करते हैं और उन्हें इस बात से अवगत कराते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं।

♦ आवश्यकता

लोकसेवकों के लिए आचार संहिता की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से है -

- 1) राज्य कर्मचारी जनता के प्रत्यक्ष सम्पर्क में अधिक रहते हैं, अतः उनको अपना आचार व्यवहार उच्च रखना आवश्यक है, ताकि वे जनता के लिए आदर्श प्रस्तुत कर सकें।
- 2) लोकसेवक सरकार के कार्यकारी अंग होते हैं। यदि वे भ्रष्टाचार, पक्षपात, भाई-भतीजावाद आदि में लिप्त पाए जाते हैं, तो सरकार की बदनामी होती है।
- 3) सत्ता का दुरुपयोग रोकने के लिए आचार संहिता आवश्यक है।
- 4) प्रशासकीय कार्य-कुशलता को सुनिश्चित करने के लिए भी आचार संहिता आवश्यक है।

□ भारत में सरकारी कर्मचारियों के लिए आचार संहिता

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 309 में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह सरकारी कर्मचारियों के लिए आवश्यक आचार संहिता नियमों का निर्माण करें। इसके अन्तर्गत केन्द्र सरकार ने विभिन्न वर्गों के कर्मचारियों के लिए अलग-अलग आचार संहिता का निर्माण किया है। अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों के लिए अखिल भारतीय सेवा आचरण नियम, 1954 एवं केन्द्रीय सेवाओं के लिए केन्द्रीय सेवा आचरण नियम, 1955 आदि का निर्माण किया गया है। इनमें समय-समय पर आवश्यकतानुसार बदलाव किए जाते हैं। इन नियमों के अतिरिक्त विभिन्न विभागों द्वारा अनेक कार्यकारी आदेश, प्रस्ताव तथा निर्देश भी जारी किए जाते हैं, जिनका पालन उन विभागों के कर्मचारियों के लिए अनिवार्य होता है। साधारणतः भारत में विभिन्न लोकसेवाओं की आचरण संहिता के आचरण संबंधी नियम एक जैसे ही हैं, जो इस प्रकार हैं -

- 1) कोई भी लोकसेवक किसी राजनीतिक दल का न तो सदस्य हो सकता है और न ही उसके किसी कार्यक्रम में भाग ले सकता है। साथ ही लोकसेवक की राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाया गया है। लोकसेवकों को केवल मतदान का अधिकार है।
- 2) लोकसेवकों के लिए संविधान, विधि, नियम एवं विनियमों का पालन करना आवश्यक है।
- 3) कोई भी लोकसेवक सरकार की किसी तात्कालिक नीति की आलोचना नहीं कर सकता है। उससे यह भी उम्मीद की जाती है कि वह कोई ऐसा वक्तव्य न हो, जिससे भारत सरकार या राज्य सरकार के संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

- 4) बिना किसी उच्च अधिकारी के कोई भी लोकसेवक सरकार की किसी नीति के संदर्भ में अखबारों, पत्रिका, रेडियो, दूरदर्शन इत्यादि प्रचार माध्यमों पर कोई वक्तव्य या राय नहीं दे सकता।
- 5) उच्च अधिकारियों का सम्मान तथा उनके नियम अनुकूल अधिकार क्षेत्र के अंदर के आदेशों का पालन करना आवश्यक है।
- 6) कर्तव्यनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, समयनिष्ठा, निष्पक्षता आदि का पालन करना भी आवश्यक है।
- 7) लोकसेवक बिना सरकार की पूर्वानुमति के किसी रोजगार या व्यवसाय में भाग नहीं ले सकते।

इसके अलावा निजी व्यापार एवं सट्टेबाजी का निषेध, उपहार व चंदा लेने पर पाबंदी, गैर सरकारी आचरण पर प्रतिबंध, गोपनीयता का पालन और धर्मनिरपेक्ष आचरण जैसे नियमों का पालन करना भी अत्यन्त आवश्यक है। ध्यातव्य है कि यदि कोई लोकसेवक इन नियमों का पालन नहीं करता है, तो उसे अनुशासनहिनता की संज्ञा दी जाती है और उसके लिए संबंधित लोकसेवक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है।



भ्रष्टाचार Corruption

भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है – भ्रष्ट आचार अथवा भ्रष्ट व्यवहार। लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार से तात्पर्य किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने सार्वजनिक पद, सत्ता या स्थिति का दुरुपयोग करते हुए आर्थिक या अन्य प्रकार का लाभ उठाने से है। संथानम समिति के अनुसार “भ्रष्टाचार शक्तियों का स्वार्थभरा उपयोग या किसी लोक कार्यालय से जुड़ी प्रतिष्ठा का गलत उपयोग है।”

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 में भ्रष्टाचार को इस प्रकार परिभाषित किया गया है “जो व्यक्ति शासकीय सेवा में होते हुए या होने की आशा में अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए विधिक पारिश्रमिक से अधिक धन लेता है या स्वीकार करता है अथवा लेने के लिए तैयार हो जाता है या लेने का प्रयत्न करता है या किसी कार्य को करने या न करने के लिए उपहार स्वरूप या अपने शासकीय कार्य करने में किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या उपेक्षा या किसी व्यक्ति की कोई सेवा या कुसेवा का प्रयास, केन्द्रीय या राज्य सरकार या संसद या विधानमण्डल या किसी लोकसेवक के संदर्भ में करता है, तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास या दण्ड या अर्थदण्ड या दोनों भी किए जा सकेंगे।

□ भ्रष्टाचार के प्रकार

भ्रष्टाचार के अनेक रूप हैं। मात्र धन संबंधी दुरुपयोग ही भ्रष्टाचार नहीं है, बल्कि वे सभी कृत्य जिनसे सार्वजनिक सत्ता का दुरुपयोग करते हुए व्यक्तिगत लाभ प्राप्त किया जाए या किसी अन्य व्यक्ति को अनुचित लाभ प्रदान किया जाए। उदाहरणार्थ – लोकसेवक द्वारा किसी व्यापारिक कंपनी के हित में इसलिए काम करना, ताकि वह उसके पुत्र या पुत्री को नौकरी दें। केन्द्रीय सतर्कता आयोग ने भ्रष्टाचारों के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं –

- 1) सार्वजनिक धन व भण्डार का दुरुपयोग करना।
- 2) अपनी आमदनी से अधिक वस्तुओं को रखना।
- 3) शासकीय पद या सत्ता का दुरुपयोग।
- 4) भर्ती, नियुक्ति, स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के संबंध में गैर-कानूनी रूप से धन लेना।
- 5) आर्थिक लाभ के लिए आयकर, सम्पत्ति कर आदि का कम मूल्यांकन प्रस्तुत करना।
- 6) शासकीय कर्मचारियों का व्यक्तिगत कार्यों में प्रयोग करना।
- 7) अनैतिक आचरण।
- 8) भर्ती की प्रक्रिया में योग्यता के स्थान पर अपने संबंधियों व परिचितों को प्राथमिकता देना।

□ भ्रष्टाचार के कारण

भ्रष्टाचार प्राचीन समय से ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त रहा है। वर्तमान समय में यदि केन्द्रीय सतर्कता आयोग की रिपोर्ट का उल्लेख करें, तो उसमें कुल 27 प्रकार के भ्रष्टाचार का उल्लेख किया है। इन विभिन्न प्रकारों के भ्रष्टाचारों का विश्लेषण करने पर इसके निम्नलिखित कारण सामने आते हैं –

♦ राजनीतिक कारण

- 1) प्रशासन राजनीतिक नेतृत्व के तहत कार्य करता है। ऐसे में यदि राजनीतिक व्यवस्था भ्रष्ट होती है, तो यह स्वतः ही प्रशासनिक व्यवस्था को भ्रष्ट करती है।
- 2) चुनाव में पैसे का अत्यधिक व्यय किया जाता है, जिसकी भरपाई चुनाव जीतने के बाद भ्रष्ट तरीके से की जाती है।
- 3) लोक नैतिकता में गिरावट और जनता के पैसे की लूट हेतु अपराधी-लोकसेवक-राजनेता गठजोड़ से स्थिति में गिरावट आई है।
- 4) भ्रष्टाचार को समाप्त करने की दिशा में राजनीतिक पहल व इच्छा शक्ति का अभाव।

♦ सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण

- 1) समाज में व्याप्त अनेक कुप्रथाएं, जैसे – दहेज प्रथा की उपस्थिति भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में सहायक है।
- 2) समाज में शिक्षा, विशेषकर नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने वाली शिक्षा का अभाव तथा जागरूकता संबंधी कमी से भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है।

3) भारत में भ्रष्टाचार के विरोध में कोई सशक्त जनविचार नहीं है। एक हद तक समाज में भ्रष्टाचार को स्वीकृति-सी प्राप्त है।

♦ आर्थिक कारण

- 1) वर्तमान उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के दौर में, जबकि बाजार ही सम्पूर्ण आर्थिक गतिविधियों के नियंत्रण की धुरी बन गया है, बाजारिक स्पर्धा का उपयुक्त रूप से प्रभावी न होना और बाजार तंत्र की कमियां भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।
- 2) निजी क्षेत्र की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र में अधिकारियों पर काम का बोझ एवं दबाव काफी अधिक होने के बावजूद वेतन काफी कम है। ऐसे में निजी क्षेत्र के अधिकारियों की तरह ही जीवनशैली प्राप्त करने के लिए सरकारी अधिकारी भ्रष्टाचार का सहारा लेते हैं।
- 3) आज की भौतिकवादी दुनिया में, जबकि एक व्यक्ति की पूछपरक उसके गुणों या उच्च विचारों व आचरण से न होकर इस बात से होने लगे कि उसके आर्थिक उपलब्धियां क्या हैं, निश्चित ही एक व्यक्ति पैसा कमाने के लिए किसी भी हद तक जाएगा।

♦ प्रशासनिक कारण

- 1) सरकारी तंत्र की क्षमता के अनुपात में उस पर काम का बोझ काफी अधिक है, ऊपर से कार्य-पद्धति की जटिलता काम को और मुश्किल बना देती है। ऐसी स्थिति में भ्रष्टाचार के लिए अवसर स्वतः बन जाते हैं।
- 2) भारत में आज भी प्रशासनिक कार्यों में गोपनीयता की स्वीकृति विद्यमान है। हालांकि सूचना के अधिकार कानून ने पारदर्शिता को बढ़ावा दिया है। इसके बावजूद भी नौकरशाही भ्रष्टाचार के लिए कोई न कोई रास्ता निकाल लेते हैं।
- 3) वर्तमान समय में लोकसेवकों का नैतिक दृष्टि से पतन हो गया है। आज शायद ही कोई भी सरकारी सेवा में सेवा की भावना से जाना चाहता है, जबकि उनकी इच्छा केवल और केवल अधिक से अधिक धन कमाने की होती है। ऐसे में भ्रष्टाचार की संभावना बनी रहती है।
- 4) भर्ती, स्थानान्तरण आदि के लिए योग्यता एवं आवश्यकता के स्थान पर परस्पर सम्पर्कों एवं आर्थिक लाभ की प्रवृत्ति ने भी कार्य-संस्कृति को भ्रष्ट किया है।

♦ वैधानिक कारण

- 1) भारतीय संविधान के कुछ अनुच्छेद, जैसे - 310, 311, जिनकी लोकसेवकों की कार्य-कुशलता बढ़ाने हेतु व्यवस्था की गई थी, अब भ्रष्ट लोकसेवकों द्वारा अपनी सुरक्षा कवच के रूप में प्रयुक्त होने लगे हैं। इसका प्रशासन में सुचिता लाने के प्रयासों पर नकारात्मक असर पड़ा है।
- 2) भारत में कानूनी प्रक्रिया अत्यन्त जटिल एवं विलम्बकारी है। इस वजह से भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्ति प्रायः मामले को लम्बा खिंचते जाते हैं और कानून की कमियों का लाभ उठाते हुए बच निकलते हैं।
- 3) भ्रष्टाचारों को रोकने के लिए बनाए गए नियमों व कानूनों एवं इनके क्रियान्वयन में कमियां भ्रष्टाचार में प्रभावी तरीके से अंकुश लगाने के मार्ग में बाधक बन जाती है।

□ भ्रष्टाचार का प्रभाव

- 1) सेवा में गुणवत्ता का अभाव - भ्रष्टाचार का प्रभाव सेवा में गुणवत्ता के अभाव के रूप में दिखाई देता है। भ्रष्टाचार की वजह से अयोग्य व्यक्ति सरकारी सेवा का हिस्सा बन जाते हैं, जिसकी वजह से सेवा की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- 2) विकास प्रक्रिया में बाधा - भ्रष्टाचार की वजह से विकास के लिए चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों का लाभ धरातल तक नहीं पहुंच पाता। अधिकतर योजनाओं के लिए आवंटित धन को राजनेता एवं अधिकारी हड़प लेते हैं। इस संदर्भ में भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की प्रसिद्ध युक्ति उल्लेखनीय है "सरकारी योजनाओं के लिए आवंटित 1 रुपए में से धरातल तक केवल 10 पैसे ही पहुंचते हैं।"

- 3) **न्याय की कमी** - भ्रष्टाचार का बहुत बड़ा प्रभाव न्याय से वंचना के रूप में दिखाई देता है। सरकारी कार्यालयों में अपने वाजिब हक के लिए दौड़ने वाले व्यक्ति को न्यायालय में जाकर इंसफ की गुहार लगाने वाले व्यक्ति को इन संस्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण न्याय से वंचित होते देखना हमारे देश में आम बात है। भ्रष्टाचार की वजह से गरीबों के हित के लिए चलाई जा रही योजनाओं का लाभ उन तक नहीं पहुंच पाता।
- 4) **आर्थिक विषमताओं को बढ़ावा** - भ्रष्टाचार के कारण देश में 2 प्रक्रियाएं एकसाथ चल रही हैं। प्रथम, अमीर और अमीर होते जा रहे हैं। दूसरी, गरीब और गरीब होते जा रहे हैं। इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि गरीबों के लिए आवंटित राशि गरीबों तक न पहुंचकर ऊपर ही ऊपर लूट की भेंट चढ़ते जा रही हैं।
- 5) **अविश्वास का बढ़ना** - भ्रष्टाचार की वजह से देश की राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था के प्रति लोगों के मन में अविश्वास बढ़ रहा है। भ्रष्टाचार आर्थिक गतिविधियों को कुप्रभावित करता है, जिससे गरीबी, बेरोजगारी एवं आर्थिक असमानता जैसी समस्याएं ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। यह लोगों, विशेषकर नवयुवकों में असंतोष पैदा करता है।

□ भ्रष्टाचार को अल्पतम करने के उपाय

सत्यनिष्ठा को बनाए रखने के लिए प्रशासन से भ्रष्टाचार के उन्मूलन हेतु एक दीर्घकालिक रणनीति को अपनाने की आवश्यकता है, जिसमें प्रशासनिक, सामाजिक, वैधानिक, आर्थिक एवं अन्य परिवर्तन शामिल हो। इस संदर्भ में निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं -

- 1) जनता में शिक्षा तथा जागरूकता का विकास करके भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक प्रभावी जनविचार व राष्ट्रीय चेतना का विकास किया जाए।
- 2) लोकपाल जैसी संस्थाओं की अविलम्ब स्थापना की जाए तथा उन्हें पर्याप्त सत्ता सौंपी जाए।
- 3) भ्रष्टाचार की जांच हेतु बनी संस्थाओं की भूमिका को प्रभावी बनाया जाए तथा उनमें राजनीति के हस्तक्षेप पर अंकुश लगाया जाए।
- 4) सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति, स्थानान्तरण आदि के राजनीतिक दुरुपयोग के ऊपर अंकुश लगाया जाए।
- 5) प्रशासनिक प्रक्रिया तथा नियम कानूनों को सरल बनाया जाए, ताकि साधारण व्यक्ति भी उनको बेहतर ढंग से समझ सके।
- 6) संविधान के अनुच्छेद 311 में जरूरी संशोधन किए जाए, ताकि लोकसेवकों में नौकरी जाने का डर पैदा हो।
- 7) प्रशासन में जनभागीदारी सुनिश्चित करने वाले कारकों को और प्रभावी बनाया जाए तथा उनके मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर किया जाए। इस हेतु प्रशासन की प्रक्रियाओं में सूचना-प्रौद्योगिकी के अधिक से अधिक उपयोग को बढ़ावा दिया जाए।
- 8) सूचना के अधिकार अधिनियम को और अधिक प्रभावी बनाते हुए आमजनता को इस अधिकार के संदर्भ में जागरूक किया जाए।
- 9) विभिन्न सेवा प्रदायक लोकसेवा निकायों के लिए यह आवश्यक किया जाए कि वे नागरिक अधिकार-पत्रों को अधिक प्रभावी स्पष्ट एवं सरल बनाएं।
- 10) कर प्रणाली में सुधार किया जाए, न्याय व्यवस्था का आधुनिकीकरण किया जाए एवं त्वरित न्याय हेतु व्यवस्था को मजबूत बनाया जाए।
- 11) नौकरशाही की विवेक शीलता को कम करना और ऐसे संस्थागत प्रयास करना कि वे विधि अनुसार ही निर्णय ले।

♦ भ्रष्टाचार रोकने हेतु किए गए सरकारी प्रयास

भ्रष्टाचार की रोकथाम हेतु सरकार के द्वारा किए गए प्रमुख प्रयास एवं उपाय निम्नलिखित हैं -

- 1) 1962 में भ्रष्टाचार के अध्ययन व उसके समाधान के उपाय सुझाने के लिए के. संधानम की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया। समिति ने निम्नलिखित सिफारिशों की -
 - a) भ्रष्टाचार के मामलों में न्यायिक कार्यवाही को शीघ्रता से सम्पन्न करने हेतु संविधान के अनुच्छेद 311 को संशोधित किया जाए।
 - b) केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की जाए एवं उसे पर्याप्त शक्तियां दी जाए।

- c) लोकसेवकों के आचार नियमों को संशोधित किया जाए।
- d) सभी लोकसेवक, सासंद, विधायक, मंत्री अपनी निजी सम्पत्ति की घोषणा करें।
- 2) **केन्द्रीय सतर्कता आयोग** - संथानम समिति की सिफारिश के अधार पर 1964 में सरकार के एक कार्यकारी प्रस्ताव के द्वारा केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की गई। 1998-99 में इसे वैधानिक दर्जा दिया गया। यह संस्था केन्द्र सरकार की भ्रष्टाचार के विरुद्ध जांच करने वाली एक महत्वपूर्ण संस्था है, जिसके तहत संघीय कार्यपालिका के सभी विभाग एवं संगठन आते हैं।
- 3) **केन्द्रीय जांच ब्यूरो** - 1963 में सरकारी के कार्यकारी प्रस्ताव के द्वारा भ्रष्टाचार को रोकने हेतु केन्द्रीय जांच ब्यूरो की स्थापना की गई। यह सरकार की एक विशिष्ट जांच-पड़ताल एजेंसी है, जिसका मुख्य कार्य भ्रष्टाचार एवं कुप्रबंधन को नियंत्रित करना, प्रशासन में सच्चरित्रता स्थापित करना तथा अपराधों की जांच एवं छानबीन करना है।
- 4) **आचार संहिता** - लोकसेवा में सत्यनिष्ठा को प्रोत्साहित करने हेतु आचार संहिता का भी निर्माण किया गया है। विभिन्न आचार संहिताएं निम्नलिखित हैं -
- a) अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियमावली, 1954।
- b) केन्द्रीय सिविल सेवा (आचरण) नियमावली।
- 5) **भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988** - भ्रष्टाचार के व्यापक विस्तार को देखते हुए संथानम समिति की सिफारिशों के अनुरूप संसद ने 1988 में भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम का निर्माण किया। इसकी धारा 32 में लोकसेवक की परिभाषा दी गई है तथा धारा 13 के अन्तर्गत सजा एवं जुर्माने का प्रावधान किया गया है।
- 6) **लोकपाल एवं लोकायुक्त** - प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र सरकार ने लोकपाल की स्थापना के प्रयास किए तथा अनेक राज्यों में लोकायुक्तों की स्थापना की गई है। हाल ही में संसद द्वारा लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 पारित किया गया है। इस लोकपाल के दायरे में प्रधानमंत्री के साथ-साथ सभी श्रेणियों के सरकारी कर्मचारी और विदेशी अनुदान नियमन अधिनियम के संदर्भ में विदेशी स्रोत से 10 लाख रुपए से अधिक का वार्षिक अनुदान प्राप्त करने वाले संगठन, केन्द्र सरकार द्वारा पूर्णतः या अंशतः वित्तपोषित बोर्ड/निगम/प्राधीकरण/कंपनी/सोसायटी आदि भी आएंगे।

□ भ्रष्टाचार और समाज

किसी भी देश की प्रशासनिक व्यवस्था एवं उसके मूल्य उस देश की सामाजिक व्यवस्था एवं मूल्यों से प्रभावित होते हैं। रिग्स नामक विद्वान के अनुसार “जो भी मूल्य समाज में प्रभावी होते हैं, वे प्रशासनिक व्यवस्था में भी दिखाई देने लगते हैं।” उदाहरणार्थ - भारतीय समाज में पारिवारिक मूल्यों, जैसे - बंधुत्व, सहयोग आदि को अधिक महत्व दिया जाता है। लेकिन जब यही पारिवारिक मूल्य प्रशासन में आ जाते हैं, तो वे भाई-भतीजावाद के रूप में प्रशासन को दूषित करते हैं। अतः अगर हम प्रशासन में ईमानदारी जैसे मूल्यों को देखना चाहते हैं, तो इसके लिए समाज में भी इस तरह के मूल्यों को बढ़ावा देना पड़ेगा। अगर प्रशासन व्यवस्था को भ्रष्टाचार से मुक्त करना हो, तो भ्रष्टाचार को एक सामाजिक बुराई के रूप में पहचानना आवश्यक है।

□ भ्रष्टाचार और परिवार

परिवार नागरिक की प्रथम पाठशाला है। व्यक्ति का समाजीकरण सर्वप्रथम परिवार से ही होता है। अतः पारिवारिक मूल्यों का शुद्धीकरण व्यक्ति के चरित्र को शुद्ध करेगा। उदाहरणार्थ - अगर छोटे बच्चों में ईमानदारी के मूल्य को प्रभावी ढंग से विकसित किया जाए, तो भावी प्रशासक के तौर पर उनके द्वारा भ्रष्टाचार किए जाने की संभावनाएं बेहद कम होंगी। ईमानदारी के मूल्य के साथ ही बच्चों में प्रेम, सहयोग, कर्तव्यनिष्ठा एवं सेवाभाव जैसे मूल्यों का विकास करना आवश्यक है और इस हेतु परिवार की भूमिका सबसे प्रमुख है।

□ भ्रष्टाचार एवं सूचनातंत्र

जनसंचार के माध्यम भी समाज के सदस्यों में उचित मूल्यों के विकास के प्रभावी साधन हो सकते हैं। इसमें टेलिविजन, आकाशवाणी, विभिन्न पत्र-पत्रिकाएं, समाचार-पत्र, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आदि की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इसके साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी का प्रशासन में अधिक से अधिक उपयोग एक ओर जहां इसे अधिक अनुक्रियाशील बनाता है, तो वहीं दूसरी ओर प्रशासन में पारदर्शिता भी बढ़ती है। उदाहरणार्थ – सूचना के अधिकार अधिनियम को अगर सूचना प्रौद्योगिकी की माध्यम से जन-जन तक पहुंचाया जाए, तो इसकी प्रभाव नियता को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। हाल ही में बिहार सरकार ने ई-सूचना के माध्यम से इसका सफल प्रयोग किया है।

□ विसलब्लोअर (Whistleblower) की भूमिका

इसका अर्थ है भ्रष्टाचार की सूचना देने वाला व्यक्ति। विसलब्लोअर वे व्यक्ति होते हैं, जो प्रशासन के अन्तर्गत हो रही भ्रष्टाचार की गतिविधियों एवं अनियमितता को उजागर करते हैं। इस हेतु वे या तो भ्रष्टाचार निरोधक निकायों के समक्ष अपनी शिकायत करते हैं या फिर जनसंचार के माध्यमों, जैसे – समाचार-पत्र, सोशल मीडिया आदि का सहारा लेते हैं। चूंकि ये व्यक्ति सत्ता का उपयोग करने वाले नेताओं या अधिकारियों के दुष्कर्मों को उजागर करते हैं, अतः इस बात की संभावना सदैव रहती है कि उन्हें अपने इन कार्यों के लिए सरकारी तंत्र द्वारा परेशान किया जाएगा। हाल के दिनों में भ्रष्टाचार को उजागर करने वाले कई व्यक्तियों की हत्या तक कर दी गई है। अतः इन विसलब्लोअर की सुरक्षा एक महत्वपूर्ण मुद्दा है।

विसलब्लोअर से लिखित में शिकायत प्राप्त करने हेतु केन्द्रीय सतर्कता आयोग को शीर्ष अभिकरण के रूप में प्राधिकृत करते हुए एक संकल्प जारी किया गया था, जिसमें इनकी सुरक्षा के संदर्भ में भी कुछ प्रावधान किए गए थे। बाद में यह महसूस किया गया कि इनके संरक्षण एवं पहचान को गुप्त बनाए रखने के लिए कुछ वैधानिक प्रावधान करना आवश्यक हैं। इसलिए एक विधेयक 2010 में संसद में पेश किया गया। जो कि अनेक संशोधनों के साथ 9 मई, 2014 को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद कानून के रूप में परवर्तित हुआ।

□ ट्रांसपरेन्सी इन्टरनेशनल

जर्मनी के बर्लिन में स्थित यह गैर-सरकारी संगठन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कॉर्पोरेट एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार पर निगरानी रखता है तथा इस संबंध में जानकारी प्रसारित करता है। इसकी स्थापना 1993 में हुई और वर्तमान में यह विश्वभर में स्थित अपनी विभिन्न स्थानीय कार्यालयों के माध्यम से कार्य कर रहा है। वर्तमान में यह 2 वार्षिक सूचकांकों का प्रकाशन करता है – वैश्विक भ्रष्टाचार बेरोमीटर और भ्रष्टाचार धारणा सूचकांक (जो कि विश्व के देशों में भ्रष्टाचार की तुलनात्मक स्थिति दर्शाता है)।

इस संस्था ने भ्रष्टाचार को निम्नलिखित तरह से परिभाषित किया है –

“अपनी योग्यता एवं सत्यनिष्ठा के आधार पर सत्ता प्राप्त करने वाले लोग जब इसका उपयोग अपने निजी हितों के लिए करने लगे और जिसका प्रभाव सभी लोगों पर हो, भ्रष्टाचार कहलाता है।”

ट्रांसपरेन्सी इन्टरनेशनल के विभिन्न स्थानीय कार्यालयों में उस देश विशेष के विशेषज्ञ शामिल होते हैं, जो उनके देशों में भ्रष्टाचार तथा उससे संबंधित प्राथमिकताओं के लिए उपयुक्त होते हैं। ये विविध प्रकृति के कार्य करते हैं, जैसे – ग्रामीण समुदायों से मिलना, उन्हें मुफ्त कानूनी सलाह देना, सरकारों को नीतिगत सुधारों हेतु सलाह प्रदान करना आदि।

♦ इतिहास

ट्रांसपरेन्सी इन्टरनेशनल की स्थापना विश्व बैंक के पूर्व क्षेत्रीय निदेशक पीटर ईगन के सहयोग से 1993 में की गई थी। 1995 से इसने भ्रष्टाचार धारणा सूचकांक को विकसित किया, जो विश्व के देशों को उनके यहां होने वाले भ्रष्टाचार के आधार पर सूचीगत करता है। वार्षिक आधार पर प्रकाशित इस सूचकांक का निर्माण लोगों के सर्वे पर आधारित होता है।

1999 से ट्रांसपरेन्सी इन्टरनेशनल रिश्वत दाता सूचकांक (Bribe Payers Index) भी प्रकाशित कर रहा है, जो विश्व के देशों को इस आधार पर सूचीबद्ध करता है कि उनके देशों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा रिश्वत देने की प्रवृत्ति कैसी है।

♦ भूमिका

ट्रांसपैरेंसी इन्टरनेशनल भ्रष्टाचार के एक-एक मामलों की जांच नहीं करता और न ही व्यक्तिगत मामलों को उजागर करता है। यह भ्रष्टाचार से लड़ने के उपायों का विकास करता है तथा इन उपायों के प्रयोग में सिविल सोसायटी और सरकारों की मदद करता है। इस संगठन की सबसे बड़ी सफलता यह है कि इसने भ्रष्टाचार को एक वैश्विक विमर्श का मुद्दा बना दिया है। विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे संगठन अब भ्रष्टाचार को विकास की राह का एक प्रमुख अवरोध मानने लगे हैं, जबकि पहले इस विषय पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता था। इसी संगठन के प्रयासों से “भ्रष्टाचार के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र प्रसंविदा (United Nations Conventions Against Corruption)” की शुरुआत हुई।

♦ आलोचना

इस संगठन ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध जनमत निर्माण में एक महती भूमिका निभाई है। इसके बावजूद भी यह आलोचना से मुक्त नहीं है। विभिन्न आलोचकों ने निम्नलिखित आधार पर इसकी आलोचना की है -

- 1) कुछ आलोचकों का मानना है कि भ्रष्टाचार मापने की इसकी प्रवधि (Methodology) कमजोर है।
- 2) इस पर यह आरोप लगा है कि यह विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य भेदभाव करता है।
- 3) हाल ही में इस पर आरोप लगा है कि इसने ऐसी कंपनियों से भी अनुदान ग्रहण किया है, जो पूर्व में भ्रष्टाचार की गतिविधियों में संलिप्त रह चुकी हैं।
- 4) भ्रष्टाचार को उजागर करने वाले व्यक्तियों की सहायता एवं सुरक्षा को लेकर भेदभाव के भी आरोप इस संगठन पर लगे हैं।

♦ भ्रष्टाचार धारणा सूचकांक

यह सूचकांक विश्व के देशों में सार्वजनिक क्षेत्र व सार्वजनिक पदधारकों के संबंध में लोगों की भ्रष्टाचार धारणा के आधार पर उन्हें सूचीबद्ध करता है, अर्थात् - देश की प्रशासनिक व्यवस्था के प्रति लोगों की मनोवृत्ति कैसी है। यह सूचकांक लोगों पर किए गए इस तरह के सर्वे, भ्रष्टाचार संबंधी आंकड़ों और अन्य विश्वसनीय संस्थानों के सहयोग पर आधारित होता है। वर्ष 2014 के सूचकांक के अनुसार भारत 175 देशों की सूची में 38 अंक प्राप्त कर 85वें स्थान पर है, जबकि वर्ष 2013 की रिपोर्ट में 94वां स्थान था।

♦ निष्कर्ष

इस संगठन की विभिन्न आलोचनाओं के बावजूद इसके द्वारा भ्रष्टाचार को एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दा बनाने में अहम भूमिका है। इसके द्वारा दोनों सूचकांकों आज विश्वभर में मान्यता प्राप्त है एवं विभिन्न देश इन सूचकांकों में स्वयं को इस सूची में उच्च स्थान प्राप्त करने हेतु प्रेरित हुए हैं। अतः इस संगठन द्वारा किए जा रहे कार्य सराहनीय हैं, लेकिन भविष्य में इसमें कुछ सुधारों की आवश्यकता है।

□ संयुक्त राष्ट्र भ्रष्टाचार विरोधी प्रसंविदा (UNCAC)

संयुक्त राष्ट्र भ्रष्टाचार विरोधी प्रसंविदा, संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों के मध्य भी एक बहुपक्षीय प्रसंविदा है। यह विश्व की प्रथम व कानूनी रूप से बाध्यता है। अन्तर्राष्ट्रीय भ्रष्टाचाररोधी उपाय हैं। इस प्रसंविदा के अन्तर्गत कुल 71 अनुच्छेद हैं, जो 8 अध्यायों में विभक्त है। यह प्रसंविदा सदस्य देशों से यह अपेक्षा करती है कि उसके अन्तर्गत आने वाले विभिन्न अनुच्छेदों को वे अपने भ्रष्टाचार विरोधी विभिन्न कानूनों, नियमों, संस्थान एवं व्यवहारों में स्थान दें। इन विभिन्न उपायों का उद्देश्य भ्रष्टाचार को रोकना, कुछ मामलों को आपराधिक घोषित करना, अन्तर्राष्ट्रीय कानून प्रवर्तन को मजबूत करना एवं न्यायिक सहयोग को बढ़ाना और तकनीकी सहायता एवं सूचना का आदान-प्रदान करना। संयुक्त राष्ट्र का ड्रग्स व क्राइम कार्यालय इस प्रसंविदा को लागू करता है।

यह प्रसंविदा संयुक्त राष्ट्र की आमसभा में 31 अक्टूबर, 2003 को स्वीकृत की गई। तब से अब तक कुल 140 देशों ने इस पर हस्ताक्षर किए हैं तथा 176 सदस्य देश इस प्रसंविदा के अन्तर्गत होने वाले भागीदारों के होने वाले सम्मेलन (Conference of The States Parties) में हिस्सा लेते हैं। सितम्बर, 2015 तक 19 संयुक्त राष्ट्र सदस्य देशों ने इसे रेटिफाई नहीं किया है।

♦ सदस्य देशों का सम्मेलन (Conference of The States Parties)

UNCAC के अनुच्छेद 63 में सदस्य देशों के सम्मेलन (COSP) की स्थापना का प्रावधान है। COSP की स्थापना का उद्देश्य यह है कि UNCAC द्वारा स्थापित लक्ष्यों को प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जा सके, इस हेतु सदस्य देशों की क्षमता एवं सहयोग के प्रयास किए जाते हैं। COSP के लिए संयुक्त राष्ट्र का ड्रग्स व क्राइम कार्यालय सचिवालय के रूप में कार्य करता है।

COSP के पहले सत्र का आयोजन 10-14 दिसम्बर, 2006 को जार्डन में किया गया था। अभी तक इसके कुल 5 सत्र हो चुके हैं और 6वां सत्र 2015 में रूप में होगा।

♦ उपाय व प्रावधान

UNCAC के अन्तर्गत 5 क्षेत्रों को शामिल किया गया है -

- 1) निरोधक उपाय।
- 2) आपराधिक एवं विधि प्रवर्तन उपाय।
- 3) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग उपाय।
- 4) सम्पत्ति पुनर्भरण उपाय।
- 5) तकनीकी सूचना अदान-प्रदान उपाय।

♦ उपरोक्त वर्णित उपायों में निहित दर्शन

UNCAC के अन्तर्गत यह विचार निहित है कि भ्रष्टाचार व आर्थिक अपराध के व्यापक परिणाम होते हैं। भ्रष्टाचार के कारण लोकतांत्रिक मूल्य संकट में आ जाते हैं तथा सतत् विकास और विधि के शासन का भी उल्लंघन होता है। अतः भ्रष्टाचार के निवारण के लिए घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावी तंत्र विकसित करने की आवश्यकता है। यह एक ऐसे तंत्र के विकास पर बल देता है, जिसमें भ्रष्टाचार के विविध रूपों, जैसे - व्यापार में प्रभाव का उपयोग, कार्यों का दुरुपयोग, निजी क्षेत्र के कई प्रकार के भ्रष्टाचार आदि से सुरक्षा के उपाय शामिल हो।

♦ चुनौतियां

UNCAC को रेटिफाई करना आवश्यक है, लेकिन यह केवल पहला कदम ही है। इसके अन्तर्गत आने वाले विभिन्न प्रावधानों को वैश्विक व घरेलू स्तर पर लागू करना अभी-भी एक चुनौती है। विकासशील देशों, जैसे - भारत, को नीतिगत दिशा-निर्देश व तकनीकी सहायता की आवश्यकता है, ताकि UNCAC को प्रभावी रूप से लागू किया जा सके। भारत में 2011 में इस प्रसंविदा को रेटिफाई कर दिया है एवं 2015 में इसी के अनुरूप भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988 में परिवर्तन किए गए हैं।

□ भ्रष्टाचार का मापन

भ्रष्टाचार का संबंध व्यक्ति के कार्य एवं उसके व्यवहार से है। अतः इसका मापन एक जटिल कार्य है। हालांकि वर्तमान में भ्रष्टाचार मापन की कई विधियां एवं उपाय मौजूद हैं, लेकिन फिर भी भ्रष्टाचार के संबंध में कोई स्पष्ट साक्ष्य और इसकी तीव्रता के कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। वर्तमान में भ्रष्टाचार मापन के कई साधन हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है -

- 1) **भ्रष्टाचार धारणा सूचकांक (Corruption Perception Index)** - पूर्व में उल्लेखित।
- 2) **वैश्विक भ्रष्टाचार बैरोमीटर (Global Corruption Barometer)** - ट्रांसपैरेन्सी इंटरनेशनल द्वारा जारी यह सूचकांक लोगों की राय पर आधारित होता है। इसके तहत लोगों से यह पूछा जाता है कि अपने शासकीय कार्यों को कराने के लिए क्या उन्होंने किसी प्रकार की रिश्वत दी है।
- 3) **रिश्वतदाता सूचकांक (Bribe Payer Index)** - यह सूचकांक भी ट्रांसपैरेन्सी इंटरनेशनल द्वारा जारी किया जाता है, जो विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं की कंपनियों द्वारा अपने व्यापार के संबंध में रिश्वत दिए जाने की स्थिति को बतलाता है।
- 4) **वैश्विक सत्यनिष्ठा रिपोर्ट व सूचकांक (Global Integrity Report & Index)** - यह रिपोर्ट ग्लोबल इंटीग्रिटी नामक गैर-सरकारी संगठन द्वारा जारी की जाती है। यह संगठन अपने सूचकांकों के लिए आवश्यक सूचना स्थानीय विशेषज्ञों एवं पारदर्शी रिपोर्टों के माध्यम से प्राप्त करता है। वैश्विक सत्यनिष्ठा सूचकांक में विश्व के देशों में राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचाररोधी उपायों की उपस्थिति, प्रभावशीलता और नागरिकों की उन तक पहुंच का परीक्षण भी किया जाता है।
- 5) **वैश्विक शासन संकेतक (Worldwide Governance Indicators)** - विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित यह संकेतक विश्व के देशों का आकलन 6 संकेतकों - जवाबदेहिता व अधिकार, राजनीतिक स्थिरता व हिंसामुक्त क्षेत्र, विधि का शासन, प्रशासन की प्रभावशीलता, भ्रष्टाचार पर नियंत्रण और नियामक संस्थाओं की गुणवत्ता के आधार पर करता है। इस संकेतक के निर्धारण के लिए सूचनाएं वैश्विक स्तर के 30 संगठनों द्वारा उपलब्ध कराई जाती हैं एवं 200 देशों को इसमें शामिल किया गया है।
- 6) **रक्षा क्षेत्र की कंपनियों का भ्रष्टाचाररोधी सूचकांक (Government Defence Anti-Corruption Index)** - यह इंडेक्स भी ट्रांसपैरेन्सी इंटरनेशनल द्वारा जारी किया जाता है, जिसके अन्तर्गत विश्वभर के 82 राष्ट्रीय रक्षा निर्माण उपकरण कंपनियों में व्याप्त भ्रष्टाचार को आंकलित किया जाता है एवं उसके निरोध के उपाय भी बताए जाते हैं।

प्लेटो Plato

प्लेटो या अफलातून प्राचीन यूनान का अत्यन्त प्रतिभाशाली दार्शनिक था। पश्चिमी परम्परा में उसे सबसे पहला व्यवस्थित दार्शनिक माना जाता है। उसने दर्शन, समाज व राजनीति की ऐसी समस्याओं पर विचार किया, जो आज के युग में भी बहुत महत्वपूर्ण समझी जाती हैं। उसने इनका ऐसा विश्लेषण प्रस्तुत किया, जो आज भी चर्चा-परिचर्चा व वाद-विवाद का विषय बना हुआ है और संभवतः युग-युगान्तर तक बना रहेगा। ए. एन. व्हाइटहैड ने प्लेटो के बारे में टिप्पणी की है कि 'समस्त पाश्चात्य दर्शन प्लेटो के दर्शन पर धारावाहिक टिप्पणी है।'

प्लेटो का जन्म 428 ई. पू. में एथेन्स के एक सम्पन्न कुलीन परिवार में हुआ था। मूलतः उसका नाम एरिस्टोक्लीज था। कहा जाता है कि उसके विस्तृत कंधों और स्वस्थ, सुन्दर व सुदृढ़ शरीर को देखकर उनके गुरु सुकरात ने उन्हें 'प्लेटो' नाम से संबोधित किया। एक कुलीन व राजनीतिक परिवार से संबद्ध होने के कारण उनकी स्वाभाविक रुचि राजनीति में थी। किन्तु राजनीति के दोषों और दुर्गुणों के कारण चाहते हुए भी प्लेटो ने सक्रिय राजनीति में प्रवेश नहीं किया।

उन्होंने अपनी 20 वर्ष की उम्र से लेकर 28 वर्ष की आयु तक अपने प्रिय व श्रद्धेय शिक्षक सुकरात से शिक्षण ग्रहण किया, जिसका उनके जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ा। वे सुकरात के जीवन व चरित्र से बहुत प्रभावित रहे। सुकरात का शिष्य होने में स्वयं को गौरान्वित महसूस किया। इस संदर्भ में प्लेटो ने कहा था कि 'मैं ईश्वर को इस बात का धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि मैं एक ग्रीक जाति में पैदा हुआ, किसी असभ्य या क्रूर जाति में नहीं, क्योंकि मैं एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में पैदा हुआ, गुलाम के रूप में नहीं, क्योंकि मैं एक पुरुष के रूप में पैदा हुआ, स्त्री के रूप में नहीं, परन्तु इन सब से भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि मैं सुकरात के युग में पैदा हुआ।'

उल्लेखनीय है कि तत्कालीन समय में राज्य ने सुकरात को नवयुवकों को राज्य के विरुद्ध उकसाने और कानून का उल्लंघन करने का आरोप लगाकर मृत्युदण्ड दे दिया। चूंकि यह घटना प्लेटो के समक्ष ही घटित हुई थी, अतः उसका प्रजातंत्र से मोह भंग हो गया था। प्लेटो ने इस घटना का मार्मिक चित्रण अपनी पुस्तक द रिपब्लिक (The Republic) में किया है। सुकरात की मृत्यु के बाद मर्माहत प्लेटो ने एथेन्स छोड़ दिया तथा 12 वर्षों तक विभिन्न देशों की यात्रा की। प्लेटो 40 वर्ष की उम्र में पुनः एथेन्स वापस लौटा। अपनी विदेश यात्रा से लौटकर प्लेटो ने दर्शनशास्त्र के विस्तृत अध्ययन के उद्देश्य से अपनी विश्व प्रसिद्ध पाठशाला 'एकेडमी' स्थापित की, जिसने प्राचीन यूनान को अनेक विधिवेत्ता एवं राजा राजमर्मज्ञ प्रदान किए। प्लेटो का विश्व विख्यात शिष्य अरस्तू इसी अकादमी की देन था। 347 ई. पू. में प्लेटो की मृत्यु हो गई।

सुकरात की तरह प्लेटो भी हमेशा आदर्श राज्य की तलाश में रहा। उसने अपने न्याय के सिद्धान्त को साकार रूप देने के लिए 'आदर्श राज्य' की संकल्पना प्रस्तुत की, जिसका विवरण उसके प्रसिद्ध ग्रंथ 'रिपब्लिक' के अन्तर्गत किया गया है। उसकी दिलचस्पी राज्य के स्वरूप और उसके अंगों में नहीं थी, जितनी आदर्श राज्य के निर्माण में थी। यही कारण है कि प्लेटो को पाश्चात्य जगत का प्रथम स्वप्नदर्शी (Utopian) दार्शनिक कहा जाता है।

□ प्लेटो की रचनाएं

प्लेटो की अनेक रचनाएं हैं। प्लेटो ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति संवादों (Dialogues) के माध्यम से की है। दार्शनिक दृष्टि से **एपोलॉजी** एक प्रमुख रचना है। प्लेटो की सबसे प्रसिद्ध रचना **रिपब्लिक** है, जिसमें न केवल राजनीतिक दर्शन है, बल्कि कला, शिक्षा, दर्शन आदि सभी विधाएं समायोजित हैं। इसके अतिरिक्त **थीटेटस** में प्लेटो की ज्ञानमीमांसा की निषेधात्मक पक्षों का निरूपण किया गया है। इसके अलावा अन्य महत्वपूर्ण रचनाएं **क्रीटो**, **प्रोटागोरस**, **द स्टेट्समैन**, **द लॉज**, **फिडो**, **सोफिस्ट**, **पार्मेनाइडीज** आदि हैं।

प्लेटो का दर्शन

ज्ञानमीमांसा

तत्त्वमीमांसा

नैतिक एवं राजनीतिक

□ प्लेटो का ज्ञानमीमांसीय दर्शन (Epistemology)

पाश्चात्य दर्शन में प्लेटो को बुद्धिवादी ज्ञानमीमांसा का प्रवर्तक माना जा सकता है। उनकी ज्ञानमीमांसा के स्वरूप पर 2 दृष्टिकोण से विचार किया गया है – ज्ञान क्या नहीं है (नकारात्मक) एवं ज्ञान क्या है (सकारात्मक)। प्लेटो का मानना है कि ज्ञान को जानने से पहले, जो ज्ञान नहीं है, उसे जानना आवश्यक है। प्लेटो ने इन्द्रिय प्रत्यक्ष (Perception), मत (Opinion) तथा ज्ञान (Knowledge) में अन्तर किया है।

प्रत्यक्ष को ज्ञान नहीं माना जा सकता, क्योंकि यदि इसे ज्ञान मान लिया जाए, तो प्रत्येक व्यक्ति की प्रतीतियों को सत्य मानना पड़ेगा। किन्तु समस्या यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की इन्द्रिय प्रतीतियां एक-दूसरे से भिन्न हो सकती हैं, यहां तक कि उसकी विरोधी भी हो सकती है। साथ ही हमारे प्रत्यक्ष कभी-कभी गलत और भ्रांत भी हो सकते हैं (जैसे – मृगमरीचिका)। व्यक्ति की शारीरिक अवस्थाओं एवं मनोदशाओं के अनुसार एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में एक ही व्यक्ति को अलग-अलग दिखाई दे सकती है। प्रत्यक्ष को ज्ञान मान लेने पर विद्वान व मूर्ख, मानव व पशु के ज्ञान में अन्तर समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार इन्द्रिय प्रत्यक्ष को हम ज्ञान नहीं कह सकते हैं। वस्तुतः यह एक प्रकार के विश्वास हैं, जो कभी तो सत्य, तो कभी असत्य होते हैं।

जिस प्रकार प्रत्यक्ष को ज्ञान नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार मत को भी ज्ञान नहीं कहा जा सकता है। मत भी एक प्रकार के सहज विश्वास हैं, जो देश-काल, परिस्थिति के साथ बदल जाते हैं। कौशलपूर्ण सम्प्रेषण, वाक्पटुता एवं भावोत्तेजना आदि के द्वारा मत को बदला जा सकता है। वास्तव में मानव विश्वास एवं मत अस्थायी होते हैं। किन्तु ज्ञान बौद्धिक होता है और उसे तर्कों एवं भावोत्तेजना द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। प्लेटो के अनुसार ज्ञान का विषय अपरिवर्तनशील, शाश्वत, अनिवार्य एवं सार्वभौमिक होता है। यह वस्तुनिष्ठ मानदण्ड पर आधारित होता है। यह बौद्धिक अन्तर्दृष्टि (Rational Insight) से प्राप्त होता है। ऐसा ज्ञान हमारे इन्द्रिय प्रत्यक्ष, सहज विश्वास से भिन्न व उनसे परे होता है। अतः सम्यक् ज्ञान न तो प्रत्यक्ष है और न ही मत है, यह प्रत्ययों का ज्ञान है।

इस प्रकार ज्ञान के विषय प्रत्यय (Idea) हैं और मत के विषय प्राकृतिक हैं। प्लेटो ज्ञान के विषयों अर्थात् – प्रत्ययों को स्थिर, अपरिवर्तनशील एवं वास्तविक सत्ता कहता है। अतः ज्ञान सदैव सत्य, अनिवार्य, असंदिग्ध और स्थिर होता है। इसके विपरीत विश्वास और मत के विषय संदिग्ध, परिवर्तनशील और अस्थायी होते हैं।

□ प्लेटो का तत्त्वमीमांसीय दर्शन (Metaphysics)

प्लेटो के तत्त्वमीमांसा का केन्द्र बिन्दु प्रत्यय सिद्धान्त (Theory of Ideas) है। यह प्लेटो का एक मौलिक सिद्धान्त है। इसका संबंध जहां एक ओर ज्ञानमीमांसा से है, तो वहीं दूसरी ओर तत्त्वमीमांसा से भी है। क्योंकि ज्ञानमीमांसीय दृष्टिकोण से प्रत्यय ही ज्ञान के विषय हैं, तो दूसरी ओर तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण से प्रत्यय की ही वास्तविक सत्ता है।

वस्तुतः दृश्य प्राकृतिक जगत परिवर्तनशील, अस्थिर एवं सापेक्ष है। प्लेटो इसे अपने ग्रेटर हिप्पियास नामक संवाद से समझाने का प्रयास करता है, जिसमें सुकरात एक छात्र हिप्पियस से प्रश्न करता है कि सुन्दरता क्या है? किस तत्व के कारण सभी वस्तुएं सुन्दर प्रतीत होती हैं? इस प्रश्न के उत्तर में हिप्पियस एक सुन्दर कुमारी का उदाहरण देता है, किन्तु सुकरात पुनः कहता है कि क्या एक सुन्दर घोड़ी, एक सुन्दर लंगूर एवं अन्य सुन्दर वस्तुएं सुन्दरता के उदाहरण नहीं हो सकती हैं? ये सब सुन्दरता के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। किन्तु यदि सर्वाधिक सुन्दर लंगूर की तुलना किसी सुन्दर कुमारी से की जाए, तो लंगूर कुरूप ही कहा जाएगा। इसी प्रकार यदि सुन्दर कुमारी की तुलना किसी देवी से की जाए, तो सुन्दर कुमारी देवी की तुलना में कम सुन्दर ही समझी जाएगी।

इस प्रकार प्लेटो इस संवाद से यह स्पष्ट करना चाहता है कि सुन्दरता, न्याय, शुभ आदि की दृश्यमान अभिव्यक्तियां सापेक्ष एवं परिवर्तनशील है। यहां तक की एक ही वस्तु कभी सुन्दर, तो अन्य समयों में कुरूप प्रतीत होती है। जो युवती कुमारी अवस्था में सुन्दर प्रतीत होती है, वृद्धावस्था में सौन्दर्य के ढल जाने पर वही स्त्री कुरूप एवं आकर्षणहीन प्रतीत होती है। यह कैसे सम्भव है कि एक ही व्यक्ति कभी सुन्दर तो कभी कुरूप प्रतीत होता है। अन्ततः प्लेटो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि किसी भी वस्तु को सुन्दरता के प्रत्यय की उपस्थिति या सहभागिता के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु सुन्दर नहीं बना सकती। सुन्दरता के प्रत्यय के द्वारा ही सभी वस्तुएं सुन्दर प्रतीत होती हैं। स्पष्ट है कि सुन्दरता, न्याय, शुभ आदि की दृश्यमान अभिव्यक्तियां सापेक्ष एवं परिवर्तनशील हैं। केवल इनके प्रत्ययों की ही वास्तविक सत्ता है। प्लेटो के अनुसार इन प्रत्ययों का ज्ञान बौद्धिक अन्तर्दृष्टि (Rational Insight) से होता है।

धातव्य है कि यह प्रत्यय मानसिक अवधारणाएं नहीं हैं। इनकी वास्तविक सत्ता है। सुन्दरता, न्याय, शुभत्व आदि के प्रत्यय वास्तविक जगत से परे हैं। प्रत्ययों का अपना लोक है, जो प्राकृतिक जगत से भिन्न है। इसे **प्रत्ययों का दिव्यजगत** (The Divine World of Ideas) कहा जाता है। यहां तक कि कुरूपता, अन्याय, अशुभत्व, असद्गुण आदि के प्रत्यय भी वास्तविक होते हैं।

प्लेटो के वस्तुनिष्ठ, वास्तविक और अविनाशी प्रत्यय ही सांसारिक वस्तुओं, गुणों और संबंधों के सारतत्व (Essence) हैं। जगत की सभी वस्तुएं इन प्रत्ययों का प्रतिबिम्ब हैं, जैसे - चन्द्रमा एक है, किन्तु विभिन्न तालाबों व सरोवरों में इसका प्रतिबिम्ब अनेक रूप में दिखाई देता है। ठीक इसी प्रकार जगत की सभी सुन्दरतम् वस्तुओं में सौन्दर्य के प्रत्यय का प्रतिबिम्ब होता है।

उल्लेखनीय है कि प्लेटो ने विभिन्न वस्तुओं के वर्गीकरण के आधार के रूप में अनेक प्रत्ययों को स्वीकार किया है। उसके अनुसार प्रत्ययों की एक व्यवस्थित शृंखला है, जिसमें उच्चतर तथा निम्नतर प्रत्ययों का श्रेणी विभाजन मिलता है। इस क्रम में **शुभत्व का प्रत्यय (ईश्वर)** सर्वोच्च है। अन्य सभी प्रत्यय शुभ की अभिव्यक्ति के ही सोपान हैं। दूसरे शब्दों में विभिन्न प्रत्ययों का आधार शुभ का प्रत्यय (Idea of Good) ही है। शुभ का प्रत्यय ही सभी प्रत्ययों में समन्वय स्थापित करता है।

□ प्लेटो का नैतिक व राजनीतिक दर्शन (Moral & Political Philosophy)

प्लेटो के नैतिक दर्शन की विवेचना उनके 2 ग्रंथों रिपब्लिक एवं फिलेबस में हुई है। सुकरात की तरह प्लेटो ने भी नीतिमीमांसा में सद्गुणों को विशेष महत्व दिया। उसने 4 सद्गुणों को नैतिक आचरण का आधार माना है - विवेक, संयम, साहस तथा न्याय। प्लेटो ने अपने नैतिक दर्शन में न्याय को सर्वोच्च सद्गुण माना है। प्लेटो की अमरकृति द रिपब्लिक का वैकल्पिक शीर्षक 'न्याय-मीमांसा' (Concerning-justice) है। प्लेटो का मुख्य उद्देश्य आदर्श राजव्यवस्था की संकल्पना प्रस्तुत करना है। प्लेटो के अनुसार आदर्श राज्य वह होगा, जो न्याय पर आधारित होगा। चूंकि राज्य व्यक्ति का ही वृहद रूप है, इसलिए राज्य की प्रकृति को समझने के लिए मनुष्य की प्रकृति को समझना जरूरी है।

प्लेटो के अनुसार मनुष्य में 3 नैसर्गिक प्रवृत्तियां होती हैं - इच्छा (Desire) या तृष्णा (Appetite), भावना या मनोवेग (Emotion) एवं ज्ञान (Knowledge) या बुद्धि (Intellect)। बुद्धि का सद्गुण विवेक (Wisdom) है, जो मानव जीवन का मार्गदर्शन करता है। भावना का सद्गुण साहस (Courage) है, जिसका संबंध दृढ़संकल्प से है, जो विषम परिस्थितियों में संघर्ष से विचलित नहीं होने देता। इच्छा का सद्गुण संयम (Temperance) है, यद्यपि इच्छा करना मनुष्य की स्वाभाविक क्रिया है, तथापि उसे संयम के द्वारा नियंत्रित करने की आवश्यकता है। वैसे ये सभी गुण सभी मनुष्यों में पाए जाते हैं, परन्तु किसी में किसी गुण प्रधानता रहती है, किसी में किसी ओर की। जब ये तीनों गुण एक उचित अनुपात व समन्वय की स्थिति में रहते हैं, तो न्याय नामक सद्गुण की उत्पत्ति होती है। दूसरे शब्दों में जब व्यक्ति अपने साहस और संयम को विवेक के अधीन रखता है, तो उसमें न्याय सद्गुण उत्पन्न हो जाता है और जब यह संतुलन बिगड़ता है, तो व्यक्ति कामान्ध, क्रूर, लालची या धर्मांध होने लगता है।

प्लेटो के अनुसार राज्य व्यक्तियों की ही अभिव्यक्ति है। व्यक्तियों के 3 गुणों के आधार पर प्लेटो ने समाज के 3 वर्गों की पहचान की है - जिनमें इच्छा या तृष्णा की प्रधानता है, वे उद्योग-व्यापार को तत्पर होते हैं, जिनमें भावना की प्रमुखता है, वे सैनिक या योद्धा बनते हैं और जो ज्ञान से सम्पन्न हैं, वे दार्शनिक के रूप में ख्याति अर्जित करते हैं। यदि हम मनुष्य की प्रकृति के लिए उपयुक्त सद्गुण निश्चित कर ले, तो राज्य के लिए उपयुक्त सद्गुण निर्धारित करना सुगम हो जाएगा।

प्लेटो ने 4 मूल सद्गुण (Cardinal Virtues) का विवरण दिया। इच्छा या तृष्णा के लिए उपयुक्त सद्गुण ही संयम है। अतः उद्योग-व्यापार में संलग्न वर्ग को सद्जीवन की प्राप्ति के लिए अपने अन्दर संयम विकसित करना चाहिए। सभी प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए आत्मसंयमपूर्वक राज्य की अर्थव्यवस्था को गतिशील बनाए रखना इस वर्ग के द्वारा ही संभव है। भावना या मनोवेग के लिए उपयुक्त सद्गुण साहस है। अतः सैनिक वर्ग को सद्जीवन बिताने के लिए अपने अन्दर साहस विकसित करना चाहिए। साहसी नागरिक ही भयावय स्थिति में भयभीत न होकर राज्य की रक्षा करता है। ज्ञान के लिए उपयुक्त सद्गुण विवेक है। अतः दार्शनिक या बुद्धिजीवी वर्ग को इस गुण का विकास करना चाहिए। दार्शनिक राजा ही निःस्वार्थ भाव से राज्य के हितों के लिए विवेकपूर्ण निर्णय ले सकता है। चौथा या अंतिम सद्गुण न्याय है, जो की सर्वोच्च सद्गुण है। यह समस्त सद्गुणों के सही-सही संयोग पर आश्रित है।

व्यक्ति के मामले में न्याय से तात्पर्य यह है कि संयम को साहस का संबल मिल जाए और विवेक से मार्गदर्शन प्राप्त हो। प्लेटो ने व्यक्ति के संदर्भ में उसको न्यायी कहा है, जिसके व्यक्तित्व में इन तीनों तत्वों में सामन्जस्य होता है। अतः राज्य के संदर्भ में न्याय

का अर्थ यह होगा कि संयमशील उत्पादक वर्ग को साहसी सैनिक वर्ग का संरक्षण प्राप्त हो और इन दोनों को बुद्धिमत्ता संपन्न दार्शनिक वर्ग से मार्गदर्शन प्राप्त हो। जब यह तीनों वर्ग अपने-अपने क्षेत्र में निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करते हैं और दूसरे के कर्तव्यों में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। इस प्रकार के पारस्परिक सामन्जस्य से ही न्यायपूर्ण राज्य की स्थापना होती है। अपने स्वभाविक कर्तव्यों का पालन करना और दूसरों के क्षेत्र में बाधक न होना या हस्तक्षेप न करना ही न्याय है। न्याय व्यक्ति व राज्य दोनों का सर्वोत्तम सद्गुण है। इस प्रकार प्लेटो के न्याय सिद्धान्त के अन्तर्गत राज्य में दार्शनिक वर्ग के शासन का समर्थन किया गया है और सैनिक वर्ग तथा उत्पादक वर्ग को अपने-अपने स्वभाव के अनुरूप भूमिकाएं सौंपी गई हैं।

प्लेटो के अनुसार राजनीतिक नैतिकता का ही दूसरा नाम है, वे दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकते हैं। जब तक राजनीति व नैतिकता में अलगाव रहेगा, तब राज्य में सुख व शांति स्थापित नहीं हो सकती है। अतः राजा का सद्गुणी एवं विवेकशील होना एक आदर्श व्यवस्था के लिए अनिवार्य है। प्लेटो का मानना है कि ज्ञान के आलोक के बिना समाज अंधकार में भटक जाएगा। यदि शासन की बागडोर दार्शनिकों के हाथों में नहीं दी जाएगी, तो उत्पादक वर्ग की अनियंत्रित लालसा एवं सैनिक वर्ग का अनियंत्रित भावावेग समाज को विध्वंस की ओर ले जाएगा। जिस देश के शासक ज्ञान-विज्ञान के प्रति अनुरक्त नहीं होंगे या दौलत के भूखे व्यापारी या युद्ध के प्यासे सैनिक सत्ता को सम्भाल लेंगे, उस देश का शासन भ्रष्ट, अस्थिर व विनाशकारी होगा। प्लेटो की दृष्टि में एथेन्स की राजनीतिक अस्थिरता का मुख्य कारण यही था कि वहां शासन की बागडोर दार्शनिकों के हाथों में नहीं थी, बल्कि लोकतंत्र की आड़ में अयोग्य लोग सत्ता प्राप्त कर लेते हैं। अतः समाज के कल्याण के लिए दार्शनिक राजाओं का शासन स्थापित करना जरूरी है। प्लेटो ने शिकायत के स्वर में कहा कि जब हम जुता बनवाने जैसे साधारण काम के लिए कुशल कारीगर ढूंढते हैं, तब यह कैसे सोच लेते हैं कि जो बातें बनाकर लोगों के वोट हासिल कर लेता है, वह शासन जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को संभालने के योग्य होगा। जब हम अस्वस्थ होते हैं, तो किसी योग्यता प्राप्त और प्रशिक्षित चिकित्सक की शरण में जाते हैं - सबसे सुन्दर या वाक्पटु चिकित्सक की तलाश नहीं करते हैं। फिर जब सम्पूर्ण राज्य अस्वस्थ हो, तब क्या उसके उपचार के लिए सबसे मेधावी, ज्ञानवान और विवेकशील व्यक्तियों की शरण में नहीं जाना चाहिए? जब तक राजनीति में अयोग्य और धूर्त व्यक्तियों के प्रवेश पर प्रतिबंध नहीं लगाया जाए, तब तक राज्य की बुराइयों, राजनीतिक अस्थिरता, अव्यवस्था और कुप्रबंध का अन्त नहीं हो पाएगा। जब तक दार्शनिक स्वयं शासक नहीं बन जाते या संसार के शासक दर्शनशास्त्र में पारंगत नहीं हो जाते, तब तक राज्यों को अपनी बुराइयों से मुक्ति नहीं मिलेगी।

□ प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की विशेषताएं

- 1) प्लेटो का न्याय सिद्धान्त कार्यों की विशिष्टीकरण पर जोर देता है। प्लेटो की दृष्टि में व्यक्ति एवं राज्य के जीवन का उद्देश्य श्रेष्ठता प्राप्त करना है। इसके लिए आवश्यक है कि राज्य के प्रत्येक वर्ग या व्यक्ति अपने कार्यों में श्रेष्ठता प्राप्त करके अपने कार्यों का सम्पादन करें।
- 2) प्लेटो का न्याय सिद्धान्त अहस्तक्षेप के सिद्धान्त पर आधारित है। यह अपेक्षा करता है कि राज्य के प्रत्येक वर्ग अन्य वर्गों के कार्यों में हस्तक्षेप किए बिना अपने कार्यों का सम्पादन करें।
- 3) प्लेटो का न्याय सिद्धान्त मानव के हृदय में सद्गुणों का विकास करके उसे अच्छा मनुष्य बनाना चाहता है।
- 4) प्लेटो न्याय सिद्धान्त का प्रतिपादन करके यह दिखाना चाहता है कि व्यक्ति व समाज में कोई संघर्ष नहीं है। वह व्यक्ति को यह आभास कराना चाहता है कि वह समाज एवं राज्य का एक जिम्मेदार सदस्य है और वह समाज व राज्य में रहकर ही अपना विकास कर सकता है।
- 5) प्लेटो का न्याय कानूनी विषय न होकर सामाजिक नैतिकता का विषय है। प्लेटो का न्याय एक नैतिक संहिता है, जो प्रत्येक व्यक्ति को स्वकर्तव्य पालन का संदेश देता है।
- 6) प्लेटो का न्याय बाह्य जगत की वस्तु न होकर आन्तरिक स्थिति है।
- 7) प्लेटो का न्याय सिद्धान्त समाज के विभिन्न वर्गों की एकता व सामन्जस्य पर बल देता है।

□ प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की आलोचनाएं

- 1) प्लेटो का न्याय मूलतः नैतिक अवधारणा है, कानूनी अवधारणा नहीं है। परिणामस्वरूप इसमें बाध्यता का अभाव है। यदि व्यक्ति स्वेच्छा से कार्य करना प्रारंभ कर दे और उनके हितों में संघर्ष उत्पन्न हो, तो प्लेटो का न्याय व्यर्थ सिद्ध होगा।

- 2) प्लेटो का न्याय केवल कर्तव्य का पाठ पढ़ाता है। यह व्यक्ति के अधिकारों की उपेक्षा करता है।
- 3) प्लेटो के दर्शन में बंद किस्म का समाज है। आजीवन कोई निश्चित कार्य करते रहना गलत सिद्धान्त है। प्लेटो उसके प्राकृतिक गुण के आधार पर आजीवन कोई निश्चित कार्य करने का आदेश देता है, अर्थात् - प्लेटो के आदर्श राज्य में एक किसान सदैव किसान रहेगा, एक सैनिक सदैव सैनिक रहेगा। किन्तु मानव प्रकृति में सदैव परिवर्तन होता रहता है और इसी के अनुरूप उसके कार्यों में भी परिवर्तन होता है। प्लेटो का न्याय सिद्धान्त इस स्थिति के साथ न्याय नहीं करता।
- 4) प्लेटो का न्याय सिद्धान्त अलोकतांत्रिक है। यह एक प्रकार से सत्तावाद (Authoritarianism) और सर्वाधिकारवाद (Totalitarianism) का मार्ग प्रशस्त करता है। क्योंकि उसके आदर्श राज्य में सम्पूर्ण शक्ति दार्शनिक शासकों के हाथों में होती है। परिणामस्वरूप उत्पादक वर्ग व सैनिक वर्ग शासन में भाग लेने से सदैव वंचित रहते हैं।
- 5) प्लेटो का न्याय सिद्धान्त मनुष्य की सरल प्रकृति पर निर्भर है, जबकि मानव प्रकृति विषम है। उसे तर्कबुद्धि, साहस या क्षुधा के निश्चित वर्गीकरण में बांधे रहना कठिन है।
- 6) प्लेटो के न्याय सिद्धान्त का प्रतिपादन करके व्यक्ति को राज्य के अधीन कर दिया है। उसने एक इकाई के रूप में व्यक्ति को कोई महत्व नहीं दिया है।
- 7) प्लेटो का न्याय सिद्धान्त विरोधाभासी है। प्लेटो के अनुसार व्यक्तिगत स्तर पर न्याय की अभिव्यक्ति उस व्यक्ति में होती है, जिसमें तर्कबुद्धि, साहस एवं क्षुधा में सामन्जस्य होता है। किन्तु प्लेटो सामाजिक न्याय की अभिव्यक्ति केवल ऐसे राज्य में दिखाता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने केवल एक गुण को विकसित करता है। तात्पर्य यह है कि जहां व्यक्तिगत न्याय व्यक्ति के सर्वांगण विकास में है, वहीं सामाजिक न्याय व्यक्ति के केवल एक गुण को अभिव्यक्ति करने में है तथा अन्य दो गुणों के निष्क्रिय बना रहने देने में है।
- 8) प्लेटो के न्याय की संकल्पना भेदभावपूर्ण है और व्यक्ति के चयन का अधिकार सीमित कर देती है, जबकि व्यक्ति को अपने कार्य के चयन अधिकार होना चाहिए।
- 9) प्लेटो ने यह मान लिया है कि लोगों में सद्गुण जन्मजात होते हैं। किन्तु यह गुण व क्षमताएं अर्जित भी की जा सकती है।

अरस्तू Aristotle

प्लेटो का शिष्य व विश्व प्रसिद्ध सिकन्दर महान का गुरु अरस्तू का जन्म 384 ई. पू. में मेसिडोनिया के एक नगर स्टेगिरा में हुआ था। उसके पिता मेसिडोन के राजवैद्य थे। अरस्तू का पालन-पोषण भी औषधियों की गंध से महकते हुए वातावरण में हुआ, जहां उसके मन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए उचित अवसर व प्रोत्साहन मिला। यही कारण है कि उसने नीतिशास्त्र और राजनीति शास्त्र के विवेचन में उसने जीव एवं आर्युदिक वैज्ञानिक उदाहरणों का प्रयोग किया है।

30 वर्ष की आयु में उसने एथेन्स जाकर प्लेटो की एकेडमी में दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया। प्लेटो उसकी कुशाग्र बुद्धि से इतना अधिक प्रभावित था कि वह उसे 'एकेडमी का मस्तिष्क' कहा करता था। प्लेटो की मृत्यु के बाद अरस्तू ने अकादमी छोड़ दी। आगे चलकर मेसिडोन के राजा फिलिप ने अपने पुत्र सिकन्दर को पढ़ाने के लिए अरस्तू को आमंत्रित किया। सिकन्दर के विश्व विजय हेतु प्रस्थान करने के बाद अरस्तू ने लाइसियम (Lyceum) नामक एक शिक्षण संस्थान की स्थापना की।

सिकन्दर की मृत्यु के बाद अरस्तू को एथेन्स छोड़ना पड़ा, उस समय मेसिडोन की सत्ता पर सिकन्दर के विरोधियों का अधिकार हो गया था। अरस्तू पर धार्मिक प्रार्थनाओं और बलिदानों के तिरस्कार का आरोप लगाया गया। फलस्वरूप अरस्तू को अपने बचाव के लिए एथेन्स छोड़ना पड़ा। इस संबंध में अरस्तू का यह कथन प्रसिद्ध है कि "मैं एथेन्स के नागरिकों को दर्शन के विरुद्ध (जैसा कि सुकरात के साथ किया गया था) दूसरा अपराध करने का अवसर नहीं दूंगा।" उसके बाद 322 ई. पू. में अरस्तू का देहांत हो गया।

अरस्तू ने दर्शन के साथ-साथ अपने समय में प्रचलित ज्ञान व विज्ञान की लगभग सभी विधाओं का चिंतन किया, उसने दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र, तत्वमीमांसा, नीतिमीमांसा, राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, भौतिकी, प्राणीशास्त्र आदि विषयों पर गंभीर व सारगर्भित विचार प्रस्तुत किए। इसी कारण से उसे 'ग्रीक शिरोमणी' कहा गया है।

□ रचनाएं

अरस्तू ने अनेक ग्रंथों की रचना की है, उसकी सबसे प्रसिद्ध कृति **यूडीमस (Eudmus)** है। इसके अलावा तत्वशास्त्र (Metaphysics), ऑन हेवेन्स (On Heavens), **निकोमेशियन इथिक्स (Nicomachean Ethics)** आदि महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

अरस्तू की नीतिमीमांसा (Aristotle's Ethics)

अरस्तू का दर्शन प्लेटो के दर्शन का एक विकसित रूप है, किन्तु इन दोनों महान दार्शनिकों में मौलिक अन्तर भी है। अरस्तू की रुचि प्राकृतिक तथ्यों के निरीक्षण में थी। अतः उसका दर्शन आनुभाविक पक्ष (Empirical Aspect) की उपेक्षा नहीं करता है, जबकि प्लेटो का दर्शन इसकी उपेक्षा कर स्वप्नदर्शी हो जाता है।

अरस्तू प्लेटो की तरह प्रत्यय की ज्ञानमीमांसीय व तत्वमीमांसीय सत्ता को तो स्वीकार करता है, किन्तु वह प्रत्ययों के अस्तित्व को वास्तविक जगत में स्वीकार करता है, न कि पारलौकिक जगत में। अरस्तू के अनुसार प्रत्यय की सत्ता वस्तु के अन्दर ही निहित होती है। किसी वस्तु का सारतत्व उसके बाहर नहीं हो सकता है। इस प्रकार अरस्तू सभी सद्गुणों की सत्ता को वास्तविक, यथार्थ तथा इसी जगत का मानता है।

वस्तुतः अरस्तू ने ही पहली बार पाश्चात्य दर्शन में नीतिशास्त्र को व्यवस्थित रूप प्रदान किया है, जिसकी व्याख्या हमें निकोमेशियन इथिक्स (Nicomachean Ethics) नामक ग्रंथ में मिलती है। सुकरात व प्लेटो की तरह अरस्तू भी अपनी नीतिमीमांसा में सद्गुण की महत्ता को स्वीकार करता है। अरस्तू ने सद्गुणों का वर्गीकरण 2 रूप में किया है - बौद्धिक सद्गुण (Intellectual Virtues) एवं नैतिक सद्गुण (Moral Virtues)।

मानव स्वभावतः एक बौद्धिक प्राणी है, इसलिए बौद्धिक सद्गुण दार्शनिक एवं वैचारिक जीवन में निहित हैं। बौद्धिक सद्गुण ही मानव के लिए परम शुद्ध है। किन्तु अरस्तू के अनुसार बुद्धि के द्वारा वासनाओं और भावनाओं के नियमन को नैतिक सद्गुण कहा है। यद्यपि बौद्धिक सद्गुण, नैतिक सद्गुण की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण एवं उच्च कोटी का है, किन्तु नैतिक सद्गुण की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। मनुष्य का आनन्द बुद्धि के द्वारा वासनाओं और भावनाओं के नियमन पर आश्रित है। अतिशय त्याग (वैराग्यवाद) और अतिशय भोग (सुखवाद) इनमें से कोई भी मानव जीवन के लिए शुभ नहीं हो सकते हैं। इस दृष्टि से अरस्तू भी प्लेटो के समान सिनिक विचारकों के वैराग्यवाद एवं सिरेनाइक विचारकों के भोगवाद का परित्याग करके **पूर्णतावादी (Perfectionism)** नीतिशास्त्र का प्रतिपादन करता है।

प्लेटो ने सद्गुणों को आत्मा का विशेष गुण (प्रत्यय) मान लिया था। ये गुण आत्मा के स्वभाव में ही निहित (जन्मजात) हैं, उसके द्वारा अर्जित नहीं हैं। किन्तु अरस्तू सद्गुणों को अभ्यासजन्य मानता है। निरन्तर अभ्यास के द्वारा सद्गुणों का विकास किया जा सकता है। अच्छे कर्म करने की निरन्तर अभ्यास के बिना मनुष्य नैतिक कर्म नहीं कर सकता है।

अरस्तू के अनुसार मानव जीवन का परम लक्ष्य या परम शुभ आनन्द है, किन्तु यह आनन्द इंद्रिय सुखों से भिन्न होता है। यहां आनन्द का संबंध मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के आह्लादित होने से है। यह बुद्धि द्वारा भावनाओं और वासनाओं के तर्कसंगत नियमन से संबंधित होता है। सद्गुण से युक्त बौद्धिक जीवन ही आनन्दप्रद तथा कल्याणकारी होता है। किन्तु प्रश्न उठता है कि सद्गुण क्या है? अरस्तू ने सद्गुण का निर्धारण करने के लिए स्वर्णिम माध्य के सिद्धान्त (Theory of Golden Mean) का प्रतिपादन किया है।

स्वर्णिम माध्य का सिद्धान्त दो अतियों के बीच का मार्ग है। वैराग्यवादियों (सिनिकों) की भूल यह है कि वे वासनाओं एवं भावनाओं की उपेक्षा करके नैतिक सद्गुण के सार को नष्ट कर देते हैं। इसके विपरीत सुखवादी (सिरेनाइक) मनुष्य के बौद्धिक पक्ष की उपेक्षा करके पाशविक सुख को ही श्रेष्ठ मान लेने की भूल करते हैं। अरस्तू के अनुसार सद्गुण का अर्थ वासनाओं का दमन या उत्पीड़न नहीं है, बल्कि उनका बुद्धि के द्वारा युक्तियुक्त नियमन करना है। इससे सिद्ध होता है कि सद्गुण इन दो अतियों (वैराग्यवाद एवं सुखवाद) से बचने का मार्ग है। अरस्तू मध्यम मार्ग को ही नैतिक जीवन कहता है।

सुकरात ने केवल ज्ञान (विवेक) को ही एकमात्र सद्गुण माना है। प्लेटो ने विवेक, साहस, आत्मसंयम व न्याय इन चार को सद्गुण माना है। इसके विपरीत अरस्तू सद्गुणों की निश्चित संख्या निर्धारित नहीं करता है। अरस्तू के माध्य (Mean) का निर्धारण परिस्थितियों के अनुसार विवेक या बौद्धिक अन्तर्दृष्टि (Rational Insight) से होता है। इससे स्पष्ट है कि अरस्तू का माध्य परिस्थिति सापेक्ष है।

अरस्तू ने दो अतियों के मध्य बिन्दुओं का उल्लेख किया है, जैसे - साहस (Courage), कायरता (Cowardice) और उतावलेपन (Rashness) का मध्य बिन्दु है। इसी प्रकार विनम्रता (Humility), उदण्डता (Rudeness) एवं चापलूसी (Obsequiousness) का मध्य बिन्दु है। दो अतियों के मध्य बिन्दु अनेक हैं। भय, क्रोध, साहस, करुणा आदि संवेगों एवं भावनाओं का उपयोग उपयुक्त समय पर उपयुक्त व्यक्तियों के प्रति उचित उद्देश्य से समुचित ढंग से करना ही मध्यम मार्ग है। अरस्तू इसे जीवन का सर्वश्रेष्ठ मार्ग कहता है। उसके अनुसार नैतिक सद्गुण बौद्धिक सद्गुण की प्राप्ति का साधन है। अरस्तू के स्वर्णिम माध्यम की तुलना श्रीमद्भागवत गीता से संतुलित आहार एवं विहार से युक्त स्वप्न एवं जागरण की अवस्था वाले योग से की जा सकती है। यह बौद्ध दर्शन के मध्यम प्रतिपद का स्मरण कराता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अरस्तू का नीतिशास्त्र मानव जीवन के मनोवैज्ञानिक पक्षों के सम्यक् वेग पर आधारित है। अरस्तू मानव दुर्बलताओं और उसके भावात्मक पक्षों के प्रति जागरूक है। इसी कारण उसने भावनाओं के दमन का परित्याग करके बुद्धि के द्वारा उनके नियमन पर बल दिया है। राग-द्वेष, भय-क्रोध, ईर्ष्या, लोभ का युक्तिपूर्ण नियंत्रण करना साधारण मनुष्यों के लिए सरल नहीं है। ये संवेग मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त प्रभावोत्पादक होते हैं। गीता का अर्जुन इन संवेगों के विचलित हो जाता है। वह श्रीकृष्ण से कहता है कि मन अत्यन्त चंचल होता है, इसे वश में करना अत्यन्त कठिन है। गीता में आत्मसंयम के द्वारा इसके नियमन का मार्ग बताया गया है। इसके लिए शाश्वत साधना की आवश्यकता है।

इसी प्रकार अरस्तू भी सद्गुणी जीवन के लिए निरन्तर साधना या अभ्यास पर बल देता है। वह सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों दृष्टियों से सद्गुणों के स्वरूप पर चिंतन करता है। उसने सुकरात के इस कथन - ज्ञान ही सद्गुण है, को स्वीकार नहीं किया है। उसके अनुसार नैतिक जीवन के लिए केवल सद्गुण का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि सद्गुण को जानने के साथ-साथ उसके अनुसार आचरण भी होना चाहिए। अतः सद्गुण का ज्ञान और तदनु रूप आचरण दोनों मनुष्य के नैतिक जीवन के लिए आवश्यक है।

संक्षेप में नैतिक जीवन के उत्कर्ष के लिए ज्ञान व कर्म (सद्गुण को बोध और उसके अनुसार आचरण करना) दोनों में सामन्जस्य आवश्यक है।

अरस्तू का न्याय सिद्धान्त (Aristotle's Theory of Justice)

अरस्तू के न्याय की संकल्पना उसके इथिक्स नामक ग्रंथ में मिलती है। अरस्तू भी प्लेटो के समान न्याय को नैतिकता से संबंधित करते हुए न्याय को एक सद्गुण मानता है। किन्तु अरस्तू की न्याय संबंधी अवधारणा प्लेटो से भिन्न है। प्लेटो मूलतः न्याय की नैतिक संकल्पना प्रस्तुत करता है, जबकि अरस्तू न्याय की नैतिक व विधिक दोनों संकल्पनाएँ प्रस्तुत करता है। अरस्तू के अनुसार न्याय का सरोकार मानवीय संबंधों के नियमन से है। मूल अर्थ में अरस्तू ने न्याय को सद्गुण का व्यवहारिक पक्ष माना है। उदाहरणार्थ - विवेकी होना सद्गुण है, किन्तु विवेकपूर्ण आचरण करना न्याय है।

अरस्तू ने अन्य सभी सद्गुणों की तुलना में न्याय को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है, क्योंकि उसकी दृष्टि में शेष सद्गुण न्याय में ही शामिल हैं। अरस्तू ने न्याय का स्वरूप स्पष्ट करते हुए इसके 2 पक्ष बताए हैं -

- 1) **व्यक्तिगत न्याय** - प्लेटो ने न्याय को सद्गुण माना है, जो विवेक, साहस एवं संयम के आपसी सामन्जस्य से उत्पन्न होता है। किन्तु अरस्तू ने न्याय को मानव व्यवहार के औचित्य पर आधारित करने का प्रयास किया है। उसके अनुसार यह औचित्य स्वर्णिम माध्यम का सिद्धान्त है, अर्थात् - यह 2 अतियों के मध्य की स्थिति है। उदाहरणार्थ - उदण्डता और कायरता के मध्य की स्थिति साहस है। अतः साहस न्यायिक सद्गुण है। अन्य शब्दों में जहां 2 अतियों के बीच की साम्यवस्था पाई जाएगी, वही न्याय है। अतः न्याय सद्गुणों की साम्यवस्था है।
- 2) **समाजिक न्याय** - अरस्तू ने यहां न्याय का विशिष्ट अर्थ लिया है - सद्गुण के साथ किया जाने वाला यथोचित व्यवहार। चूंकि न्याय मानव जीवन के 2 पक्षों को प्रभावित करता है, अतः यह 2 प्रकार का होता है -
 - a) **वितरणात्मक न्याय (Distributive Justice)** - वितरणमूलक न्याय का संबंध राजनीतिक पदों, सम्मानों या अन्य प्रकार के लाभों, प्रतिष्ठा एवं पुरस्कारों के वितरण से है, अर्थात् - राज्य किस आधार पर अपने नागरिकों के मध्य इनका वितरण करेगा। इसके लिए अरस्तू ने आनुपातिक समानता (Proportional Equality) का मार्ग सुझाया है, अर्थात् -

समान लोगों के साथ समान और असमान लोगों के साथ असमान बर्ताव किया जाना चाहिए। किन्तु प्रश्न उठता है कि किसी को समान और असमान किस आधार पर माना जाए। इस संदर्भ में अरस्तू का विचार था कि प्रचलित प्रथाओं (Customs), प्रथागत कानूनों (Customary Law) तथा सम्पत्ति को इसका आधार मानना चाहिए, क्योंकि लिखित कानून इतने उपयुक्त सिद्ध नहीं होंगे। इन्हें सरकार जब चाहे बना सकती है और जब चाहे बदल सकती है। अरस्तू का मानना है कि मनुष्य के चरित्र को बदलना उतना आसान नहीं, जितनी सरलता से कानून को बदलना।

अरस्तू का मानना है कि वितरणमूलक न्याय के अन्तर्गत पद, प्रतिष्ठा, धन-सम्पदा आदि का वितरण समान रूप से नहीं होना चाहिए, बल्कि योग्यता के अनुसार मिलना चाहिए। किन्तु प्रश्न उत्पन्न होता है कि योग्यता कैसे निर्धारित की जाए? तो अरस्तू का तर्क है कि प्रत्येक व्यक्ति को पुरस्कार उसी अनुपात में मिलना चाहिए, जिस अनुपात में उसने समाज को लाभ पहुंचाया है।

b) प्रतिकारात्मक न्याय (Remedial Justice) - प्रतिकारात्मक न्याय का संबंध लोगों के परस्पर लेन-देन को नियमित करने और अपराधों का दण्ड निर्धारित करने से है। यह यह न्याय की नकारात्मक अवधारणा है तथा अंकगणितीय अनुपात (Arithmetical Proportion) पर आधारित है, अर्थात् - किसी व्यक्ति की योग्यता, अयोग्यता या सामाजिक स्थिति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं बरता जाएगा, बल्कि सबको समान मानते हुए केवल व्यक्ति के कृत्य पर विचार किया जाएगा। वस्तुतः इसका उद्देश्य व्यक्तियों के परस्पर व्यवहार में संतुलन स्थापित करना या बिगड़े हुए संतुलन को फिर से स्थापित करना है।

□ आलोचनाएं

- 1) राज्य की सेवा का मानदण्ड क्या है? अरस्तू इसका स्पष्ट उत्तर नहीं देता है। राज्य की सर्वाधिक सेवा कौन करता है - मानसिक श्रम करने वाला या शारीरिक श्रम करने वाला? मानसिक श्रम में और शारीरिक श्रम में कौन अधिक महत्वपूर्ण है? इस संबंध में अरस्तू का कोई निश्चित उत्तर नहीं है।
- 2) किसी व्यक्ति की योग्यता एवं चरित्र का उसके धर्म से क्या संबंध है? अरस्तू ने राज्य को दिए गए धन को भी राजकीय सम्मान की पात्रता का एक आधार माना है। प्रश्न यह है कि क्या एक दुराचारी व्यक्ति धन के योगदान से राजकीय सम्मान के प्राप्ति का अधिकारी है? स्पष्ट नहीं है।
- 3) दण्ड में भी नियमों का पूरी तरह अंकगणितीय अनुपात में पालन नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ - महिला, बच्चे, पेशेवर अपराधी।
- 4) लाभ के वितरण में चूंकि अरस्तू सामाजिक प्रथाओं एवं परम्पराओं को आधार बनाता है, जो लाभ के वितरण में वैज्ञानिक व तार्किक आधार नहीं माना जा सकता।
- 5) मध्यम मार्ग का सिद्धान्त भी व्यवहारिक कम, आदर्श ज्यादा लगता है।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में वैदिक धर्म, यज्ञ आदि के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप दो धार्मिक क्रांतियों का सूत्रपात हुआ था, जिनका नेतृत्व गौतम बुद्ध व महावीर स्वामी ने किया। गौतम बुद्ध का संबंध भारतीय दर्शन की बौद्ध विचारधारा से है, जबकि महावीर स्वामी भारतीय दर्शन की जैन परम्परा के सूत्रधार हैं। यह दोनों परम्पराएं स्पष्टतः ब्राह्मण विचारधारा की विरोधी रही हैं। दोनों ने वेदों के प्रामाण्य का विरोध, नास्तिकवादी जीवन दृष्टि, ईश्वर की सत्ता के प्रति अविश्वास तथा जीवन दर्शन के रूप में अहिंसा को स्वीकार किया है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से जैन शब्द 'जिन' शब्द से बना है। जिन शब्द संस्कृत भाषा के 'जि' धातु से उत्पन्न है, जिसका अर्थ है 'जीतना'। अतः व्युत्पत्ति के आधार पर जिन वह है, जिसने अपने राग, द्वेष आदि मनोभावों पर विजय प्राप्त करके सर्वोच्च सत्ता का साक्षात्कार कर लिया है। जिन के अनुयायी ही जैन कहलाए। जैन अपने धर्म प्रचारक सिद्धों को तीर्थंकर कहते हैं और उनकी संख्या 24 बताते हैं। ऋषभदेव प्रथम तथा महावीर 24वें तीर्थंकर माने जाते हैं।

महावीर के बचपन का वर्धमान था, उनका जन्म 599 ई. पू. वज्जी संघ के अन्तर्गत कुण्डग्राम के ज्ञात्रक राजकुल में हुआ था। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ एवं माता का नाम त्रिशलादेवी था। कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध के समान महावीर के जन्म के समय भी देवजनों ने भविष्यवाणी की यह शिशु बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती राजा बनेगा या परम ज्ञानी भिक्षु। माता-पिता की मृत्यु पश्चात् महावीर ने बड़े भाई नन्दिवर्धन से अनुमति लेकर 30 वर्ष की अवस्था में गृह त्याग किया।

जैन ग्रंथ आचारांग सूत्र में उनकी कठोर तपस्या का वर्णन मिलता है। नालन्दा में इनकी भेंट मकखलिपुत्तगोशाल नामक संन्यासी से हुई। वह उनका शिष्य बन गए, किन्तु 6 वर्षों बाद उनका साथ छोड़कर आजीवक सम्प्रदाय की स्थापना की। आजीवक सम्प्रदाय के अनुसार संसार की प्रत्येक वस्तु भाग्य द्वारा नियंत्रित एवं संचालित होती है। मनुष्य के कर्मों का उसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

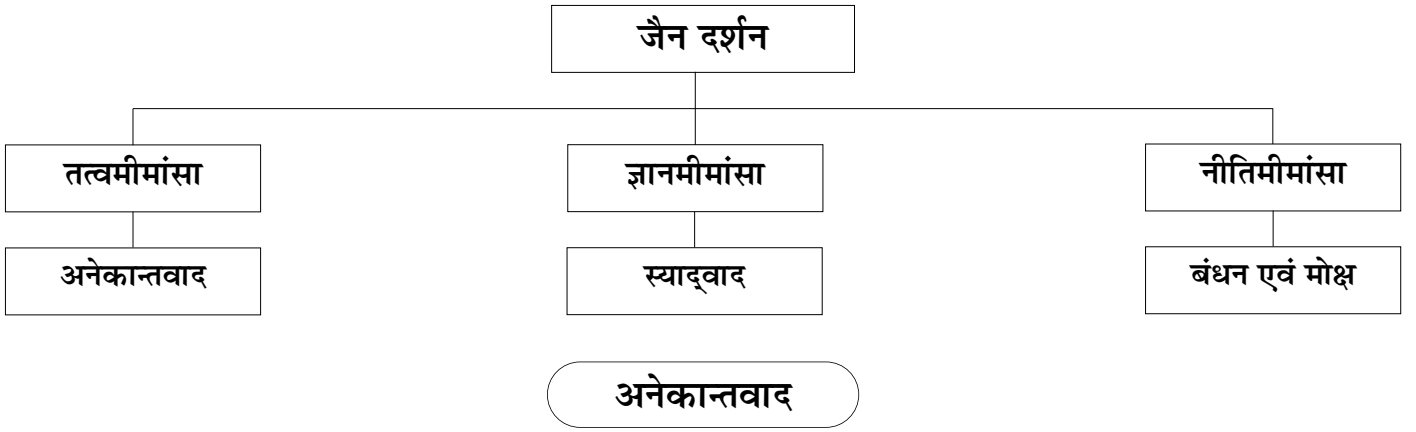
12 वर्ष की कठोर तपस्या के बाद वैशाख मास के 10वें दिन जृम्भिक ग्राम के समीप ऋजुपालिका नदी के तट पर साल वृक्ष के नीचे उन्हें कैवल्य (पूर्ण ज्ञान) की प्राप्ति हुई। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् वे केवलिन, अर्हत् (योग्य) तथा निर्ग्रन्थ (बन्धन रहित) कहे गए। अपनी साधना में अटल रहने तथा अतुल पराक्रम दिखाने के कारण उन्हें महावीर कहा गया। किन्तु इस तरह कैवल्य प्राप्त कर महावीर के जीवन का लक्ष्य पूरा नहीं हुआ, बल्कि अब उनका कर्म क्षेत्र प्रारंभ हुआ। बुद्ध के समान उनके भी जीवन का उद्देश्य काम, क्रोध, मद, ममत्व से ग्रस्त, दुःखी एवं जन्म-जन्मांतर में भटकती जीवात्मा को मोक्ष का मार्ग दिखाना, इस मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करना था। इस प्रकार उन्होंने घूम-घूमकर जनता को अपने मत का उपदेश दिया। 527 ई. पू. में पावापुरी में महावीर का देहावसान हुआ।

□ जैन दर्शन के सम्प्रदाय

महावीर की मृत्यु के पश्चात् जैन दर्शन के 2 सम्प्रदायों में विभक्त हो गया – दिगम्बर एवं श्वेताम्बर। इन सम्प्रदायों में मूल सिद्धान्तों का भेद नहीं है, बल्कि आचार-विचार संबंधी कुछ गौण बातों को लेकर मतभेद है। दोनों ही सम्प्रदाय के लोग तीर्थंकरों के उपदेशों को अवश्य मानते हैं, लेकिन श्वेताम्बर की अपेक्षा दिगम्बर के आचरण पालन में अधिक कठोरता पाई जाती है। दिगम्बरों का विश्वास है कि सन्यासियों को वस्त्र धारण नहीं करना चाहिए, किसी भी वस्तु का संग्रह करना दिगम्बर के अनुसार वर्जित है, स्त्रियों को मोक्ष प्राप्ति के योग्य दिगम्बर नहीं मानता है। जबकि श्वेताम्बर में इतनी कठोरता नहीं पाई जाती है, वे श्वेत वस्त्र का धारण अनिवार्य मानते हैं।

□ जैन साहित्य

यद्यपि महावीर स्वामी ने स्वयं कुछ नहीं लिखा, किन्तु उनके उपदेशों को उनके अनुयायियों ने संकलित किया। इसे 'आगम ग्रंथ' कहा जाता है, जो जैन धर्म व दर्शन की नींव है। इसमें अनेक अंग व उपांग आदि आते हैं। इसके अलावा तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण दार्शनिक ग्रंथ है।



जैन दर्शन की तत्त्वमीमांसा **वस्तुवादी, सापेक्षतावादी एवं बहुतत्त्ववादी (Realistic, Relativistic, Pluralism)** है। इसे अनेकान्तवाद कहते हैं। अनेकान्तवाद सत्ता की अनेकता का सिद्धान्त है। अनेकान्तवाद शब्द में अन्त का अर्थ वस्तु व धर्म दोनों से है, अर्थात् - इस लोक में अनेक वस्तुएं हैं, जिनमें से प्रत्येक वस्तु के अनन्त धर्म हैं (**अनन्त धर्मकं वस्तु, अनन्त धर्मात्मकमेव तत्त्वम्**)। इस प्रकार अनेकान्तवाद जगत में अनेक सत्ताओं (जड़ व चेतन) को स्वीकार करता है तथा अनेक दृष्टि से सत्ता के स्वरूप का निर्धारण करता है। उल्लेखनीय है कि जैन दर्शन सत्ता के लिए 'द्रव्य' (Substance) शब्द का प्रयोग करता है।

जब सत्ता (द्रव्य) के स्वरूप को अनेक दृष्टिकोण से विचार किया जाता है, तो उसमें अनन्त धर्म होते हैं। इनमें से कुछ धर्म नित्य, (स्थायी) तथा कुछ धर्म अनित्य (अस्थायी) होते हैं। नित्य धर्म वे हैं, जो वस्तुओं (द्रव्य) में सदैव विद्यमान रहते हैं तथा वस्तु के अस्तित्व के लिए अनिवार्य होते हैं। इसके विपरीत अनित्य धर्म वे हैं, जो निरंतर परिवर्तनशील होते रहते हैं तथा वस्तु के अस्तित्व के लिए अनिवार्य नहीं होते हैं।

इस प्रकार नित्य धर्म वस्तु (द्रव्य) के स्वरूप को निर्धारित करते हैं, अतः इन्हें **स्वरूप धर्म (Essential Qualities)** कहा जाता है। अनित्य धर्म वस्तु (द्रव्य) में सदैव विद्यमान नहीं रहते हैं, अतः इन्हें **आगन्तुक धर्म (Accidental Qualities)** कहा जाता है। उदाहरणार्थ - स्वर्ण के एक आभूषण (द्रव्य) का स्वरूप धर्म उसका पीलापन तथा चमकीलापन है, जो नित्य है। इसके विपरीत स्वर्ण आभूषण का आकार उसका आगन्तुक धर्म है, जो अनित्य है। ठीक इसी प्रकार चेतना आत्मा (द्रव्य) का स्वरूप धर्म है, जबकि सुख, दुःख, इच्छा, कल्पना आदि आत्मा के आगन्तुक धर्म हैं।

यहां उल्लेखनीय है कि जैन दार्शनिकों ने अनेकान्तवाद का समर्थन करने के साथ-साथ एकान्तवाद का खण्डन भी किया है। एकान्तवाद का अर्थ ऐसी तत्त्वमीमांसा से है, जो सत्ता के स्वरूप की व्याख्या एकांगी दृष्टिकोण से होकर करता है। जैनों ने वेदान्त व बौद्ध दर्शन को एकान्तवाद का पोषक कहा है। अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म की नित्यता को ही एकमात्र वास्तविक सत्ता मानी है तथा अनित्यता (परिवर्तन) सत्ता की नहीं माना है। इसके विपरीत प्रारंभिक बौद्ध दर्शन में अनित्यता (परिवर्तन) को ही एकमात्र वास्तविक सत्ता मानी है, जबकि नित्यता का खण्डन किया है। जैन दार्शनिकों के अनुसार अद्वैत वेदान्त 'ब्रह्म एकान्तवाद' तथा बौद्ध दर्शन 'क्षणिक एकान्तवाद' के दोष से ग्रसित है।

पाश्चात्य दर्शन में ग्रीक दार्शनिक **पार्मेनाइडीज (Parmenides)** एवं **हेरेक्लाइटस (Heraclitus)** ने भी एकान्तवाद का समर्थन किया है। हेरेक्लाइटस परिवर्तन को सत्य मानते हैं, जबकि पार्मेनाइडीज नित्यता को सत्य मानते हैं। इन सबके विपरीत जैन दार्शनिक अपने मत को अनेकान्तवाद कहते हैं, क्योंकि उनके मत में नित्यता और अनित्यता, एकता और अनेकता निहित है।

यहां ध्यातव्य है कि अनेकान्तवाद को दो एकान्तवादों को मिलाने वाली एक मिश्रित दृष्टि के रूप में समझना नितान्त भ्रमात्मक है। इसके विपरीत अनेकान्तवाद एक अखण्ड दृष्टि है, जिसमें वस्तु के सभी धर्मों का समन्वय हुआ है। इस प्रकार जैन दार्शनिक जगत की व्याख्या के क्रम में नित्यता के साथ अनित्यता, उत्पत्ति के साथ विनाश, सान्त के साथ अनन्त तथा एकता के साथ अनेकता को स्वीकार करते हैं।

स्याद्वाद ज्ञान की सापेक्षता संबंधी सिद्धान्त है, जो जैन दर्शन में परामर्श को व्यक्त करता है। जैन दर्शन में इसे तत्वमीमांसीय दृष्टिकोण से अनेकान्तवाद तथा ज्ञानमीमांसीय दृष्टिकोण से स्याद्वाद कहते हैं। वस्तुतः स्याद्वाद तत्वमीमांसीय सिद्धान्त अनेकान्तवाद की ज्ञानमीमांसीय अभिव्यक्ति है।

अनेकान्तवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु के अनन्त गुण होते हैं। अनन्त गुण होने के कारण उसका स्वरूप अत्यधिक जटिल होता है। वस्तु के अनन्त गुणों का ज्ञान मात्र 'केवली' को होता है, क्योंकि वह सर्वज्ञ होता है। साधारण मनुष्य का ज्ञान अत्यधिक सीमित होता है, क्योंकि वह किसी वस्तु को कुछ ही दृष्टियों से देखता है। अतः वह वस्तु के आंशिक धर्मों को ही जानता है और उसी के आधार पर वस्तु के विषय में परामर्श करता है।

तात्पर्य यह है कि व्यक्ति किसी वस्तु को देश-काल-परिस्थिति के अनुसार विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं और उसी के आधार पर परामर्श करते हैं, फलस्वरूप उनके परामर्श में परस्पर मतभेद होता है। इनमें से किसी परामर्श द्वारा वस्तु के स्वरूप का पूर्ण बोध नहीं होता है, बल्कि आंशिक ज्ञान प्राप्त होता है। अतः वस्तु के विषय में कोई परामर्श एकमात्र सत्य नहीं होता है। वस्तु के इस आंशिक ज्ञान को 'नय' कहा जाता है। नय किसी वस्तु को समझने के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। ये सत्य के आंशिक रूप कहे जाते हैं। इनसे सापेक्ष सत्य की प्राप्ति होती है न कि निरपेक्ष सत्य की। स्याद्वाद यही ज्ञान की सापेक्षता का सिद्धान्त है।

जैन दार्शनिक अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए 'अंधे और हाथी की कहानी' का उल्लेख करते हैं। छह अंधे हाथी के आकार जानने के उद्देश्य से हाथी के अंगों का स्पर्श करते हैं - एक अंधा हाथी के पैर को स्पर्श करके कहता है कि हाथी खंभे के समान है। दूसरा अंधा हाथी के सुंड का स्पर्श करके कहता है कि हाथी अजगर के समान है। तीसरा अंधा हाथी के कान का स्पर्श करके कहता है कि हाथी पंखे के समान है। चौथा अंधा हाथी के पेट का स्पर्श करके कहता है कि हाथी दीवार के समान है, इत्यादी। प्रत्येक अंधा सोचता है कि उसी का ज्ञान सत्य है।

अब यहां प्रश्न उठता है कि हाथी के विषय में किस अंधे का कथन सत्य है? स्पष्टतः अंधों के हाथी विषयक वर्णन में मतभेद का कारण उनका दृष्टि भेद है। जब उन्हें यह समझाया जाता है कि उन्होंने हाथी के अलग-अलग अंगों का स्पर्श किया है। अतः उन सभी का ज्ञान विभिन्न दृष्टिकोणों से आंशिक सत्य है, न कि एकमात्र सत्य है, तो उनका मतभेद दूर हो जाता है। जैन दार्शनिक इस कहानी के आधार पर यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि विभिन्न दार्शनिकों के मत व सिद्धान्तों में मतभेद का कारण दृष्टि भेद है। विभिन्न धार्मिक संघर्ष इसी निरपेक्ष एकान्तवाद के परिणाम हैं। प्रत्येक दर्शन अपने दृष्टिकोण को निरपेक्ष सत्य मानता है और दूसरे के दृष्टिकोण को मिथ्या बताकर उपेक्षा करता है।

अतः ज्ञान की इस सापेक्षता के कारण जैन इस बात का आग्रह करते हैं कि प्रत्येक नय के आरंभ में स्यात् शब्द का प्रयोग करना चाहिए। स्यात् शब्द से यह संकेत होता है कि उसके साथ प्रयुक्त वाक्य की सत्यता प्रसंग विशेष पर ही निर्भर करती है। अन्य प्रसंगों में वह मिथ्या भी हो सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि नय (परामर्श) को दोषमुक्त तथा विवादों से बचने के लिए स्यात् शब्द का प्रयोग नितांत आवश्यक है।

यदि हाथी के स्वरूप की व्याख्या करते समय अंधे 'स्यात्' शब्द का प्रयोग करते, अर्थात् - कहते कि स्यात् हाथी खंभे के समान है, स्यात् हाथी अजगर के समान है, तो उनके मत दोष रहित माने जाते। ऐसी स्थिति में सभी अंधों की बातें अपने-अपने दृष्टिकोण से ठीक होती और उनमें विवाद का प्रश्न ही नहीं होता। इसे ही स्याद्वाद कहा जाता है। अतः स्याद्वाद वह सिद्धान्त है, जो मानता है कि मनुष्य का ज्ञान एकांगी तथा आंशिक है।

उल्लेखनीय है कि यहां कुछ विचारक स्यात् शब्द का अर्थ संशय, संभावना, अनिश्चितता, अज्ञेयता या संदेह समझते हैं, लेकिन स्याद्वाद को संदेहवाद कहना भ्रामक है। संदेहवाद ज्ञान की संभावनाओं में संदेह करता है, जबकि जैन दर्शन ज्ञान की संभावना की सत्यता में विश्वास करता है। वह पूर्ण ज्ञान की संभावना पर भी विश्वास करता है। अतः स्याद्वाद को संदेहवाद नहीं कहा जा सकता है। स्यात् शब्द ज्ञान की सापेक्षता व आंशिकता को अभिव्यक्त करता है।

□ सप्तभंगी नय

स्याद्वाद व्यवहारिक रूप से सप्तभंगी नय में अभिव्यक्त होता है। इसका अर्थ है – किसी वस्तु के विषय में परामर्श या नय के सात (सप्त) प्रकार (भंग)। जैन दर्शन के अनुसार किसी वस्तु के अनन्त धर्म होते हैं और उनमें से एक धर्म या गुण के ज्ञान की अभिव्यक्ति को नय कहा जाता है। अतः सप्तभंगी नय द्वारा किसी वस्तु के विविध गुणों का निश्चय किया जा सकता है। ये बिना किसी आत्मविरोध के अलग-अलग या संयुक्त रूप से किसी विषय का विधान या निषेध करते हैं। दूसरे शब्दों में किसी वस्तु के विषय में स्यात्पूर्वक सात परामर्श किए जा सकते हैं। इसे ही सप्तभंगी नय कहा गया है। इसके 7 नय निम्नलिखित हैं –

- 1) स्यात् है (स्यात् आस्ति)।
- 2) स्यात् नहीं है (स्यात् नास्ति)।
- 3) स्यात् है तथा स्यात् नहीं भी है (स्यात् आस्ति च नास्ति च)।
- 4) स्यात् अवक्तव्य है (स्यात् अवक्तव्यम्)।
- 5) स्यात् है तथा अवक्तव्य भी है (स्यात् आस्ति च अवक्तव्यम् च)।
- 6) स्यात् नहीं है तथा अवक्तव्य भी है (स्यात् नास्ति च अवक्तव्यम् च)।
- 7) स्यात् है, नहीं है तथा अवक्तव्य भी है (स्यात् आस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम् च)।

इस प्रकार जैन दार्शनिकों का स्याद्वाद एक उदार दृष्टिकोण है, इसलिए यह समाज के लिए लाभप्रद है। इससे व्यक्ति में उदार मनोवृत्ति का विकास होता है तथा दूसरों के विचारों के प्रति श्रद्धा रखने की सीख मिलती है। इस उदार मनोवृत्ति व लचीले दृष्टिकोण से व्यक्ति व समाज में साम्प्रदायिकता, जातियता, लैंगिक विद्वेष आदि कम होते हैं। जैनों का स्याद्वाद सर्वधर्मसमन्वय के लिए लाभदायक हो सकता है, क्योंकि प्रत्येक धर्म किसी न किसी रूप में सत्य की खोज करता है भले ही रास्ते अलग हैं।

बंधन एवं मोक्ष

जैनों की नीतिमीमांसा में बंधन एवं मोक्ष एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। भारतीय दर्शन में प्रायः बंधन का अर्थ निरन्तर जन्म ग्रहण करना तथा दुःखों को झेलना है। किन्तु विभिन्न दर्शनों में आत्मा तथा जगत के संबंध में अलग-अलग विचार हैं। परिणामस्वरूप भारतीय दर्शन में बंधन व मोक्ष के अर्थ के संबंध में अलग-अलग मत दिखाई देते हैं।

जैन दर्शन के अनुसार जीव/आत्मा स्वभावतः अनन्तचतुष्टय से युक्त है। जीवों में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्द हमेशा विद्यमान रहता है। परन्तु बंधन की अवस्था में यह अनन्तचतुष्टय वैसे ही ढंक जाता है, जैसे मेघ सूर्य के प्रकाश को ढंक देता है। दूसरे शब्दों में जीव शरीर के साथ संयोग की कामना करता है। शरीर का निर्माण पुद्गल कणों से हुआ है। इस प्रकार जीव का पुद्गल से संयोग ही बंधन है। ठीक इसके विपरीत जीव का पुद्गलों से पृथक होना मोक्ष है।

□ बंधन का कारण

यहां प्रश्न उठता है कि जीव शरीर क्यों धारण करता है? जीव बंधनग्रस्त क्यों होता है? जैन दार्शनिकों ने अज्ञानता/अविद्या को बंधन का कारण माना है। अज्ञान से अभिभूत रहने के कारण ही जीव में वासनाएं व लालसाएं पैदा होती हैं। ऐसी वासनाएं मूलतः चार हैं, जिन्हें क्रोध (Anger), मान (Pride), लोभ (Greed) एवं माया (Infatuation) कहा जाता है। इन वासनाओं, अर्थात् – कुप्रवृत्तियों के वशीभूत जीव शरीर की ओर ललायित होता है। वह पुद्गल कणों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। पुद्गल कणों को आकृष्ट करने के कारण इन कुप्रवृत्तियों को ‘कषाय’ (Sticky Substance) कहा जाता है।

जीव किस प्रकार के पुद्गल कणों की ओर आकृष्ट करेगा या कौन-सा शरीर धारण करेगा? यह उसके पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार सुनिश्चित होता है। इस प्रकार कर्म वह कड़ी है, जो जीव को शरीर से जोड़ती है। जीव की संपूर्ण शारीरिक विशेषता कर्मजन्य मानी जाती है। इस प्रकार अन्य भारतीय दार्शनिकों की तरह जैन दार्शनिक भी कर्म सिद्धान्त में अटूट विश्वास रखते हैं। जैन दर्शन में आठ प्रकार के कर्म स्वीकार किए गए हैं।

□ बंधन की प्रक्रिया

बंधन की प्रक्रिया 2 स्तर पर सम्पन्न होती है - आस्रव एवं बंध।

- 1) **आस्रव** - आस्रव का शाब्दिक अर्थ है - बहना (प्रवाह)। जीव की ओर कर्म पुद्गलों का प्रवाह आस्रव कहलाता है।
- 2) **बंध** - बंध का शाब्दिक अर्थ है बंधना। कर्म पुद्गलों का जीव में प्रवेश कर उसे जकड़ लेना तथा जीव का उनसे बंध जाना ही बंध है। ज्यों ही आत्मा में 4 प्रकार की कुप्रवृत्तियां निवास करने लगती हैं, त्यों ही आत्मा बंधन को प्राप्त करने लगती है।

□ मोक्ष की प्रक्रिया

जैन दर्शन भी अन्य भारतीय दर्शनों की तरह ही मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य मानता है। जीव का पुद्गल से वियोग ही मोक्ष है। मोक्षावस्था में जीव का पुद्गल से पृथक्करण हो जाता है। मोक्ष की यह प्रक्रिया 2 स्तर पर होती है -

- 1) **संवर** - मोक्ष प्राप्ति का प्रथम प्रयास संवर है, जिसमें नए पुद्गल कणों को जीव की ओर प्रवाहित होने से पूर्णतः रोका जाता है।
- 2) **निर्जरा** - संवर की अवस्था में जीवात्मा में नए कर्म पुद्गलों का प्रवेश तो बंद हो जाता है, किन्तु आत्मा में पहले से ही प्रविष्ट हुए कर्म पुद्गलों का नाश संवर से नहीं होता है। निर्जरा इसी समस्या का समाधान करता है। जीवात्मा में पुराने कर्म पुद्गलों का नाश ही निर्जरा है।

जब कर्म पुद्गल का अंतिम कण भी जीवात्मा से पृथक् हो जाता है, तो वह अपनी स्वभाविक पूर्णता (अनन्तचतुष्टय) को प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। यही मोक्ष की अवस्था है। इस प्रकार जीवों के सभी कर्मों का क्षय मोक्ष है, जीव मुक्त हो जाने के बाद 'सिद्धशिला' पर पहुंचता है और वहां अनन्त काल तक वास करता है।

□ मोक्ष प्राप्ति के साधन

जैन दर्शन में मोक्ष प्राप्ति हेतु त्रिरत्न एवं पंचमहाव्रत का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र को त्रिरत्न, जबकि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह व ब्रह्मचर्य को पंचमहाव्रत कहा गया है।

त्रिरत्न

- 1) **सम्यक् ज्ञान** - जैन दार्शनिकों के अनुसार बंधन का मूल कारण क्रोध, मान, लोभ और माया है। इन कुप्रवृत्तियों का कारण अज्ञानता है। अज्ञान का नाश ज्ञान से संभव है, इसलिए जैन दर्शन में मोक्ष के लिए सम्यक् ज्ञान को आवश्यक माना गया है।
- 2) **सम्यक् दर्शन** - सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति पथ-प्रदर्शक के प्रति श्रद्धा व विश्वास से ही संभव है। जैन दर्शन में तीर्थंकर को ही पथ-प्रदर्शक कहा गया है, इसलिए सम्यक् ज्ञान को अपनाने के लिए तीर्थंकर के प्रति श्रद्धा व विश्वास का भाव होना आवश्यक है। इसे ही सम्यक् दर्शन कहा जाता है।
- 3) **सम्यक् चरित्र** - हितकर कार्यों का आचरण और अहितकर कार्यों का वर्जन ही सम्यक् चरित्र कहलाता है। मोक्ष के लिए तीर्थंकरों के प्रति श्रद्धा तथा सत्य का ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि अपने आचरण का संयम भी परम आवश्यक है। सम्यक् चरित्र व्यक्ति को मन, वचन और कर्म पर नियंत्रण करने का निर्देश देता है।

सम्यक् चरित्र जैन साधना का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। इसमें पांच समितियां, तीन गुप्तियां, पंचव्रत, दस धर्मों का पालन करना आवश्यक है। समिति का अर्थ साधारणतः सावधानी कहा जा सकता है। व्यक्ति को इसमें 5 प्रकार की सावधानियां रखने की आवश्यकता है। गुप्ति से तात्पर्य है मन, वचन एवं शारीरिक कर्मों पर संयम रखना। इसके अलावा 10 धर्मों का पालन करना जैनों के अनुसार आवश्यक माना गया है। दस धर्म हैं - सत्य (Truthfulness), क्षमा (Forgiveness), शौच (Purity), तप (Austerity), संयम (Self-restraint), त्याग (Sacrifice), विरक्ति (Non-attachment), मार्दव (Humility), सरलता (Simplicity) एवं ब्रह्मचर्य (Celibacy)।

पंचव्रत

जैन दर्शन में पंचमहाव्रत का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसके पालन के बिना जीव कभी-भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता है। जैन दर्शन में पंचव्रतों के 2 रूप हैं - महाव्रत एवं अणुव्रत। महाव्रत का विधान जैन सन्यासियों और अणुव्रत का विधान ग्रहस्थों के लिए है। जैन सन्यासियों से यह अपेक्षा की गई है कि वे इन पंचव्रतों का कठोरतापूर्वक पालन करेंगे, किन्तु ग्रहस्थों के लिए इन व्रतों के पालन में छूट दी गई है। ये 5 व्रत निम्नलिखित हैं -

- 1) **अहिंसा (Non-Violence)** - अहिंसा जैन धर्म का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधारभूत नैतिक गुण है। यहां अहिंसा का अर्थ है - मन, वाणी एवं कर्म तीनों से होने वाली हिंसा का परित्याग। उल्लेखनीय है कि यहां हिंसा का अर्थ केवल निषेधात्मक ही नहीं है, बल्कि सकारात्मक भी है, जैसे - जीव मात्र के प्रति प्रेम, दया व करुणा की भावना रखना। जैन दर्शन के अलावा भी विभिन्न धर्म, दर्शन व विचारकों ने अहिंसा के नैतिक मूल्य को स्वीकार किया है। किन्तु जितनी कठोरता जैन धर्म में दिखाई देती है, उतनी किसी अन्य धर्म या दर्शन में नहीं दिखाई देती है।
- 2) **सत्य (Truth)** - सत्य मुख्यतः हमारे वचन की पवित्रता से संबंधित है। इसका अर्थ है - असत्य वचन का परित्याग। किसी व्यक्ति को सिर्फ मिथ्या वचन का परित्याग ही नहीं करना चाहिए, बल्कि मधुर वचनों का प्रयोग भी करना चाहिए। सत्य व्रत का पालन भी मन, कर्म व वचन से करना चाहिए। सत्य बोलने वाला को सत्यव्रती कहलाता है। जैन दर्शन में 5 अतिचारों के माध्यम से सतव्रती को सावधान किया गया है, ये 5 अतिचार निम्नलिखित हैं -
 - a) किसी की गुप्त बात का प्रकाशन करना।
 - b) किसी की निन्दा करना।
 - c) झूठी गवाही देना।
 - d) किसी को मिथ्या उपदेश देना।
 - e) किसी के विश्वास को हिलाना।
- 3) **अस्तेय (Non-Stealing)** - स्तेय शब्द का अर्थ है - चोरी, अतः अस्तेय शब्द का अर्थ हुआ - चोरी न करना। जैन के मतानुसार जीवन का अस्तित्व धन पर निर्भर करता है, इसलिए जैनों ने धन को मानव का बाह्य जीवन कहा है। किसी व्यक्ति के धन के अपहरण करने की कामना उसके जीवन के अपहरण करने के समान है। अतः चोरी का निषेध करना नैतिक अनुशासन कहा गया है।
- 4) **अपरिग्रह (Non-Attachment)** - परिग्रह शब्द का अर्थ है - धन संग्रह करना, अतः अपरिग्रह का अर्थ हुआ - धन आदि का संग्रह न करना। यहां उल्लेखनीय है कि महावीर स्वामी अपरिग्रह पर अत्यन्त बल दिया था। इसी कारण उन्होंने वस्त्र तक के त्याग की बात कही थी, क्योंकि वस्त्रों को पहनना और उन्हें रखना भी तो संग्रह है।
- 5) **ब्रह्मचर्य (Celibacy)** - ब्रह्मचर्य का अर्थ है - समस्त वासनाओं का परित्याग करना। मानव अपनी वासनाओं एवं कामनाओं के वशीभूत होकर ऐसे कर्मों को आश्रय देता है, जो पूर्णतः अनैतिक हैं। ब्रह्मचर्य का साधारणतः अर्थ इंद्रियों पर रोक लगाना है। ब्रह्मचर्य का पालन मन, वचन व कर्म से होना चाहिए।

□ आलोचनाएं

- 1) जैनों की साधना पद्धति अत्यधिक कठोर है, जो व्यावहारिक जीवन में संभव नहीं है। इसीलिए यह धर्म अधिक सफल नहीं हो सका। अहिंसा का सिद्धान्त सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठ होने के बावजूद अत्यधिक कठोर है।
- 2) जैनियों द्वारा महाव्रत एवं अणुव्रत के विभाजन में अन्तर्विरोध है। यदि महाव्रत के पालन से मोक्ष मिलता है, तो अणुव्रत के पालन से मोक्ष संभव नहीं है। पुनः यदि अणुव्रत के पालन से मोक्ष संभव है, तो कोई महाव्रत का पालन क्यों करेगा?
- 3) यदि जीव स्वभावतः अनन्तचतुष्टय से युक्त है, तो फिर अज्ञानता की बात करना असंगत है।

जैन दर्शन ईश्वर आदि की सहायता के बिना मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है। इससे मनुष्य को स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा मिलती है। जैनियों का यह कहना कि विचार का प्रभाव जीव पर पड़ता है। मनोवैज्ञानिक रूप से सत्य है। जैनों के आचरण संबंधी नियम प्रशंसनीय हैं तथा वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है (आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, अन्याय, भोगवाद, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं के संदर्भ में)।

बुद्ध Buddha

महात्मा बुद्ध बौद्ध दर्शन के संस्थापक माने जाते हैं। बुद्ध का जन्म 563 ई. पू. में हिमालय की तराई में स्थित कपिल वस्तु के लुंबिनी नामक स्थान में हुआ था। इनकी माता का नाम महारानी महामाया देवी था तथा पिता का नाम शुद्धोधन था। परंपरागत कथा के अनुसार, सिद्धार्थ की माता का उनके जन्म के सात दिन बाद निधन हो गया था। उनका पालन पोषण उनकी मौसी और शुद्धोधन की दूसरी रानी महाप्रजावती ने किया। शिशु का नाम सिद्धार्थ दिया गया, जिसका अर्थ है कि जो सिद्धी प्राप्ति के लिए जन्मा हो। गौतम गोत्र में जन्म लेने के कारण वे गौतम भी कहलाए।

बुद्ध के जन्म समारोह के दौरान, साधु द्रष्टा आसित ने भविष्यवाणी की कि बच्चा या तो एक महान राजा या एक महान पथ प्रदर्शक बनेगा। राजा शुद्धोधन ने राजकुमार सिद्धार्थ का पालन-पोषण हर तरह के सुखद वातावरण में किया। सोलह वर्ष की उम्र में बुद्ध का विवाह शाक्य कन्या यशोधरा से हुआ, जिससे उन्हें एक पुत्र (राहुल) की प्राप्ति हुई। किन्तु बुद्ध बचपन से ही संसार में व्याप्त दुःख, जीवन की क्षणभंगुरता एवं अनिश्चितता के प्रति संवेदनशील थे। एक किंवदन्ती के अनुसार गौतम बुद्ध के जीवन में घटित चार घटनाओं ने सांसारिक मोह समाप्त कर उन्हें सन्यासी बना दिया। ये घटनाएँ हैं – वृद्ध व्यक्ति का प्रत्यक्ष होना, बीमार व्यक्ति को सामने तड़पते हुए देखना, मृत व्यक्ति के पीछे रोते-बिलखते लोगों को देखना और भिक्षु-साधु का साक्षात्कार।

इन घटनाओं ने गौतम बुद्ध के भावुक मन में संसार के दुःखमय स्वरूप के प्रति उग्र पीड़ा उत्पन्न कर दी। संसार के दुःखों को किस प्रकार दूर किया जाए – यह चिन्ता निरन्तर बुद्ध को सताने लगी। अतः दुःख के समाधान व सत्य के साक्षात्कार हेतु उन्होंने ग्रहस्थ जीवन को त्याग दिया। इसे बौद्ध दर्शन के इतिहास में महाभिनिष्क्रमण कहा गया। विभिन्न प्रकार की यातनाएँ झेलने के बाद गौतम बुद्ध को वैशाख पूर्णिमा के दिन गया में वट वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ। इस घटना के बाद गया को बोध गया एवं वट वृक्ष को बोधि वृक्ष कहा गया तथा सिद्धार्थ बुद्ध कहलाए।

बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के बाद एकांतवास नहीं किया, अपितु मानव कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने संदेशों को जनता तक पहुंचाने का संकल्प किया। सर्वप्रथम उन्होंने अपने पांच साथियों को उपदेश दिया, जिसे बौद्ध धर्म एवं दर्शन में धर्म-चक्र-प्रवर्तन कहा जाता है। यही से बौद्ध धर्म का प्रारंभ हुआ। बुद्ध की मृत्यु 483 ई. पू. में कुशीनगर में हुई, जिसे महापरिनिर्वाण कहा गया।

□ बौद्ध दर्शन के सम्प्रदाय

बुद्ध की मृत्यु के बाद बौद्ध धर्मावलम्बियों में विभिन्न विषयों पर मतभेद हो गया, परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म दो सम्प्रदायों में विभक्त है – हीनयान एवं महायान। हीनयान रूढ़ीवादी है, जबकि महायान प्रगतिशील है। हीनयानी बुद्ध को एक मानव के रूप में मानते हैं (जैसा कि बुद्ध अपने को कहते भी थे।), किन्तु महायानी लोक भावना के अनुरूप बुद्ध को अवतार के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं तथा साथ ही बुद्ध-कृपा को निर्माण प्राप्ति में सहायक बताते हैं। इसके अलावा हीनयानियों ने बुद्ध के उपदेशों का संकलन पाली भाषा में ही किया है, किन्तु महायानियों ने आगे चलकर अपने ग्रंथों की रचना संस्कृत में की है।

□ बौद्ध साहित्य

गौतम बुद्ध ने स्वयं कोई दार्शनिक ग्रंथ नहीं लिखा था, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने बुद्ध के उपदेशों को ग्रंथ के रूप में संकलित किया था, जो 'त्रिपिटक' के नाम से प्रसिद्ध है। त्रिपिटक का अर्थ है- नैतिक नियमों की तीन पिटारियां। ये हैं विनय पिटक, सुत्त पिटक एवं अभिधम्म पिटक। सुत्त पिटक में बुद्ध के उपदेशों एवं वार्तालापों का विवेचन है। यह बुद्ध के उपदेशों का मूल संग्रह है। विनय पिटक में संघ के आचार-विचारों का संकलन है। अभिधम्म पिटक बुद्ध के उपदेशों पर आधारित दार्शनिक नियमों का संग्रह है। इनके अलावा 'मिलिन्दपहो' बौद्ध धर्म का दूसरा प्रमाणिक ग्रंथ है, जिससे बौद्ध दर्शन के प्रारंभिक विचारों की जानकारी मिलती है।

□ बौद्ध दर्शन में अव्याकृतानि (अव्याकृत) की अवधारणा

तत्त्वमीमांसीय समस्याओं पर बुद्ध का मौन धारण करना। जिस समय बुद्ध का पदार्पण हुआ, उस समय मानव तत्त्वमीमांसीय समस्याओं को सुलझाने में डूबा हुआ था। प्रत्येक व्यक्ति आत्मा, जगत एवं ईश्वर विषयों के चिन्तन में डूबा हुआ था। बुद्ध से भी अक्सर

इन प्रश्नों पर उनके विचार मांगे जाते थे, किन्तु वे सदैव इन प्रश्नों पर मौन ही रहते थे। उन्होंने देखा की तत्वमीमांसा के जितने भी प्रश्न हैं, उनके उत्तर निश्चित रूप से तो नहीं दिए जा सकते हैं। अतः इन प्रश्नों में बुद्ध ने कोई दिलचस्पी नहीं ली। पाली साहित्य में इन प्रश्नों को अव्याकृतानि (Indeterminate Questions) कहा गया है।

बुद्ध के अनुसार संसार दुःखों से परिपूर्ण है। उन्होंने दुःख के संबंध में जितने प्रश्न हैं, उनके उत्तर जानने का प्रयास किया है। इसलिए उन्होंने अपने दर्शन में दुःख की समस्या एवं दुःख निरोध पर ही अधिक जोर दिया है। बुद्ध ने इस तथ्य को एक उपमा द्वारा सुन्दर ढंग से समझाया है – यदि कोई व्यक्ति बाण से आहत होकर किसी के पास पहुंचता है, तो उसका प्रथम कर्तव्य होना चाहिए बाण को हृदय से निकालकर उसकी सेवा करना। ऐसा न करने की बजाय इन प्रश्नों पर ही कि तीर कैसा है? किसने मारा? कितनी दूर से मारा? क्यों मारा? और तीर मारने वाले का रंग-रूप क्या था? – विचार करना मूर्खता ही कहा जाएगा। उसी प्रकार दुःख से पीड़ित मानव के लिए आत्मा, जगत, ईश्वर जैसे प्रश्नों में निमग्न रहना निरर्थक ही कहा जा सकता है।

चार आर्य सत्य Four Noble Truths

‘चार आर्य सत्य’ गौतम बुद्ध के व्यावहारिक दर्शन को व्यक्त करने वाला विचार है। बुद्ध के सारे उपदेश चार आर्य सत्यों में निहित है। आर्य का अर्थ है – ‘श्रेष्ठ’ अथवा ‘अलौकिक’। चूंकि बुद्ध द्वारा प्रतिपादित ये सत्य श्रेष्ठ अथवा दूसरे शब्दों में अलौकिक हैं, इसलिए इन्हें आर्य सत्य कहा गया है। इन चार आर्य सत्यों में दुःख क्या है, दुःख का कारण तथा निदान कैसे किया जा सकता है आदि व्यावहारिक प्रश्नों पर प्रमुखता से विचार किया गया है। चार आर्य सत्यों के ज्ञान एवं तदनुसार आचरण से न केवल इस जीवन में दुःख दूर होते हैं, वरन् जन्म-मरण का चक्र भी समाप्त हो जाता है।

स्वयं बुद्ध ने चार आर्य सत्यों की महत्ता को ‘मज्झिम निकाय’ में इस प्रकार स्पष्ट किया है – ‘चार आर्य सत्यों से अनासक्ति, वासनाओं का नाश, दुःखों का अन्त, मानसिक शांति, ज्ञान, प्रज्ञा तथा निर्वाण संभव हो सकते हैं।’ अतः इन चार आर्य सत्यों का प्रयोजन मानव के दुःखों का अन्त कर निर्वाण (मोक्ष) का मार्ग प्रशस्त करना है।

प्रथम आर्य सत्य ‘सर्वम् दुःखम्’

गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्यों में प्रथम आर्य सत्य है – सर्वम् दुःखम्, अर्थात् – सब ओर दुःख है। दुःख का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है। इसकी सत्यता में कोई भी व्यक्ति संदेह नहीं कर सकता है। बुद्ध ने इस निष्कर्ष को जीवन की विभिन्न अनुभूति के गहरे विश्लेषण पर ही सत्य माना है। उल्लेखनीय है कि गौतम बुद्ध ने जरा-मरण, शोक एवं रोग के दृश्यों को देखकर ही घर छोड़ा था।

गौतम बुद्ध के अनुसार संसार के सभी पदार्थ विनाशी एवं अनित्य होने के कारण दुःखदायी हैं। बुद्ध दुःखों की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि सर्वप्रथम तो स्वयं जन्म ही कष्टप्रद होता है, फिर जीवन में इच्छित वस्तु की प्राप्ति न होना, अप्रिय से संयोग होना, प्रिय से वियोग होना, अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष, भाग्य के उतार-चढ़ाव आदि सभी अत्यन्त दुःखदायी हैं। बुद्ध कहते हैं कि हमारी अनादिकाल से चली आने वाली इस महायात्रा में हमने जितने आंसू बहाए हैं, वह चार महासागरों के जल से भी अधिक हैं।

कुछ विचारकों का मानना है कि संसार में कुछ अनुभूतियां सुखात्मक होती हैं। अतः समस्त संसार को दुःखात्मक कहना बुद्ध की भूल है। परन्तु बुद्ध का मानना है कि विश्व की जिन अनुभूतियों को सुखप्रद कहते हैं, वे भी दुःखात्मक हैं। सर्वप्रथम सुख को प्राप्त करने के लिए कष्ट सहन करना पड़ता है। दूसरा, यदि इच्छित वस्तु न मिले, तो दुःख और यदि मिल जाए, तो उसके खो जाने का भय व चिन्ता बनी रहती है। अतः सुख भी एक प्रकार का दुःख ही है।

वस्तुतः बुद्ध ने सांसारिक सुख को दुःख इसलिए कहा है, क्योंकि वह क्षणिक व नाशवान है। जो वस्तु क्षणिक है, उसके नष्ट होने पर उसका अभाव महसूस होता है, जिसके फलस्वरूप दुःख का प्रादुर्भाव होता है। बुद्ध के प्रथम आर्य सत्य को चार्वाक के अतिरिक्त सभी भारतीय दार्शनिकों ने प्रायः सर्वसम्मति से स्वीकार किया है।

बुद्ध ने संसार के दुःखों पर अत्यधिक जोर दिया है। परिणामस्वरूप कुछ विचारकों ने बौद्ध दर्शन को निराशावादी (Pessimistic) माना है, परन्तु यह आक्षेप उचित नहीं है। यह सत्य है कि बुद्ध ने अपने दर्शन में दुःख की सत्ता एवं व्यापकता पर बहुत अधिक जोर दिया है, लेकिन उनका दर्शन यहीं समाप्त नहीं हो जाता है।

बौद्ध दर्शन में निराशावाद साधन के रूप में अपनाया गया है न कि साध्य के रूप में। यदि दुःखों का अस्तित्व स्वीकार करके ही बुद्ध बैठ जाते, तो निश्चय ही उन्हें निराशावादी कहा जाता। किन्तु उन्होंने प्रथम आर्य सत्य के अलावा और भी तीन आर्य सत्यों की स्थापना की है। उन्होंने दुःख के अस्तित्व, इसके कारण, इसके निरोध एवं इसके निरोध मार्ग का स्पष्ट चित्रण करके ही अपने को निराशावादी होने से बचा लिया है। डॉ. राधाकृष्णन ने भी कहा है कि 'निराशावाद बौद्ध दर्शन का आरंभ है, अंत नहीं।'

द्वितीय आर्य सत्य

'दुःख समुदयः'

गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्यों में द्वितीय आर्य सत्य है - दुःख समुदयः, अर्थात् - दुःख के कारण है। बुद्ध यहां कारण-कार्य सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पाद का प्रतिपादन करते हैं, जिसके अनुसार संसार में कोई भी घटना अकारण नहीं होती है। अतः दुःख उत्पन्न होता है, तो उसके उत्पन्न होने का कारण भी है।

गौतम बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद के आधार पर दुःखों के कारणों की खोज के क्रम में 12 कड़ियों वाली एक लम्बी शृंखला का प्रतिपादन किया है, जिसकी अंतिम कड़ी अविद्या है और यही समस्त दुःखों का मूल कारण है। चूंकि गौतम बुद्ध द्वारा इस कारण-कार्य शृंखला में 12 कड़ियां हैं, अतः इसे द्वादश निदान-चक्र भी कहते हैं। ये 12 कड़ियां निम्नलिखित हैं -

जरा-मरण (Sufferings)।

जाति (Rebirth)।

भव (Tendency to be Born)।

उपादन (Clinging)।

तृष्णा (Craving)।

वेदना (Sense Experience)।

स्पर्श (Sense Contact)।

षडायतन (Six Sense Organs)।

नाम-रूप (Body Mind Complex)।

विज्ञान (Consciousness)।

संस्कार (Impressions)।

अविद्या (Ignorance)।

तृतीय आर्य सत्य

'दुःख निरोधः'

गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्यों में तृतीय आर्य सत्य है - दुःख निरोधः, अर्थात् - दुःख का नाश हो सकता है। इस तृतीय आर्य सत्य दुःख निरोधः में बुद्ध आश्वस्त करते हैं कि दुःख का निरोध संभव है, अर्थात् - दुःख का अन्त हो सकता है। वस्तुतः यही तो सम्पूर्ण चिन्तन-मनन का उद्देश्य था। अतः जिस तरह 'दुःख है' एक आर्य सत्य है, उसी तरह 'दुःख का नाश संभव है' यह भी एक आर्य सत्य है।

बौद्ध दर्शन के अनुसार यदि दुःख के कारणों की परम्परा को समाप्त कर दिया जाए, तो दुःख अपने आप चलने वाली मशीन की तरह कार्यो का नाश भी स्वतः हो जाएगा। चूंकि दुःख का मूलभूत कारण अविद्या है, अतः अविद्या को दूर करके दुःखों का भी अन्त किया जा सकता है। इस दुःखहीन परम शांत मुक्ति की अवस्था को ही बौद्ध दर्शन में निर्वाण कहा गया है। यहां उल्लेखनीय है कि जिसे अन्य भारतीय दर्शन में मोक्ष कहा गया है, उसे ही बौद्ध दर्शन में निर्वाण की संज्ञा से विभूषित किया गया है।

चतुर्थ आर्य सत्य

'दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद्'

गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्यों में चतुर्थ आर्य सत्य है - दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद्, अर्थात् - दुःख निरोध का मार्ग। तृतीय आर्य सत्य में बुद्ध ने बतलाया कि दुःखों का निरोध संभव है। किन्तु प्रश्न उठता है कि दुःखों का निरोध किस प्रकार संभव है? इसके लिए बुद्ध ने चतुर्थ आर्य सत्य में एक व्यावहारिक मार्ग की चर्चा की है, जिस पर चलकर हम दुःखों से छुटकारा पा सकते हैं। बुद्ध ने भी इसी मार्ग पर चलकर निर्वाण प्राप्त किया था।

यह नैतिक व आध्यात्मिक साधना का मार्ग है, जिसे **मध्यमा प्रतिपद्** या मध्यम मार्ग भी कहते हैं। यह अत्यधिक भोग-विलास एवं शरीर को अत्यन्त क्षीण करने वाली तपस्या के मध्य का मार्ग है। इस मध्यमा प्रतिपद् के 8 सोपान हैं, इसलिए इसे **अष्टांगिक मार्ग** भी कहते हैं। यह साधना का वह मार्ग है, जो मनुष्य को निर्वाण के लक्ष्य तक पहुंचाता है। इसके 8 सोपान निम्नलिखित हैं -

- 1) **सम्यक् दृष्टि (Right View)** - दुःखों का मूल कारण अविद्या या मिथ्या दृष्टि है। अतः इस मिथ्या दृष्टि का परित्याग करके वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को समझना तथा चार आर्य सत्यों का ज्ञान रखना सम्यक् दृष्टि है।
- 2) **सम्यक् संकल्प (Right Resolve)** - आर्य सत्य के ज्ञान के अनुरूप आचरण करने का दृढ़ निश्चय सम्यक् संकल्प है।
- 3) **सम्यक् वाक् (Right Speech)** - सम्यक् संकल्प के अनुरूप वाणी का नियंत्रण सम्यक् वाक् है। इसमें मिथ्यावादिता, निन्दा, दुर्वचन और वाचलता का परित्याग कर सत्य एवं प्रिय वचनों का प्रयोग अपेक्षित है।
- 4) **सम्यक् कर्म (Right Action)** - सम्यक् कर्म में साधक को उचित कर्म करने चाहिए। उचित कर्म के अन्तर्गत अहिंसा, अस्तेय और इन्द्रिय संयम आते हैं।
- 5) **सम्यक् आजीव (Right Earning)** - ईमानदारीपूर्वक जीविकोपार्जन करना सम्यक् आजीव है। यह इसलिए आवश्यक है, क्योंकि गलत तरीकों से जीविकोपार्जन करने से मनुष्य में बुरी प्रवृत्तियां आती हैं।
- 6) **सम्यक् व्यायाम (Right Efforts)** - बुरे विचारों को मन से बाहर करना व अच्छे विचारों को लाना ही सम्यक् व्यायाम है।
- 7) **सम्यक् स्मृति (Right Memory)** - वास्तविक ज्ञान के प्रति निरन्तर जागरूक बने रहना सम्यक् स्मृति है। इसमें शरीर, मन, चित्त आदि की वास्तविकता का सतत स्मरण शामिल है। निर्वाण की कामना रखने वाले व्यक्ति को शरीर को शरीर, मन को मन, संवेदना को संवेदना समझना अत्यावश्यक है। तात्पर्य है कि ये क्षणिक एवं दुःखदायी हैं।
- 8) **सम्यक् समाधि (Right Concentration)** - चित्त की एकाग्रता ही सम्यक् समाधि है। यह अंतिम एवं महत्वपूर्ण सोपान है, क्योंकि यह हमें निर्वाण के पूर्ण करीब ले जाता है। प्रारंभ के सात सोपान तो अशुभ चित्तवृत्तियों का निरोध करके इस अंतिम सोपान के योग्य बनाते हैं। इसमें साधक का चित्त पूर्ण शांत हो जाता है। यह पूर्ण शांति की अवस्था ही पूर्ण दुःख निरोध की, अर्थात् निर्वाण की अवस्था है, जो कि जीवन का चरम लक्ष्य है।

□ बौद्ध धर्म के प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्त

- | | | |
|---------------------|---|------------|
| 1) प्रतीत्यसमुत्पाद | 2) अनात्मवाद। | 3) कर्मवाद |
| 4) क्षणिकवाद। | 5) मध्यमा प्रतिपद् (मध्य मार्गी सिद्धान्त)। | |

प्रतीत्यसमुत्पाद

Theory of Dependent Origination

बुद्ध को बुद्ध बनने से पूर्व वृद्धावस्था, रोग एवं मृत्यु के कारणों से मानव को होने वाले दुःख की गहरी अनुभूति हुई थी। तत्पश्चात् बुद्ध ने कठोर तपस्या कर दुःख के कारणों की खोज की, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने चार आर्य सत्य में किया है। इसमें से पहला आर्य सत्य था सर्वम् दुःखम्, अर्थात् - सब कुछ दुःख है। किन्तु बुद्ध केवल दुःख का दर्शन कराकर मौन नहीं हो गए, उन्होंने दुःख के कारणों की भी खोज की। दुःख के कारण ही बौद्ध दर्शन में द्वितीय आर्य दुःख समुदयः के नाम से प्रसिद्ध है। इसी संदर्भ में बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है।

वस्तुतः प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त बौद्ध दर्शन का कारण-कार्य सिद्धान्त है। बौद्ध दर्शन के अनुसार प्रत्येक घटना का कोई कारण अवश्य होता है, चाहे वह भौतिक हो या अभौतिक। कोई भी घटना बिना कारण घटित नहीं होती है। अतः बुद्ध इस नियम के द्वारा दुःख के कारणों की खोज करने का प्रयास करते हैं। दुःख भी एक घटना या कार्य है, अतः इसका भी कोई कारण अवश्य होना चाहिए।

□ द्वादश निदान (Twelve Links)

प्रतीत्यसमुत्पाद को स्वीकार करने पर दुःख का भी कारण ढूंढना आवश्यक हो जाता है। बौद्ध दर्शन में दुःख के कारण में 12 कड़ियों को माना गया है, इसलिए इसे द्वादश निदान कहते हैं। यह 12 कड़ियां निम्नलिखित हैं -

- 1) **जरा-मरण** - बौद्ध दर्शन में दुःख को जरा-मरण कहा गया है। जरा का अर्थ है - वृद्धावस्था और मरण का अर्थ है - मृत्यु। यहां जरा-मरण संसार के समस्त दुःख जैसे - रोग, निराशा, मृत्यु का भय इत्यादि का प्रतीक है।
- 2) **जाति** - इस जरा-मरण का कारण जाति, अर्थात् - जन्म लेना है। यदि मानव जन्म ही न ले, तो उसे किसी सांसारिक दुःख का सामना नहीं करना पड़ता है।
- 3) **भव** - जाति का कारण भव है, जिसका अर्थ है - जन्म ग्रहण करने की इच्छा। यदि यह प्रवृत्ति मनुष्य में न हो, तो उसका जन्म ही न हो।
- 4) **उपादान** - भव का कारण उपादान है, जिसका अर्थ है - जगत की वस्तुओं के प्रति राग एवं मोह। इस प्रकार बुद्ध हमारे जन्म ग्रहण करने की प्रवृत्तियों का कारण वस्तुओं के प्रति राग एवं मोह (उपादान) को बताते हैं।
- 5) **तृष्णा** - उपादान का कारण तृष्णा है। वस्तुतः तृष्णा ही हमारे सभी सांसारिक दुःखों का मूल कारण है। तृष्णा तीन प्रकार की होती है - काम तृष्णा (इंद्रिय सुख की इच्छा), भव तृष्णा (जीवित रहने की इच्छा) एवं विभव तृष्णा (धन-वैभव की इच्छा)।
- 6) **वेदना** - तृष्णा का कारण वेदना है। पूर्व इन्द्रियानुभूति को वेदना कहा जाता है। इंद्रियों के द्वारा मानव को सुखात्मक अनुभूति होती है, जो उसकी तृष्णाओं को जीवित रखती हैं।
- 7) **स्पर्श** - वेदना का कारण स्पर्श है, जिसका अर्थ है इंद्रियों का विषयों से संयोग। यदि इंद्रियों का विषयों के साथ संपर्क नहीं हो, तो तब इन्द्रियानुभूति, अर्थात् - वेदना का उदय नहीं होगा।
- 8) **षडायतन** - स्पर्श का कारण षडायतन है। पांच ज्ञानेन्द्रियों एवं मन के संकलन को षडायतन कहा जाता है। यदि इन्द्रियां ही नहीं होती, तो स्पर्श कैसे होता?
- 9) **नामरूप** - षडायतन का कारण नामरूप है। मन व शरीर के समूह को नामरूप कहा जाता है। यदि नामरूप का अस्तित्व नहीं रहता, तब इन छह इंद्रियों का प्रादुर्भाव नहीं होता।
- 10) **विज्ञान** - नामरूप का कारण विज्ञान है, अर्थात् चेतना। जब नवजात शिशु मां के गर्भ में रहता है, तब विज्ञान के कारण ही शिशु का शरीर एवं मन विकसित होता है।
- 11) **संस्कार** - विज्ञान का कारण संस्कार है। ये संस्कार पूर्व जन्मों के कर्म के फलस्वरूप बनते हैं। ये ही भ्रूण अवस्था में मानव में चेतना उत्पन्न करते हैं।
- 12) **अविद्या** - संस्कार का कारण बुद्ध अविद्या को बताते हैं, जिसका अर्थ है - ज्ञान का अभाव। अनित्य को नित्य समझना, असत्य को सत्य समझना, अनात्म को आत्म समझना ही अविद्या है। वस्तुतः अविद्या के कारण ही हम ऐसे कर्म करते हैं, जिनके फल संस्कार के रूप में पुनर्जन्म का कारण बनते हैं। अविद्या ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। यहां उल्लेखनीय है कि अविद्या को दुःखों का मूल कारण प्रायः सभी भारतीय दार्शनिकों ने स्वीकार किया है। अविद्या मूल कारण इसलिए है, क्योंकि कारण-कार्य की शृंखला अविद्या पर आकर रूक जाती है। यहां प्रश्न उठता है कि अविद्या का कारण क्या है? परन्तु यहां पर अविद्या को अनादि मान लिया गया है, किन्तु यह अनन्त नहीं है, इसका नाश संभव है। वस्तुतः अविद्या के कारण का प्रश्न, एक कठिन दार्शनिक प्रश्न है, जिस पर अन्य सभी भारतीय दार्शनिक भी मौन रहे हैं।

इस तरह ये 12 कड़ियां, अर्थात् - द्वादश निदान मनुष्य को जन्म-मरण के चक्कर में निरन्तर घुमाते रहते हैं, इसलिए इसे **भव चक्र/संसार चक्र/जन्म-मरण चक्र/धर्म चक्र** भी कहा जाता है। प्रतीत्यसमुत्पाद के द्वादश निदान का संबंध भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों से है। अविद्या और संसार का संबंध अतीत जीवन से, जरा-मरण व जाति का संबंध भविष्य जीवन से और शेष का संबंध वर्तमान जीवन से है। अतीत जीवन वर्तमान जीवन का कारण है और भविष्य जीवन वर्तमान जीवन का कार्य। स्पष्ट हैं कि प्रतीत्यसमुत्पाद के माध्यम से कर्मवाद की स्थापना होती है।

क्षणिकवाद Momentariness or Theory of Change

क्षणिकवाद बौद्ध दर्शन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, जो प्रतीत्यसमुत्पाद की तार्किक परिणति है। इस सिद्धान्त का विकास बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा ने किया है। प्रतीत्यसमुत्पाद सापेक्ष कारण-कार्य सिद्धान्त है, जिसके अनुसार प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई कारण है। कारण के नष्ट हो जाने पर कार्य का भी नाश हो जाता है। संसार की सभी वस्तुएं उत्पत्ति एवं विनाश के अधीन होने के कारण स्वभाव से अनित्य है। अतः विश्व की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील एवं क्षणिक है, चाहे वह जड़ हो या चेतन। इसे गौतम बुद्ध ने अनित्यवाद कहा था।

अनित्यवाद, शाश्वतवाद (Eternalism) एवं उच्छेदवाद (Nihilism) के मध्य का मार्ग अपनाता है। इसे ही बुद्ध ने मध्यम मार्ग (मध्य मार्ग) कहते हैं। शाश्वतवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु सत् है और उच्छेदवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु असत् है। दोनों ही सिद्धान्त एकांगी एवं अपूर्ण हैं। इन दोनों मतों को छोड़कर बुद्ध ने मध्यम मार्ग (अनित्यवाद) दिया है। इसके अनुसार कोई भी वस्तु न तो पूर्णतः नित्य है और न ही पूर्णतः नश्वर। प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। इस प्रकार अनित्यवाद सत् एवं असत् के मध्य का मार्ग अपनाता है। गौतम बुद्ध के अनुयायियों ने कालान्तर में अनित्यवाद के सिद्धान्त को विकसित कर क्षणिकवाद में परिवर्तित कर दिया।

क्षणिकवाद का अर्थ है किसी वस्तु का उसकी उत्पत्ति के तुरंत बाद विनाश। वह वस्तु जो अपनी उत्पत्ति के ठीक बाद नष्ट हो जाती है, क्षणिक कहलाती है। यह सिद्धान्त अनित्यवाद से भी आगे है, जिसके अनुसार विश्व की प्रत्येक वस्तु अनित्य ही नहीं, बल्कि क्षणभंगुर भी है, अर्थात् - उसका अस्तित्व क्षणभर के लिए ही रहता है। संसार की प्रत्येक वस्तु चाहे वह भौतिक हो या चेतन, उसमें प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है। किन्हीं दो क्षणों में कोई भी वस्तु वही नहीं रहती, हर क्षण से एक वस्तु से दूसरी वस्तु उत्पन्न हो रही है। वस्तुतः यहां सत्ता का अर्थ ही क्षणिकता है।

यहां पर प्रश्न उठता है कि यदि परिवर्तन ही सत्य हैं, तो हमें जगत की वस्तुओं में स्थायित्व का बोध क्यों होता है? हमें प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक क्षण परिवर्तन होते दिखाई क्यों नहीं देते हैं? यहां बौद्ध दार्शनिक कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक क्षण परिवर्तन तो हो रहा है, परन्तु भ्रमवश हम इस परिवर्तन को देख नहीं पाते हैं। वस्तुतः हमें प्रवाह में स्थिरता का आभास होता है।

इसे एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है - दीप की शिखा (लौ) सामान्य रूप से देखने पर यद्यपि स्थिर दिखती है, परन्तु उसे ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि उसमें लगातार लौ उत्पन्न हो रही है और नष्ट हो रही है। प्रत्येक लौ दूसरी लौ की उत्पत्ति का कारण बनकर नष्ट हो रही है। यह क्रम इतनी तेजी से आगे बढ़ता है कि हमें सामान्यतः एक ही लौ ही स्थिर दिखाई देती है। एक अन्य उदाहरण में बौद्ध दार्शनिक कहते हैं कि जिस तरह नदी का जल प्रतिक्षण प्रवाहमान रहता है, उसी तरह यह संसार भी प्रतिक्षण प्रवाहमान है। हम भ्रमवश उसे स्थायी समझते हैं।

क्षणिकता का यह बौद्ध सिद्धान्त ग्रीक दार्शनिक हेराक्लाइट्स और समकालीन दर्शन में हेनरी बर्गसा व ह्याइटहेड के दर्शन में भी देखा जा सकता है। हेराक्लाइट्स का इस संबंध में प्रसिद्ध वाक्य है कि आप एक ही नदी में दो बार नहीं नहा सकते हैं, क्योंकि 'नदी के जिस जल में आपने पैर रखा वह तो तुरंत आगे बढ़ गया'। बर्गसा व ह्याइटहेड का भी मानना है कि हम जिस वस्तु को जिस क्षण देखते हैं, वह उसी समय बदल जाती है।

अनात्मवाद/नैरात्मवाद No-Soul Theory

भारतीय दर्शन में प्रायः सभी दार्शनिक नित्य, अजर-अमर के रूप में आत्मा की सत्ता को मानते हैं, किन्तु चार्वाक एवं बौद्ध ऐसे दर्शन हैं, जो नित्य आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं। अनात्मवाद बौद्धों का आत्मा संबंधित सिद्धान्त है, जो प्रतीत्यसमुत्पाद की तार्किक परिणति है। अनात्मवाद में नित्य आत्मा का निषेध किया गया है। इसे नैरात्मवाद भी कहा जाता है।

प्रतीत्यसमुत्पाद से अनित्यवाद की उत्पत्ति होती है, जिसकी तार्किक परिणति क्षणिकवाद में होती है। क्षणिकवाद के अनुसार केवल परिवर्तन की ही सत्ता है। संसार की समस्त वस्तुएं क्षणिक हैं। कोई भी वस्तु किन्हीं दो क्षणों में एक-सी नहीं रहती है। अतः बौद्ध दार्शनिकों ने किसी भी नित्य तत्व की सत्ता को स्वीकार नहीं किया है। जब इसी सिद्धान्त के आधार पर बौद्ध दार्शनिक आत्म तत्व का विश्लेषण करते हैं, तो अनात्मवाद का प्रतिपादन होता है।

अनात्मवाद भी प्रतीत्यसमुत्पाद की तरह मध्यम मार्ग (मध्यम प्रतिप्रदा) को मानते हैं। यह उच्छेदवाद तथा शाश्वतवाद को अस्वीकार करता है। उच्छेदवाद के अनुसार आत्मा की सत्ता को नहीं मानता है, जबकि शाश्वतवाद आत्मा को नित्य, अजर-अमर सत्ता मानता है, जिसका अस्तित्व मृत्यु के बाद भी बना रहता है। बौद्ध दार्शनिक इन दोनों मत को अस्वीकार कर मध्यम मार्ग अपनाते हैं। इनके अनुसार **आत्मा की सत्ता तो है, किन्तु वह नित्य नहीं है, अपितु परिवर्तनशील सत्ता है।** यहां उल्लेखनीय है कि बौद्ध आत्मा की सत्ता का निषेध नहीं करते हैं, बल्कि नित्य आत्मा का निषेध करते हैं।

बुद्ध आत्मा की व्याख्या चेतना के निरन्तर प्रवाह के रूप में करते हैं। जिसे हम नित्य आत्मा कहते हैं, वस्तुतः वह क्षणिक विचारों या क्षणिक विज्ञानों का प्रवाहमात्र (Stream of Consciousness) है। जिस प्रकार नदी में जल की बूंदें निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं, फिर भी उसमें एकमयता बनी रहती है, उसी प्रकार आत्मा के विज्ञान के निरन्तर बदलते रहने पर भी उसमें एकमयता रहती है। बुद्ध आत्म तत्व का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि जब भी हम अपने अन्दर की ओर देखते हैं, तो सर्दी या गर्मी, रोशनी या छाया, प्रेम या घृणा, सुख या दुःख का ही अनुभव होता है। बुद्ध ने शाश्वत आत्मा को उसी प्रकार हास्यास्पद कहा है, जिस प्रकार कल्पित सुन्दर नारी के प्रति अनुराग रखना हास्यास्पद है।

□ आत्मा का स्वरूप

बौद्ध दार्शनिक नागसेन **मिलिन्दपह्लो** नामक ग्रंथ में आत्मा स्वरूप की व्याख्या करते हैं। नागसेन के अनुसार जिस प्रकार रथ धुरी, चक्र, नेमी, पताका आदि का समूह है, उसी प्रकार आत्मा **पंचस्कंधों का समूह** है। ये पांच स्कंध **रूप (Matter), वेदना (Feeling), संज्ञा (Perception), संस्कार (Disposition) एवं विज्ञान (Consciousness)** हैं, जो आत्मा के घटक हैं। रूप स्कंध आत्मा का **भौतिक घटक** है और वेदना स्कंध, संज्ञा स्कंध, संस्कार स्कंध एवं विज्ञान स्कंध उसके **मानसिक घटक** हैं। अतः आत्मा भौतिक एवं मानसिक तत्वों की एक समष्टि का नाम है। दूसरे शब्दों में इन पंचस्कंधों के संघात को ही आत्मा कहते हैं। जब तक इन स्कंधों का संघात कायम रहता है, तब तक आत्मा का अस्तित्व कायम रहता है। इन संघात के नष्ट होते ही आत्मतत्व भी विलुप्त हो जाता है।

□ कर्म, सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म की व्याख्या

बौद्ध दर्शन में यद्यपि आत्मा को अनित्य मानते हुए भी **कर्म-सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म** में विश्वास प्रकट किया गया है। कर्म-सिद्धान्त और पुनर्जन्म की सार्थक व्याख्या नित्य आत्मा को मानकर ही की जा सकती है। यदि आत्मा अनित्य है, तो कर्म फल की प्राप्ति कौन करेगा? और यदि आत्मा स्वयं अनित्य है, तो उसका पुनर्जन्म कैसे संभव है? इसके उत्तर में बौद्ध दार्शनिक कहते हैं कि पुनर्जन्म का अर्थ आत्मा का दूसरे शरीर में प्रवेश करना नहीं है, बल्कि विज्ञान के अविच्छिन्न प्रवाह की निरन्तरता है। मृत्यु का अर्थ - एक विज्ञान प्रवाह का समाप्त होना और पुनर्जन्म का अर्थ - इस विज्ञान प्रवाह का नए शरीर में निरन्तरता कायम रखना है। जिस तरह एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जाता है, उसी तरह हमारे विज्ञान और हमारे कर्म फल एक जीवन से दूसरे जीवन में पहुंचते हैं।

सिख धर्म के प्रवर्तक, एक महान संत, समाज सुधारक, मार्गदर्शक एवं ईश्वर स्वरूप गुरूनानक का जन्म 1469 ई. में तलवंडी (आधुनिक ननकाना साहिब, पाकिस्तान) के एक मेहता खत्री (प्राचीन क्षत्रीय) नामक परिवार में हुआ था। इनके माता का नाम तृप्ता देवी तथा पिता का नाम मेहता कालूचन्द था। नानक बचपन से ही सांसारिक मोह से मुक्त थे और बहुत ही उदार स्वभाव के थे।

गुरूनानक जब लगभग 5 वर्ष के हुए, तब पिता ने एक मौलवी के पास पढ़ने के लिए भेजा। मौलवी उनके चेहरे का नूर देखकर हैरान रह गया। जब उसने गुरूनानक की पट्टी पर ॐ लिखा, तब उसी क्षण उन्होंने 'एक ॐ' लिखकर संदेश दे दिया कि 'ईश्वर एक है और हम सब उस एक पिता की सन्तान हैं।' मौलवी उनके पिता कालूजी के पास जा कर बोला कि उनका पुत्र तो एक इलाही नूर है, उसको वह क्या पढ़ाएगा, वह तो स्वयं समस्त संसार को ज्ञान देगा। कालान्तर में यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। थोड़ा बड़े होने पर जब पिता ने गुरूनानक को धनार्जन के लिए प्रोत्साहित किया, तो उनका मन नहीं लगा। फिर लगभग 16 वर्ष की आयु में उनका विवाह सुलक्षणी से हुआ, जिससे दो पुत्र (श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द्र) हुए।

गुरूनानक अपना अधिकांश समय हिन्दू-मुस्लिम संतों के साथ ही गुजारते थे। उनके पिता ने नानक का ध्यान सांसारिक वस्तुओं में लगाने की बहुत कोशिश की। कुछ समय पश्चात् नानक को दौलत खां लोदी के यहां नौकरी मिल गई, लेकिन संसार व परिवार का मोह उन्हें बांध न सका। यहीं उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त हुआ, तो वे बोले कि "न कोई हिन्दू न कोई मुसलमान"। यही शब्द गुरूनानक के सिद्धान्तों का सार है। नानक ने कबीर का मार्ग अपनाया। ये चारों ओर घूमकर उपदेश करने लगे। 1521 तक इन्होंने तीन यात्राचक्र पूरे किए, जिनमें भारत, श्रीलंका, मक्का-मदीना, अफगानिस्तान, फारस और अरब के मुख्य स्थानों का भ्रमण किया। इन यात्राओं को पंजाबी में उदासियां कहा जाता है। इन यात्रा में उनके साथ दो शिष्य बाला एवं मरदाना भी थे, मरदाना मुस्लिम था। इस दौरान वह विभिन्न साधुओं और फकीरों के सम्पर्क में भी आए, जिससे उन पर हिन्दू व मुस्लिम दोनों धर्मों का प्रभाव था। वह दोनों ही धर्मों की समानता पर विश्वास करते थे। गुरूनानक ने समाज को संदेश दिया कि जाति-पाति और सम्प्रदाय से अधिक महत्वपूर्ण होता है 'मानव का मानव से प्रेम'।

जीवन के अंतिम दिनों में गुरूनानक की ख्याति बहुत बढ़ गई और इनके विचारों में भी परिवर्तन हुआ। स्वयं विरक्त होकर ये अपने परिवार के साथ रहने लगे और दोन-पुण्य, भण्डारा (लंगर) आदि करने लगे। उन्होंने करतारपुर नामक एक नगर बसाया, जो पाकिस्तान में है। इसी स्थान पर 22 सितम्बर, 1539 ई. में इनकी मृत्यु हुई। मृत्यु से पहले गुरूनानक ने अपने शिष्य लहना को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया, जो बाद में गुरू अंगद देव के नाम से विख्यात हुए। गुरू अंगद गुरूनानक के उपदेशों का प्रचार किया और स्थानीय भाषा में उनके उपदेशों का संकलन किया। उन्होंने लंगर की व्यवस्था को स्थायी रूप प्रदान किया। इससे अन्तरजातीय खान-पान को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, जाति बंधन शिथिल हुए और सिखों में सामाजिक समानता की भावना का विकास हुआ।

□ गुरूनानक - एक दार्शनिक व धर्म-समाज सुधारक के रूप में

गुरूनानक एक दार्शनिक, कवि, धर्म-समाज सुधारक थे। उनके अन्दर तत्कालीन समय की सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति तीव्र असंतोष था। उनका कहना था कि "यह युग एक कटार है और राजा कसाई, न्याय ने पंख लगा लिए हैं और भाग गया है। मैं दुःख से रोता हूँ कि किस प्रकार उद्धार होगा?" उन्होंने कहा था कि "आज-कल व्यक्ति केवल शक्ल व नाम से इंसान हैं अन्यथा कार्यों से वे कुत्ते हैं।" इन विचारों को लेकर उन्होंने धार्मिक समानता, अर्थात् - **एकेश्वरवाद पर बल** दिया। एकेश्वरवाद एक ईश्वर की अवधारणा पर विश्वास करता है। गुरूनानक के अनुसार परमात्मा एक, अनंत, सर्वशक्तिमान, सत्य, निर्भय, निर्गुण, निराकार, स्वयं-भू है। परमात्मा के लिए उन्होंने हरि, राम, अल्लाह और खुदा के नामों का भी प्रयोग किया। गुरूनानक का विश्वास ईश्वर की एकता में था और इस आधार पर वे हिन्दू और मुसलमानों को अपने धार्मिक मतभेदों को भुलाने के लिए कहते थे।

नानक अवतारवाद में विश्वास नहीं करते थे। उनके अनुसार ईश्वर का मनुष्य के रूप में जन्म लेने की कल्पना करना उसे जन्म और मृत्यु के चक्र में बांधना है, जबकि ईश्वर इससे मुक्त होता है। मनुष्य का परम लक्ष्य निर्वाण या मोक्ष की प्राप्ति है और मोक्ष का अर्थ है आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना, जो आध्यात्मिक उन्नति (आत्म साक्षात्कार) द्वारा ही संभव है। आध्यात्मिक उन्नति द्वारा आत्मा जन्म व मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाती है। स्पष्ट है कि नानक हिन्दू दर्शन के जीव के आवागमन सिद्धान्त पर विश्वास करते थे।

गुरूनानक संसार को माया या छलावा नहीं मानते थे (जैसा कि वेदान्त दार्शनिक शंकराचार्य मानते हैं)। उनके अनुसार **संसार का अस्तित्व** है। यद्यपि वे उसे अस्थायी एवं नष्ट हो जाने वाला मानते थे। नानक ने व्यक्ति को घर-परिवार छोड़कर साधु या सन्यासी बनने की सलाह नहीं दी। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर होना चाहिए। व्यक्ति को भीख मांगने या किसी अन्य से भोजन मांगने के स्थान पर अपनी ईमानदारी व परिश्रम से धन कमाकर स्वयं एवं परिवार का पालन करना चाहिए। वह इसे एक सामाजिक उत्तरदायित्व मानते थे और आत्म उन्नति का मार्ग भी।

नानक **मूर्ति पूजा के विरोधी** थे और किसी भी धार्मिक ग्रंथ में उनकी आस्था नहीं थी। उनके अनुसार कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, धर्मग्रंथों अथवा पैगम्बरों में अन्धविश्वास मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में बांधाएं हैं। उनके अनुसार धार्मिक कर्मकाण्ड, जैसे - व्रत, पूजा, तीर्थयात्रा, तिलक लगाना आदि व्यक्ति को धर्म के सत्य मार्ग से भटकाते हैं। इनके स्थान पर व्यक्ति को दया, क्षमा, सत्य आदि सद्गुणों का पालन करना चाहिए। ईश्वर भक्ति ही व्यक्ति को मोक्ष दिलाने में सहायक है।

नानक का **विश्वास हिन्दू धर्म के कर्म सिद्धान्त में** भी था। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को कर्म के अनुसार फल प्राप्त होता है। बुरे कर्म का परिणाम बुरा और अच्छे कर्म का परिणाम अच्छा होता है। व्यक्ति अपने कर्म के अनुसार ही जीवन प्राप्त करता है, परन्तु जीवन व मृत्यु से मुक्ति, अर्थात् - मोक्ष की प्राप्ति वह केवल ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त कर सकता है। इसी कारण वह ईश्वर की भक्ति में विश्वास करना सिखाते थे। नानक **गुरू और सत्संग को अत्यधिक महत्व** देते थे। उनके अनुसार व्यक्ति को एक सद्गुरू की भी आवश्यकता है, जो उसके मार्गदर्शन में सहायक होता है। यद्यपि वे ईश्वर को ही मनुष्य का वास्तविक गुरू मानते थे।

नानक ने हिन्दुओं की **जाति प्रथा का विरोध** किया है। उनका मानना है कि सभी मनुष्य तत्त्वतः समान हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार है। केवल जन्म के आधार पर व्यक्ति अलग-अलग जाति व धर्म का कहलाने लगता है, किन्तु मूल आधार पर तो वह मनुष्य ही है। इस प्रकार उन्होंने जाति प्रथा के विरोध के साथ-साथ सभी धर्मों के एकता पर बल दिया है। उनके दर्शन में **विश्वबंधुत्व** के तत्व दिखाई देते हैं।

कबीर की भाँति नानक ने भी गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भक्ति द्वारा ईश्वर की प्राप्ति पर बल दिया। इसीलिए उन्होंने स्त्रियों को भी सम्मानित स्थान प्रदान किया। स्त्री को उन्होंने पुरुष का साथी एवं सहयोगी बताया तथा उन्हें भी समान रूप से मोक्ष प्राप्ति का अधिकार दिया। गुरूनानक ने **नारी मुक्ति की दिशा में काफी प्रयत्न** किए और **सती-प्रथा का विरोध** किया।

नानक ने अपने उपदेश छोटी-छोटी कविताओं के रूप में दिए थे, जिन्हें सिखों के पांचवें गुरू अर्जुन ने आदि ग्रन्थ में संकलित किया। उसमें **जपजी** एक मुख्य कविता है, जिससे नानक के अध्यात्मिक विचारों का पता चलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नानक के विचार वेद, उपनिषद् व गीता जैसे हिन्दू धर्मों से ही लिए गए थे। कर्म सिद्धान्त, जीव के आवागमन का सिद्धान्त, निष्काम कर्म करना आदि हिन्दू धर्म के सिद्धान्त रहे हैं। परन्तु नानक ने हिन्दुओं के अवतारवाद, स्वर्ग-नरक के विचार, जाति प्रथा, छूआ-छूत, ऊँच-नीच, कर्मकाण्ड आदि का विरोध किया। नानक ने स्वयं अपना कोई पृथक धार्मिक सम्प्रदाय बनाने का भी विचार नहीं किया, उन्होंने तो केवल शिष्य बनाए थे, जो सिख कहलाने लगे। बाद में विभिन्न कारणों के फलस्वरूप सिख धर्म एक पृथक धार्मिक सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुआ।

कबीर Kabir

कबीर 15वीं सदी के धर्मप्रवर्तक, समाज सुधारक, उपदेशक, संत, भक्त, साधक और कवि थे। इन्होंने भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। कबीर के जाति तथा जन्म के बारे में कई तरह की किवदंतियां प्रचलित हैं। एक किवदंती के अनुसार कबीर रामानन्द स्वामी के आशीर्वाद से काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से 1440 ई. पैदा हुए थे, जिसको भूल से रामानंदजी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था, जिसने लोक-लज्जा के कारण उन्हें लहरतारा नामक नदी के किनारे फेंक दिया था। कहा जाता है कि अली और नीरू नामक निःसंतान जुलाहे ने यह बच्चा लहरतारा ताल पर पड़ा पाया, जिसे वह अपने घर ले आया और उसका पालन-पोषण किया तथा उसका नाम कबीर रखा। यह शब्द अरबी भाषा का है, जिसका अर्थ है – महान। इस प्रकार कबीर का प्रारंभिक जीवन मुस्लिम परिवार में व्यतीत हुआ, लेकिन वाराणसी के वातावरण में हिन्दू धर्म व दर्शन का भी प्रभाव उन पर पड़ा।

कबीर का बचपन बहुत-सी जड़ताओं एवं रूढ़ियों से जूझते हुए बीता। तत्कालीन समय में घोर सामाजिक व आर्थिक असमानता विद्यमान थी और कानून व धर्म की आड़ में रसूखों द्वारा गरीबों एवं निम्नजाति के लोगों का शोषण किया जाता था। अतः इस दौरान उनके अन्दर यह सामाजिक चेतना पैदा हुई कि सभी इंसान समान होते हैं, किन्तु समाज में धर्म व जाति के आधार पर भेदभाव विद्यमान था। वे इन सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध थे और इसे कैसे दूर किया जाए यही विचार करते रहते थे। इन सभी प्रश्नों के उत्तर के लिए कबीर अपने आध्यात्मिक गुरु की तलाश में अनेक हिन्दू एवं मुसलमान संतों के पास गए, किन्तु कोई भी उनकी तृष्णा को संतुष्ट नहीं कर सका।

एक बार किसी ने बताया कि संत रामानंदजी स्वामी ने सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ लड़ाई छेड़ रखी है। कबीर उनसे मिलने निकल पड़े, किन्तु उनके आश्रम पहुंचकर पता चला कि वे मुसलमानों से नहीं मिलते। कबीर ने हार नहीं मानी और पंचगंगा घाट पर रात के अंतिम पहर पर पहुंच गए और सीढी पर लेट गए। उन्हें पता था कि संत रामानंद प्रातः गंगा स्नान को आते हैं। प्रातः जब स्वामीजी जैसे ही स्नान के लिए सीढी उतर रहे थे, उनका पैर कबीर के सीने से टकरा गया। राम-राम कहकर स्वामीजी अपना पैर पीछे खींच लिए, तब कबीर ने खड़े होकर उन्हें प्रणाम किया। स्वामीजी ने पूछा आप कौन? कबीर ने उत्तर दिया – आपका शिष्य कबीर। स्वामीजी ने पुनः प्रश्न किया कि मैंने कब शिष्य बनाया? कबीर ने विनम्रता से उत्तर दिया कि अभी-अभी जब आपने ‘राम-राम’ कहा, मैंने उसे अपना गुरुमंत्र बना लिया। संत रामदासजी कबीर की विनम्रता से बहुत प्रभावित हुए और उन्हें अपना शिष्य बना लिया। कबीर को स्वामीजी ने सभी संस्कारों का बोध कराया और ज्ञान की गंगा में डुबकी लगवा दी।

उल्लेखनीय है कि कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु उन्होंने अपने मौलिक चिंतन से समाज को बहुत गहरे रूप में प्रभावित किया। कबीर जाति-पाति और ऊँच-नीच के बंधनो से परे फक्कड़, अलमस्त और क्रांतिदर्शी थे। साथ ही उन्होंने अपनी वाणी से तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक भेदभाव, ऊँच-नीच, जात-पात आदि पर करारा प्रहार किया। कबीर सांसारिक जिम्मेदारियों से कभी दूर नहीं हुए। उनकी पत्नी का नाम लोई था, पुत्र कमाल एवं पुत्री कमाली। वे पारिवारिक रिश्तों को भी भली भाँति निभाते थे। जीवनयापन हेतु उन्होंने सदैव पैतृक कार्य, अर्थात् – जुलाहे का कार्य किया।

कबीरदासजी का अवसान भी जन्म की तरह रहस्यवादी है। आजीवन काशी में रहने के बावजूद अन्त समय 1518 ई. में करीब मगहर चले गए, क्योंकि वे कुछ भ्रान्तियों को दूर करना चाहते थे। काशी के लिए कहा जाता था कि यहां पर मरने से स्वर्ग मिलता है और मगहर में मरने से नरक। कबीर की मृत्यु के पश्चात् हिन्दू अपने धर्म के अनुसार उनका अंतिम संस्कार करना चाहते थे और मुसलमान अपने धर्मानुसार। विवाद की स्थिति में एक अजीब घटना घटी जब उनके पार्थिव शरीर पर से चादर हट गई, तो वहां कुछ फूल पड़े थे, जिसे दोनों समुदायों ने बांट लिया।

कबीर ने अपने उपदेश दोहों अथवा छोटी-छोटी कविताओं के रूप में दिए हैं। कबीर की वाणी का संग्रह ‘बीजक’ के नाम से प्रसिद्ध है। इसके 3 भाग हैं – रमैनी, सबद और साखी। यह पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, पूरबी, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं की खिचड़ी है।

□ कबीर का दर्शन

कबीर के विचारों पर अनेक धर्म, सम्प्रदाय व सूफी-संतों आदि का प्रभाव पड़ा है। अतः कबीर की दार्शनिक विचारधारा अनेक विचारधाराओं की एक खिचड़ी-सी बन गई है। किन्तु उनके संदेशों एवं उपदेशों को ध्यान से समझा जाए, तो उसमें अद्वैतवाद एवं एकेश्वरवाद के तत्व दिखाई देते हैं। कबीर के दार्शनिक विचारों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है -

♦ ब्रह्म (ईश्वर)

कबीर निगुर्ण-निराकार ब्रह्म के उपासक थे तथा एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। उनकी मान्यता थी कि परमेश्वर एक ही है, उसे सिर्फ राम, रहीम, अल्ला, खुदा, गोविंद आदि अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। कबीर अवतारवाद, आश्रम व्यवस्था, कर्मकाण्ड, तीर्थयात्रा, व्रत, मूर्तिपूजा आदि भी विश्वास नहीं करते थे। कबीर ने इन आडम्बरो का विरोध किया है। कबीर ईश्वर तक पहुंचने के लिए मंदिर-मस्जिद की बजाय ईश्वर के प्रति भक्त के प्रेम को सर्वश्रेष्ठ माना है। साथ ही परमात्मा तक पहुंचने के लिए कबीर ने **गुरु की महत्ता** पर बल दिया है। कहीं-कहीं कबीर के दर्शन में **रहस्यवाद** के तत्व भी पाए जाते हैं। उनके अनुसार ब्रह्म निर्वचन का विषय न होकर, अनुभूति का विषय है। परमात्मा का अनुभव गुंगे के गुड के समान है, जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

♦ आत्मा

कबीर ने आत्मा को परमात्मा का ही अंश माना है। आत्मा व परमात्मा एक ही है, उनमें कोई तात्त्विक भेद नहीं है। हम केवल **अज्ञानतावश** (माया) इनमें भेद करते हैं और इन्हें अलग-अलग नामों से पुकारते हैं। चूंकि सभी मानव ब्रह्म या एक ईश्वर के अंश हैं, अतः सभी मानव आपस में भी समान हैं। उनमें भी कोई भेद नहीं है। इसी कारण वे सभी प्रकार के सामाजिक-धार्मिक विभेदों का खण्डन करते हैं।

♦ जगत

अद्वैत वेदान्त दार्शनिक शंकराचार्य ने ब्रह्म की एकमात्र सत्ता को स्वीकार करते हुए जगत को मिथ्या कहा है। किन्तु कबीर ने ब्रह्म के अस्तित्व के साथ-साथ जगत की सत्ता को भी स्वीकार किया है। यद्यपि उन्होंने व्यक्ति व समाज के आध्यात्मिक कल्याण हेतु जगत के प्रति आसक्ति के कम करने पर बल दिया है। कहीं-कहीं कबीर ने अपने उपदेशों में बुद्ध की तरह जगत को क्षणभंगुर माना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर के दर्शन पर अद्वैतवाद का प्रभाव दिखाई देता है। किन्तु कहीं-कहीं वे एक स्वतंत्र विचारक की तरह अपने दर्शन में तत्कालीन युग की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखते हैं। उन्होंने शंकराचार्य की तरह ब्रह्म को निगुर्ण एवं निराकार रूप में स्वीकार तो करते हैं, किन्तु ब्रह्म के साक्षात्कार के साधन के रूप में रामानुज की तरह भक्ति को स्वीकारते हैं। इसी प्रकार वे जीवन पर्यंत एक पारिवारिक संत बनकर रहे और गृह त्याग या वैराग्य में उनका विश्वास नहीं था। उनका मानना था कि जीवनयापन के लिए स्वयं के परिश्रम से धन कमाना आवश्यक है। उन्होंने कहा था कि “हे माधव! अपनी कंठी-माला ले लो, क्योंकि भूखे पेट में तुम्हारा भजन नहीं कर सकता।” परन्तु वे धन को एक सीमित मात्रा में ही आवश्यक मानते थे। इस प्रकार समाज की आर्थिक क्रिया की ओर भी कबीर ने ध्यान दिया। इसी कारण घर छोड़कर साधु बनना उन्हें स्वीकार नहीं था।

□ कबीर : धर्म-समाज सुधारक के रूप में

कबीर जैसे सन्त मध्यकाल की विषम व अंधकारमय समय में अपने ज्ञान का आलोक लेकर आए थे। इस समय धर्म व समाज में ब्राह्मणवाद, धार्मिक कट्टरता, धार्मिक व सामाजिक अन्धविश्वास, बाह्य आडम्बर, जातिवाद, छूआछूत आदि का बोलबाला था। इन सभी विषमताओं के प्रति कबीर के मन में बहुत आक्रोश था। यही कारण है कि उनके उपदेश एवं विचार क्रांतिकारी थे।

कबीर **हिन्दू-मुस्लिम समन्वय के पैगम्बर** थे। यद्यपि वे दोनों धर्मों की बुराइयों की निष्पक्ष आलोचना करते थे, किन्तु उनका दृष्टिकोण **समन्वयवादी** था। साथ ही कबीर का दृष्टिकोण **मानववादी** भी था। वह मानव को केन्द्र में रखकर समस्याओं का समाधान करने की सलाह देते थे, न कि पारलौकिक शक्तियों के विश्वास द्वारा। एक समाज सुधारक के रूप में कबीर ने उस समय की समाज में प्रचलित 2 बुराइयों सती प्रथा व बाल विवाह के विरुद्ध आवाज उठाई।

कबीर वर्ग संघर्ष के भी विरोधी थे। वे समाज में शोषक व शोषित के भेद के मिटाकर साम्य स्थापित करना चाहते थे। जाति प्रथा का विरोध करके मानव की गरिमा को प्रतिष्ठापित किया।

इस प्रकार कबीर ने अपने उपदेशों व विचारों से न केवल मध्यकाल में भटकती जनता का उपकार किया था, बल्कि कबीर वाणी आज के इस विषय व काम प्रभावी युग में भी उतनी ही प्रासंगिक व उपयोगी है जितनी कि तब थी। आज भी भौतिकतावाद के अन्धकार तथा विभिन्न धर्मों जातियों के भेद से हम कहां मुक्त हो सके हैं, ऐसे में कबीर के अमृत वचन आज भी मानव के लिए प्रकाश का मार्ग आलोकित कर रहे हैं।

□ कबीर के महत्वपूर्ण दोहे

“पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजों पहार।
था ते तो चाकी भली, जासे पीसी खाय संसार।।”
“नहाये धोये क्या भया, जो मन का मैल न जाय।
मीन सदा जल से रहे, धोये वास न जाय।।”
“कांकर पत्थर जोरि के मस्जिद लई चुनाय।
व चढ़ि मुल्ला बाग दे क्या बहरा भया खुदाय।।”
“सेष सइरी वाहिरा, क्या हज काबे जाय।
जिनके दिल स्यावति नहीं, तिनको कहां खुदाय।।”
“कबीरा ते नर अन्ध हैं गुरू को कहते और।
हरि रूठे गुरू ठौर है गुरू रूठे नहीं ठौर।।”
“गुरू गोविन्द दोऊ खड़े काके लगू पाय।
बलिहारी गुरू आपनो गोविन्द दियो बताय।।”

तुलसीदास
Tulsidas

तुलसीदास का जन्म 1532 ई. में उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के राजापुर नामक ग्राम के एक सरयूपारी ब्राह्मण घर में हुआ था। इनका पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। ऐसी किवदंती है कि तुलसीदास का जन्म बारह महीने गर्भ में रहने के बाद हुआ था, जिसकी वजह से वह काफी हृष्ट-पुष्ट थे। जन्म लेने के बाद उन्होंने जो पहला शब्द बोला वह राम था, अतः उनका घर का नाम रामबोला पड़ गया। जन्म देने के तुरन्त बाद मां की मृत्यु तथा पिता के उदासीनता होने के कारण उनका पालन-पोषण चुनिया नामक दासी ने किया। जब रामबोला साढ़े पांच वर्ष का हुआ, तो चुनिया भी नहीं रही। बचपन में इतनी परेशानियां और मुश्किलें झेलने के बाद भी तुलसीदास सदैव ईश्वर की भक्ति में लीन रहे। आगे चलकर रामबोला श्रीनरहर्यानन्दजी (नरहरि बाबा) के सम्पर्क में आए, जिन्होंने उनका विधिवत नाम तुलसीराम रखा।

21 वर्ष की आयु में तुलसीदास का विवाह रत्नावली से हुआ। चूंकि उनका गौना नहीं हुआ था, अतः कुछ समय के लिए वे काशी चले गए और वहां शेषसनातनजी के पास रहकर वेद-वेदांग का अध्ययन किया। इस बीच तुलसीदास यमुना नदी के उफान को पार करके रात को अपनी पत्नी से मिलने तो पहुंच गए, लेकिन लोक-लज्जा के भय से उनकी पत्नी ने उन्हें वापस जाने को कहा, तो वे उससे उसी समय अपने साथ घर चलने का आग्रह करने लगे। उनकी इस अप्रत्याशित जिद से खींझकर रत्नावली ने स्वरचित एक दोहे के माध्यम से जो शिक्षा उन्हें दी, उसने ही तुलसीराम को महान तुलसीदास बना दिया। रत्नावली ने दोहा कहा कि -

अस्थि चर्म मय देह यह, ता सों ऐसी प्रीति।

नेकु जो होती राम से, तो काहे भव-भीति।।

अर्थात् जितना प्रेम मेरे इस हाड-मांस के बने शरीर से कर रहे हो, उतना स्नेह यदि प्रभु राम से करते, तो तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति हो जाती। यह सुनते ही तुलसीदास की चेतना जागी और उसी समय से वह प्रभु राम की वंदना में जुट गए। इसके बाद तुलसीराम को तुलसीदास के नाम से पुकारा जाने लगा। काशी में कथा के दौरान उन्हें मनुष्य के वेश में प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमानजी का पता बतलाया। हनुमानजी से मिलकर तुलसीदास ने उनसे श्रीरघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की। हनुमानजी ने कहा - तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी के दर्शन होंगे। इस पर तुलसीदासजी चित्रकूट की ओर चल पड़े, जहां उन्हें अन्ततः प्रभु श्रीराम के दर्शन हुए।

कालान्तर में वे अयोध्या गए, जहां उनकी कवित्व शक्ति का प्रस्फुरण हुआ तथा वे काव्य रचना करने लगे। यहीं तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना शुरू की। इसके बाद तुलसीदास पुनः काशी चले आए। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम कृति 'विनय-पत्रिका' लिखी। अन्ततः 1623 में तुलसीदास ने 'राम-राम' कहते हुए अपना शरीर का परित्याग किया।

□ रचनाएं

- | | | | |
|-----------------------|------------------|----------------------|-------------------|
| 1) रामचरित्रमानस। | 2) दोहावली। | 3) कवितावली। | 4) गीतावली। |
| 5) श्रीकृष्ण गीतावली। | 6) पार्वती मंगन। | 7) जानकी मंगन। | 8) रामलला नहचु। |
| 9) वैराग्य संदीपनी। | 10) बरवै रामायण। | 11) रामाज्ञा प्रश्न। | 12) विनय पत्रिका। |

□ तुलसीदास का दार्शनिक मत

तुलसीदास के दार्शनिक विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। तुलसीदास ने धर्म व दर्शन को सामान्य जनता के अनुकूल बनाते हुए मोक्ष के मार्ग को सरल बनाया। तुलसीदास ने ऐसे ईश्वर (श्रीराम) को स्वीकार किया, जो समाज के सभी वर्गों में लोकप्रिय हो। साथ ही उन्होंने मोक्ष प्राप्ति के ज्ञान मार्ग व कर्म मार्ग की जटिलता को देखते हुए भक्ति मार्ग पर विशेष जोर दिया। उनके अनुसार ईश्वर का साक्षात्कार ईश्वरीय प्रेम व भक्ति के द्वारा ही हो सकता है।

तुलसीदास ने ईश्वर के सगुण, साकार व व्यक्तित्वपूर्ण अवधारणा को स्वीकार किया है। राम को ईश्वर का अवतार मानकर उनकी भक्ति पर विशेष बल दिया है। तुलसीदासजी का मानना था कि परमात्मा एक है और उसका नाम है राम। वे आत्मा को अजर, अमर, शाश्वत, नित्य व ईश्वर का अंश मानते थे। भारतीय दर्शन की परम्परा का पालन करते हुए उन्होंने भी बंधन के कारण को अज्ञानता माना। साथ ही उन्होंने जगत की सत्ता को भी स्वीकार किया तथा इस जगत के कृण-कृण में राम की व्याख्या की।

□ सामाजिक दृष्टिकोण

तुलसीदास भक्ति आन्दोलन की उपज थे, किन्तु सामाजिक सुधार के संदर्भ में उनका दृष्टिकोण उतना क्रांतिकारी नहीं था, जितना नानक व कबीर था। तुलसीदास ने समाज सुधार के संबंध में कोई ऊँचे मानक स्थापित नहीं किए हैं। वे सभी वर्गों के मध्य धार्मिक समानता बनाए रखना चाहते थे, किन्तु उन्होंने सामाजिक समानता का समर्थन नहीं किया। वे जाति व्यवस्था को बनाए रखने के पक्ष में थे। स्त्रियों के प्रति भी उनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण नहीं था।

राजा राममोहन राय Raja Rammohan Ray

राजा राममोहन राय को भारतीय पुनर्जागरण का अग्रदूत और आधुनिक भारत का जनक कहा जाता है। भारतीय सामाजिक और धार्मिक पुनर्जागरण के क्षेत्र में उनका विशिष्ट स्थान है। वे ब्रह्म समाज के संस्थापक, भारतीय भाषायी प्रेस के प्रवर्तक, जनजागरण और सामाजिक सुधार आन्दोलन के प्रणेता तथा बंगाल में नव-जागरण युग के पितामह थे। उन्होंने भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन और पत्रकारिता के कुशल संयोग से दोनों क्षेत्रों को गति प्रदान की। उनके आन्दोलनों ने जहां पत्रकारिता को चमक दी, वहीं उनकी पत्रकारिता ने आन्दोलनों को सही दिशा दिखाने का कार्य किया।

राजा राममोहन राय का जन्म 22 मई, 1772 ई. में बंगाल के हुगली जिले के राधानगर ग्राम में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता रमाकांत राय वैष्णव थे, जबकि माता तारणीदेवी शाक्त थी। बचपन से ही वे प्रतिभा के धनी थे। परिवार में ही प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह उच्च शिक्षा हेतु पटना आ गए। 15 वर्ष की आयु तक उन्हें बंगाली, संस्कृत, अरबी तथा फारसी भाषा का ज्ञान हो गया था। इसके अलावा हिन्दी, अंग्रेजी, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। इन भाषाओं में अपने भावों को कुशलता से अभिव्यक्त करने की क्षमता रखते थे।

15 वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने एक लेख लिखकर मूर्तिपूजा की आलोचना की। उनके इन कार्यों से नाराज होकर उनके परिवार ने घर से निकाल दिया। तत्पश्चात् उन्होंने नेपाल व तिब्बत की यात्रा की तथा वाराणसी में संस्कृत व हिन्दू दर्शन का गहन अध्ययन किया। अन्ततः 1803 ई. में उनके पिता का देहान्त हो जाने के बाद ही वे वापस घर लौटे। उन्होंने 1803-1814 ई. तक ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए भी काम किया। इसी समय वे ईसाई धर्म के सम्पर्क में भी आए तथा उन्हें यूरोपीय राजनीतिक विचारधाराओं को समझने का अवसर मिला।

1815 ई. में उन्होंने आत्मीय सभा तथा 1819 ई. में कलकत्ता यूनेटेरियन की स्थापना की। मध्ययुगीन दलदल में फंसे इस देश में जान फूँकी, जिससे भारतीय चिन्तन तथा धारा ही बदल गई। अपनी प्रतिभा, विवेकपूर्ण दृष्टिकोण और मानवसेवा की भावना के साथ राजा राममोहन राय भारत में पुनर्जागरण व धर्म सुधार एकसाथ लाने में सफल हुए। उन्होंने 20 अगस्त, 1828 ई. में ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसका उद्देश्य एकेश्वरवाद की स्थापना तथा सदाचार, दयाभाव, प्रेम, करुणा, निर्भयता आदि की शिक्षा देना है।

आगे चलकर 1830 ई. में राजा राममोहन राय मुगल बादशाह अकबर द्वितीय के दूत के रूप में इंग्लैण्ड गए। इसी समय अकबर द्वितीय ने उन्हें राजा की उपाधि से विभूषित किया। सितम्बर, 1833 ई. को ब्रिस्टल में राजा राममोहन राय इस नश्वर संसार का त्यागकर ब्रह्मलोक में विलीन हो गए। समाज की समस्याओं को सत्ता के केन्द्र तक पहुंचाने वाले राजा राममोहन राय ने एक ऐसे मार्ग का निर्माण किया, जिस पर चलकर भावी धर्म और समाज सुधारक आपके विचारों को क्षितिज तक पहुंचाते रहेंगे। ये कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि राजा राममोहन राय भारतीय राष्ट्रीयता के पैगम्बर और आधुनिक भारत के जनक थे।

□ दार्शनिक व धार्मिक विचार

राजा राममोहन राय का पालन-पोषण ब्राह्मणवादी व वैष्णव भक्त परिवार में हुआ था। इसके बावजूद उनकी आस्था अन्य धर्मों में भी थी। वे दार्शनिक दृष्टिकोण से अद्वैत-वेदान्त का समर्थन करते थे तथा निगुर्ण-निराकार ब्रह्म को मानते थे। उनका एकेश्वरवाद में विश्वास था। इस संदर्भ में उन्होंने तुहफत-उल-मुवादिन नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें एकेश्वरवाद का समर्थन किया गया।

1816 ई. में उनकी पुस्तक वेदान्त सार का प्रकाशन हुआ, जिसके माध्यम से उन्होंने बहुदेववाद, मूर्तिपूजा व कर्मकाण्ड की घोर आलोचना की। राजा राममोहन राय का मानना था कि धर्म ग्रंथों को मानवीय आन्तरात्मा तथा तर्क के ऊपर नहीं माना जा सकता है। इस आधार पर उन्होंने वर्ण व्यवस्था की आलोचना की। वे किसी भी ऐसी परम्परा का समर्थन नहीं करते थे, जिसे मानवीय बुद्धि स्वीकार नहीं करती है। राजा राममोहन राय आत्मा की अमरता में विश्वास रखते थे। किन्तु कर्म सिद्धान्त व पुनर्जन्म के विषय में निश्चित मत प्रकट न करके उन्होंने ब्रह्म समाजी को मानने न मानने की अनुमति दे दी।

वे एक सर्वव्यापी धर्म के समर्थक थे। वे पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने सभी धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा उनके मूल तत्वों को खोजने का प्रयास किया। उनका मानना था कि सभी धर्म आन्तरिक रूप समान हैं, किन्तु विवाद केवल धर्म के बाह्य पक्ष को लेकर है, जिसका उन्होंने विरोध किया था।

□ सामाजिक विचार

राजा राममोहन राय ने तत्कालीन समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों, रीति-रिवाजों, परम्पराओं को कुठाराघात किया। उनका मानना था कि राजनीतिक विकास का तब तक कोई मूल्य नहीं है जब तक समाज सुधार या विकास नहीं होगा। वे जातिप्रथा, अस्पृश्यता बहुविवाह, सतीप्रथा, बाल विवाह तथा पर्दा प्रथा को समाप्त करने और विधवा विवाह एवं स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे। अतः उन्होंने नारी शिक्षा और स्त्रियों के अधिकारों पर विशेष बल दिया। राजा राममोहन राय पहले भारतीय हैं, जिन्होंने ये कहा कि पिता की सम्पत्ति में बेटी का भी कानूनी हक होना चाहिए।

□ राजनीतिक विचार

राजा राममोहन राय राजनीतिक रूप से उदारवाद का समर्थन करते थे। उनका व्यक्ति की स्वतंत्रता, स्वायत्ता, समानता तथा न्याय में दृढ़ विश्वास था। उन्होंने राजनीतिक मूल्यों का कभी भी परित्याग नहीं किया। भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता का संदेश देने वाले राजा राममोहन राय पहले व्यक्ति थे। राजा राममोहन राय एक पत्रकार, सम्पादक तथा लेखक थे। अतः वे प्रेस एवं लिखित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के सिद्धान्त का समर्थन करते थे। संवाद कौमदी का बंगला भाषा में तथा पर्शियन भाषा में मिरात-उल-अखबार का सफल संपादन किया। इसके अलावा वे राजनीतिक रूप से राष्ट्रवाद व विश्वबंधुत्व में भी विश्वास करते थे।

□ शिक्षा संबंधी विचार

राजा राममोहन राय की शिक्षा और विज्ञान में गहरी आस्था थी, उनके शिक्षा संबंधी विचार रचनात्मक थे। 1816 ई. में आपने कलकत्ता में अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की। ये पहला अंग्रेजी स्कूल था, जिसका व्यय पूर्णतः भारतीयों द्वारा वहन किया जाता था। राजा राममोहन राय के प्रयासों से 1823 ई. में हिन्दू कॉलेज की स्थापना हुई। उन्होंने अपने मस्तिष्क पर पूर्वाग्रहों को कभी-भी हावी होने नहीं दिया। उनका मानना था कि अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी शिक्षा भारत के लिए लाभदायक है।

राजा राममोहन राय ने वेदों तथा उपनिषदों का बंगाली तथा अंग्रेजी में अनुवाद किया। उन्होंने इस बात का खण्डन किया कि ईसाई स्कूल में बाइबिल पढ़ाने से जाति भ्रष्ट होने का डर रहता है। इस संदर्भ में राजा राममोहन राय कहते हैं कि किसी भी धर्म का ग्रन्थ पढ़ने से जाति भ्रष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता, मैंने बहुत बार बाइबिल और कुरान शरीफ को पढ़ा, किन्तु मैं न ईसाई बना और न ही मुसलमान बना। बहुत से यूरोपीय गीता तथा रामायण पढ़ते हैं, वो तो हिन्दू नहीं हुए।

□ पत्रकारिता

राजा राममोहन राय ने ब्रह्ममैत्रिकल मैगज़ीन, संवाद कौमुदी, मिरात-उल-अखबार, बंगदूत जैसे स्तरीय पत्रों का संपादन-प्रकाशन किया। बंगदूत एक अनोखा पत्र था। इसमें बांग्ला, हिन्दी और फारसी भाषा का प्रयोग एक साथ किया जाता था। उनके जुझारू और सशक्त व्यक्तित्व का इस बात से अंदाज लगाया जा सकता है कि 1821 ई. में अंग्रेज जज द्वारा एक भारतीय प्रतापनारायण दास को कोड़े लगाने की सजा दी गई, फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। इस बर्बरता के खिलाफ राय ने एक लेख लिखा।

□ आलोचना

अंग्रेजी शासन, अंग्रेजी भाषा एवं अंग्रेजी सभ्यता की प्रशंसा करने के लिए राजा राममोहन राय की आलोचना की जाती है। उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन में कभी प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लिया। साथ ही उनकी मृत्यु भी ब्रिटेन में ही हुई। कुछ लोगों का विचार है कि वे अपनी जमींदारी को चमकाते हुए भारतीय समाज में हीन भावना भरने का कार्य कर रहे थे और अंग्रेजों के अदृश्य सिपाही थे। उन्होंने भारत में अंग्रेजी राज (गुलामी) की स्थापना एवं उसके सशक्तीकरण के लिए रास्ता तैयार किया। वे अंग्रेजी कूटनीति को समझ नहीं सके और भारतीय जनता का सही मार्गदर्शन नहीं कर सके।

किन्तु निष्पक्ष दृष्टिकोण से देखा जाए, तो उपरोक्त आलोचनाएं उचित प्रतीत नहीं होती हैं। राजा राममोहन राय ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने आधुनिक युग के महत्व को समझा। उन्होंने पश्चात्य सभ्यता व संस्कृति का अंधानुकरण कभी नहीं किया, बल्कि उनके अच्छे विचारों को ग्रहण करने का समर्थन किया। समकालीन परिस्थितियों की सीमाओं को देखते हुए हम कह सकते हैं कि राजा राममोहन राय एक महान दृष्टिकोण वाले व्यक्ति थे और अपने समकालीन लोगों से बहुत ऊँचे तथा आगे थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती Swami Dayanand Saraswati

स्वधर्म, स्वभाषा, स्वराष्ट्र, स्वसंस्कृति और स्वदेशोन्नति के अग्रदूत दयानन्द सरस्वती का जन्म 1824 ई. में गुजरात की मोरवी रियासत में हुआ था। उनके पिता का नाम करशनजी लालजी तिवारी और मां का नाम यशोदाबाई था। उनके पिता एक कर-कलेक्टर होने के साथ ब्राह्मण परिवार के एक अमीर, समृद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति थे। दयानन्द सरस्वती का वास्तविक नाम मूलशंकर था और उनका प्रारम्भिक जीवन बहुत आराम से बीता। आगे चलकर एक पण्डित बनने के लिए वे संस्कृत, वेद शास्त्रों व अन्य धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में लग गए।

दयानन्द सरस्वती के जीवन में ऐसी बहुत-सी घटनाएं हुईं, जिन्होंने उन्हें हिन्दू धर्म की पारम्परिक मान्यताओं और ईश्वर के बारे में गंभीर प्रश्न पूछने के लिए विवश कर दिया। एक बार शिवरात्रि के दिन उनका पूरा परिवार रात्रि जागरण के लिए एक मन्दिर में ही रुका हुआ था। परिवार के सो जाने के पश्चात् भी वे जागते रहे कि भगवान शिव आएंगे और प्रसाद ग्रहण करेंगे। उन्होंने देखा कि शिवजी के लिए रखे भोग को चूहे खा रहे हैं। यह देखकर वे बहुत आश्चर्यचकित हुए और सोचने लगे कि जो ईश्वर स्वयं को चढ़ाए गए प्रसाद की रक्षा नहीं कर सकता, वह मानवता की रक्षा क्या करेगा? इस बात पर उन्होंने अपने पिता से बहस की और तर्क दिया कि हमें ऐसे असहाय ईश्वर की उपासना नहीं करनी चाहिए।

अपनी छोटी बहन और चाचा की हैजे के कारण हुई मृत्यु से वे जीवन-मरण के अर्थ पर गहराई से सोचने लगे और ऐसे प्रश्न करने लगे, जिससे उनके माता पिता चिन्तित रहने लगे। तब उनके माता-पिता ने उनका विवाह किशोरावस्था के प्रारम्भ में ही करने का निर्णय किया, लेकिन बालक मूलशंकर ने निश्चय किया कि विवाह उनके लिए नहीं बना है और वे 1846 में सत्य की खोज में निकल पड़े। 15 वर्षों तक वह स्थान-स्थान पर घूमते रहे। 1860 ई. में वे मथुरा पहुंचे, जहां उनकी भेंट स्वामी विरजानन्दजी से हुई। गुरुवर ने उन्हें पाणिनी व्याकरण, पतंजलि-योगसूत्र तथा वेद-वेदांग का अध्ययन कराया। गुरु दक्षिणा में उन्होंने मांगा - विद्या को सफल कर दिखाओ,

परोपकार करो, सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, मत मतांतरों की अविद्या को मिटाओ, वेद के प्रकाश से इस अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करो, वैदिक धर्म का आलोक सर्वत्र विकीर्ण करो। यही तुम्हारी गुरु दक्षिणा है। उन्होंने आशीर्वाद दिया कि ईश्वर उनके पुरुषार्थ को सफल करे। उन्होंने अंतिम शिक्षा दी - मनुष्यकृत ग्रंथों में ईश्वर और ऋषियों की निंदा है, ऋषिकृत ग्रंथों में नहीं। वेद प्रमाण हैं। इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना।

1863 ई. में उन्होंने झूठे धर्मों का खण्डन करने के लिए 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' लहराई। 1875 ई. में उन्होंने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य प्राचीन वैदिक धर्म की शुद्ध रूप से पुनर्स्थापना करना था। जो झूठे धार्मिक विश्वास तथा सामाजिक कुरीतियां कालान्तर में हिन्दू समाज में आ गई थीं, उन्हें उन्होंने जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रण किया। 1877 ई. में आर्य समाज, लाहौर की स्थापना हुई, जिसके उपरान्त आर्य समाज का अधिक प्रचार हुआ। स्वामी दयानन्द का उद्देश्य था कि भारत को धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय रूप से एक कर दिया जाए। उनकी इच्छा थी कि आर्य धर्म ही देश का समान धर्म बने। अंततः स्वामी दयानन्दजी का शरीर 1883 ई. में दीपावली के दिन पंचतत्व में विलीन हो गया। वे अपने पीछे छोड़ गए एक सिद्धान्त - कृण्वन्तो विश्वमार्यम्, अर्थात् - सारे संसार को श्रेष्ठ मानव बनाओ।

□ धार्मिक विचार

धार्मिक क्षेत्र में वह मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, अवतारवाद, पशुबलि, श्राद्ध, तंत्र-मंत्र तथा झूठे कर्मकाण्डों को स्वीकार नहीं करते थे। वह वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे और उपनिषद् काल तक के साहित्य को स्वीकार करते थे। शेष को, विशेषकर पुराणों को वह मनघड़त कथाओं का समुच्चय मानते थे। परन्तु वेदों के विषय में भी उनका तर्क यह था कि वेदों की भाषा अत्यन्त प्राचीन है। अतः इसके भाष्य जो समय-समय पर लिखे गए हैं, सभी सत्य नहीं हैं। अपनी बुद्धि का प्रयोग करें और वैदिक मंत्रों के अर्थों को तर्क की कसौटी पर परखें और तब अपनाओं।

उन्होंने अद्वैतवाद के दर्शन को शुद्ध वैदिक परम्परा के विपरीत बतलाया, जिसमें केवल ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार किया गया है तथा जगत को मिथ्या माना है। उनके अनुसार प्रकृति (जगत) सत् है, आत्मा सत् तथा चित् है और परमात्मा सत्-चित्-आनन्द है। तीनों ही अनादि तथा अनन्त हैं। वे कर्म सिद्धान्त में विश्वास करते थे। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को संसार की कर्मभूमि में कार्य करते हुए मोक्ष की ओर अग्रसर होना होगा, अर्थात् - कर्मशील बनकर जीवन व्यतीत करना होगा।

□ सामाजिक विचार

महर्षि दयानन्द ने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों और रूढ़ियों-बुराइयों को दूर करने के लिए निर्भय होकर उन पर आक्रमण किया। वे 'संन्यासी योद्धा' कहलाए। उन्होंने जन्मना जाति का विरोध किया तथा कर्म के आधार वेदानुकूल वर्ण-निर्धारण की बात कही। वे दलितोद्धार के पक्षधर थे। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को वेद को पढ़ने और उसे अपने तर्क के अनुसार निर्वचन करने का अधिकार है। भारत के सामाजिक इतिहास में वह पहले सुधारक थे, जिन्होंने शुद्र तथा स्त्रियों को वेद पढ़ने एवं उच्च शिक्षा प्राप्त करने, यज्ञोपवीत धारण करने तथा अन्य सभी पक्षों से ऊँची जाति तथा पुरुषों के बराबर के अधिकार प्राप्त करने के लिए आन्दोलन किया।

उन्होंने सबसे अधिक कार्य स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के लिए किया। उनके अनुसार पुत्र व पुत्रियां समान हैं। इसी प्रकार बाल विवाह, विधवा को हेय मानना, दहेज प्रथा, बहुविवाह, वेश्यागमन, देवदासी प्रथा आदि सामाजिक बुराइयों का विरोध किया। इसी के साथ स्वामी दयानन्द ने हिन्दू समाज में समानता की भावना को जागृत किया तथा जातिप्रथा व अस्पृश्यता का भी विरोध किया।

□ राजनीतिक व शिक्षा संबंधी विचार

राजनीतिक क्षेत्र में सर्वप्रथम स्वराज्य का विचार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ही दिया। वे कहते थे कि बुरे से बुरा देशी राज्य, अच्छे से अच्छे विदेशी राज से बेहतर है। उनकी शिक्षा के फलस्वरूप उनके अनुयायियों में स्वदेशी व देशभक्ति की भावना का विकास हुआ, जो कालान्तर में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रेरणा स्रोत बना।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा स्थापित आर्य समाज ने शिक्षा तथा ज्ञान के प्रसार पर बहुत बल दिया। यद्यपि स्वामी दयानन्द स्वदेशी शिक्षा के समर्थक थे, किन्तु वे कभी-भी रूढ़ीवादी या प्रतिक्रियावादी नहीं थे। आगे चलकर उनके अनुयायियों ने अंग्रेजी भाषा व ज्ञान को भी अपनाया, ताकि प्राच्य तथा पाश्चात्य ज्ञान का सर्वोत्तम समन्वय हो सके।

स्वामी विवेकानन्द Swami Vivekananda

स्वामी विवेकानन्द एक युवा संन्यासी के रूप में भारतीय संस्कृति की सुगन्ध विदेशों में बिखरने वाले साहित्य, दर्शन और इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान थे। वे चिंतन, भक्ति व तार्किकता, भौतिक एवं बौद्धिक श्रेष्ठता के साथ-साथ संगीत की प्रतिभा का एक विलक्षण संयोग थे। उन्होंने हिन्दू धर्म को गतिशील तथा व्यवहारिक बनाया और सुदृढ़ सभ्यता के निर्माण के लिए पश्चिमी विज्ञान व भौतिकवाद को भारत की आध्यात्मिक संस्कृति से जोड़ने का आग्रह किया। भारत में स्वामी विवेकानन्द के जन्म दिवस को **राष्ट्रीय युवा दिवस** के रूप में मनाया जाता है।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 ई. में कलकत्ता के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता हाईकोर्ट के एक प्रसिद्ध वकील थे। विश्वनाथ दत्त पाश्चात्य सभ्यता में विश्वास रखते थे। वे अपने पुत्र नरेन्द्र को भी अंग्रेजी पढ़ाकर पाश्चात्य सभ्यता के ढर्रे पर चलाना चाहते थे। परन्तु उनकी माता भुवनेश्वरी देवी धार्मिक विचारों की महिला थीं, जिसका प्रभाव विवेकानन्द पर भी पड़ा। अपने शिक्षा काल में वे सर्वाधिक लोकप्रिय और एक जिज्ञासु छात्र थे, किन्तु हरबर्ट स्पेन्सर के नास्तिकवाद का उन पर पूरा प्रभाव पड़ा। अतः उनके अन्दर परमात्मा के साक्षात्कार की इच्छा प्रबल हो गई। इस हेतु वे ब्रह्म समाज में गए, किन्तु वहां उनके चित्त को संतोष नहीं हुआ।

इस तरह युवावस्था में उन्हें पाश्चात्य दार्शनिकों के निरीश्वर भौतिकवाद तथा ईश्वर के अस्तित्व में दृढ़ भारतीय विश्वास के कारण गहरे द्वंद्व से गुजरना पड़ा। इसी समय उनकी भेंट गुरु रामकृष्ण परमहंस से हुई, जिन्होंने पहले उन्हें विश्वास दिलाया कि ईश्वर वास्तव में है और मनुष्य ईश्वर को पा सकता है। रामकृष्ण ने सर्वव्यापी परमसत्य के रूप में ईश्वर की सर्वोच्च अनुभूति पाने में नरेन्द्र का मार्गदर्शन किया। 25 वर्ष की अवस्था में नरेन्द्र दत्त ने भगवा वस्त्र धारण किए। अपने गुरु से प्रेरित होकर नरेन्द्रनाथ ने संन्यासी जीवन बिताने की दीक्षा ली और स्वामी विवेकानन्द के रूप में जाने गए।

भगवा वस्त्र धारण करने के पश्चात् उन्होंने पैदल ही पूरे भारतवर्ष की यात्रा की। उनकी यह महान यात्रा कन्याकुमारी में समाप्त हुई, जहां ध्यानमग्न विवेकानन्द को यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि भारत के पुनर्निर्माण के लिए इस मृतप्राय देश को जगाना आवश्यक है। भारत के पुनर्निर्माण के प्रति उनके लगाव ने ही उन्हें अंततः 1893 ई. में शिकागो धर्म संसद में जाने के लिए प्रेरित किया, जहां वे बिना आमंत्रण के गए थे।

तत्कालीन समय में यूरोप-अमेरिका के लोग पराधीन भारतवासियों को बहुत हीन दृष्टि से देखते थे। वहां लोगों ने बहुत प्रयत्न किया कि स्वामी विवेकानन्द को सर्वधर्म परिषद् में बोलने का समय ही न मिले। एक अमेरिकन प्रोफेसर के प्रयास से उन्हें थोड़ा समय मिला, किन्तु उनके विचार सुनकर सभी विद्वान चकित हो गए। फिर तो अमेरिका में उनका अत्यधिक स्वागत हुआ। वहां इनके भक्तों का एक बड़ा समुदाय हो गया। तीन वर्ष तक वे अमेरिका में रहे और वहां के लोगों को भारतीय तत्त्वज्ञान की अद्भुत ज्योति प्रदान करते रहे। उनकी वक्तव्य-शैली तथा ज्ञान को देखते हुए वहां के मीडिया ने उन्हें 'साइक्लॉनिक हिन्दू' का नाम दिया। स्वामी विवेकानन्दजी का दृढ़ विश्वास था कि अध्यात्म-विद्या और भारतीय दर्शन के बिना विश्व अनाथ हो जाएगा।

स्वामी विवेकानन्द ने 1 मई, 1897 ई. को रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। रामकृष्ण मिशन मूलरूप से अध्यात्मवाद व मानवतावाद पर आधारित है। इसके 3 प्रमुख कार्य हैं - प्रथम, गरीबों की हर प्रकार से सहायता, द्वितीय, वेदान्त व स्वामी रामकृष्ण की शिक्षाओं का प्रभावशाली ढंग से प्रचार तथा अंतिम है - जनकल्याण के लिए शिक्षा की व्यवस्था। मानव सेवा और मानव कल्याण रामकृष्ण मिशन का परम धर्म है। आज रामकृष्ण मिशन की हजारों शाखाएं भारत व विश्व में फैली हुई हैं, जो वेदान्त शिक्षा का प्रसार तथा मानव कल्याण हेतु कार्य कर रही हैं। 39 वर्ष के संक्षिप्त जीवनकाल में स्वामीजी ने जो अद्भुत कार्य किए, वे आने वाली पीढ़ियों को मार्गदर्शन करते रहेंगे। 4 जुलाई, 1902 को स्वामीजी का शरीर परमात्मा में विलीन हो गया।

स्वामीजी विवेकानन्द का प्रमुख आदर्श है - 'उठो जागो और तब तक न रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।' वे अनेक युवाओं के लिए प्रेरणा स्रोत हैं, इसलिए उनका जन्मदिन राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मनाया जाता है। उनकी सर्वोपरी शिक्षा है 'मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है।'

□ दार्शनिक विचार

स्वामी विवेकानन्द एक सच्चे वेदान्ती थे। वेदान्त दर्शन के 3 व्याख्याकारों अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद एवं द्वैतवाद में से स्वामी विवेकानन्द अद्वैतवेदान्त के समर्थक थे, किन्तु उन्होंने वेदान्त दर्शन की पुनर्व्याख्या आधुनिक परिप्रेक्ष्य में की। अतः उन्होंने वेदान्त के अद्वैत रूप को मायावाद के साथ समन्वित करने का प्रयास किया है। उनका मानना था कि समस्त संसार ईश्वर की अभिव्यक्ति है और प्रकृति ही ईश्वर है। वे भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद के मध्य एक स्वस्थ संतुलन स्थापित करना चाहते थे। वह समस्त संसार के लिए एक ऐसी संस्कृति की परिकल्पना करते थे, जिसमें पश्चिम का भौतिकवाद तथा पूर्व का अध्यात्मवाद का ऐसा सामन्जस्यपूर्ण सम्मिश्रण हो जाएगा, जो समस्त विश्व को प्रसन्नता दे सकेगा।

स्पष्ट है कि स्वामी के नव्य वेदान्त दर्शन में आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक खोजों तथा समकालीन विचारों की अवहेलना नहीं की गई। क्योंकि उनका विश्वास था कि अध्यात्मिक उन्नति के पूर्व देश की भौतिक उन्नति व समृद्धि आवश्यक है। वे प्रायः कहा करते थे कि रोटी का प्रश्न हल किए बिना भूखे मनुष्य धार्मिक नहीं बनाए जा सकते हैं। इसलिए रोटी का प्रश्न हल करने का नया मार्ग बताना सबसे मुख्य व सबसे पहला कर्तव्य है। इस प्रकार उन्होंने वेदान्त दर्शन को व्यवहार स्वरूप देने के नाते सम्पूर्ण मानवता का कल्याण करना चाहते थे। वे गरीब, अशिक्षित, असहाय, उपेक्षित तथा अनाथ की सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा मानते थे।

□ नारी चिंतन

स्वामी विवेकानन्द स्त्री-पुरुष दोनों को एक-दूसरे के पूरक तथा सहयोगी मानते थे तथा लिंग समानता में विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि मात्र बौद्धिक और अक्षर ज्ञान से ही स्त्री का कल्याण संभव नहीं है, अपितु उनमें आध्यात्मिक व नैतिक उन्नति भी आवश्यक है। विवेकानन्द का मानना था कि भारत की नारियां भले ही बौद्धिक और अक्षर ज्ञान के स्तर पर अमेरिका की नारियों से पीछे हो, परन्तु वे सदैव चरित्रवान जीवनायपन करते हुए अपने पवित्र आचार-विचार और हृदय की पवित्रता के माध्यम से मानव-कल्याण व अध्यात्मवाद के पथ पर अग्रसित होती हैं। अमेरिका में स्त्री भोगवादी मानसिकता के केन्द्र-बिन्दु में वास करती हैं, परन्तु भारत में स्त्री सदैव से पूज्या रही हैं। इसी भारतीय-चिंतन के चलते भारत में तलाकों की संख्या अमेरिका के अपेक्षाकृत नगण्य है। स्पष्ट है कि स्वामी विवेकानन्द नारी शिक्षा के साथ-साथ नैतिक शिक्षा पर भी बल देते हैं। इसके अलावा स्वामी विवेकानन्द ने बाल विवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा आदि कुरीतियों का विरोध किया।

□ शिक्षा

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया है। भारत की निर्धनता का एक कारण उन्होंने शिक्षा को भी माना है। स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि शिक्षा का आधार धर्म होना चाहिए और उसका केन्द्र बिन्दु चरित्र निर्माण ही होना चाहिए। उनका मानना था कि हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही बन जाते हैं, क्योंकि विचार सजीव होते हैं। परिणामतः वाणी की अपेक्षा उनका अधिकतम प्रभाव सदैव हमारे जीवन पर पड़ता रहता है। अतः हमें अपने विचारों के प्रति बहुत सावधान रहना चाहिए।

वे तत्कालीन शिक्षा प्रणाली से दुःखी थे। उनका विचार था कि उस समय की शिक्षा मनुष्य में कोई गुण उत्पन्न नहीं करती है, यह मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली शिक्षा है ही नहीं। उसमें कोई तत्व की बात दी ही नहीं जाती है। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली मौलिकता को कुंठित कर देती है और उसमें मनुष्यत्व के गुणों का विकास नहीं होता है। वे पाश्चात्य शिक्षा के साथ-साथ प्राच्य शिक्षा को भी आवश्यक मानते थे। शिक्षा में संस्कृत जैसी उत्कृष्ट भाषा का स्थान विशिष्ट होना चाहिए। संस्कृत भाषा मात्र वेदो-उपनिषदों की भाषा बनकर न रहकर जाए। अतः इसके प्रचार-प्रसार की नितांत आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षा पर केवल ब्राह्मण विशेष का अधिकार न होकर, अपितु लोगों का समान अधिकार है। शिक्षा का अंतिम लक्ष्य यही है कि वह व्यक्ति को स्वामी बनाए। परिणामतः वह सदैव एक स्वामी की तरह कार्य करें न कि किसी भी प्रकार के गुलाम की तरह।

□ सामाजिक विचार

स्वामी विवेकानन्द ने जनता को आलस्य व अकर्मण्यता के स्थान पर परिश्रम व कर्मण्यता का पाठ पढ़ाया। उन्होंने जातिवाद, अस्पृश्यता और वैषम्यवाद की विचारधाराओं को समाज में से जड़ सहित उखाड़ फेंक देने का सबल प्रयत्न किया। वे वर्णव्यवस्था के समर्थक होते हुए भी समाज में प्रत्येक मनुष्य को आगे बढ़ने का समान अवसर और प्रत्येक को उसकी योग्यतानुसार सामाजिक स्थिति प्रदान करना चाहते थे। वे वर्ग संघर्ष को उचित नहीं मानते थे, बल्कि उसके स्थान पर विश्व बंधुत्व का समर्थन करते थे।

□ राजनीतिक विचार

स्वामी विवेकानन्द विशुद्ध रूप से राजनीतिक विचारक नहीं थे और न ही उन्होंने कोई सुसंगत किसी राजनीतिक विचारधारा का प्रतिपादन किया। किन्तु स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रवाद के प्रबल समर्थक थे। उनका राष्ट्रवाद एक प्रकार से **सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक राष्ट्रवाद** था। उन्होंने भारतीय संस्कृति व धर्म को विश्व पटल पर गौरवमय स्थान दिलाकर भारतीयों के मन में इसके प्रति प्रेम को जगा दिया। स्वामीजी के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने भारतीय जनता के मन में आत्मसम्मान व स्वाभिमान को जगाया। बंगाल विभाजन के प्रतिक्रियास्वरूप स्वदेशी आन्दोलन में भी उनके विचारों तथा शिक्षा को देखा जा सकता है।

अरबिन्दो घोष Arbind Ghosh

अरबिन्दो घोष का जन्म 15 अगस्त, 1872 ई. को कलकत्ता में एक सम्पन्न परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम डॉ. कृष्णधन घोष कलकत्ता के प्रसिद्ध सिविल सर्जन थे और उन्होंने इंग्लैण्ड में चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया था। अतः वे पाश्चात्य संस्कृति में पूर्णतः रंगे हुए थे। उनकी माता का नाम स्वर्णलता देवी था। श्री अरबिन्दो को सर्वप्रथम दार्जिलिंग के आइरिश ईसाई स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया और 1879 ई. में जब वह 7 वर्ष के थे, तो उनके पिता उन्हें इंग्लैण्ड ले गए। यहां पर अरबिन्दो ने ग्रीक, लैटिन, इंग्लिश, फ्रेंच, इटालियन, जर्मन व स्पेनिश भाषाओं का अध्ययन किया।

1890 ई. में उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। वे आई. सी. एस. की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए थे, किन्तु उन्हें अंग्रेजी सरकार की दासता स्वीकार नहीं थी, अतः बड़ी चालाकी से वे घुड़सवारी की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए। इंग्लैण्ड में अरबिन्दो घोष की भेंट बड़ौदा नरेश से हुई। बड़ौदा नरेश अरबिन्दो की योग्यता से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने अरबिन्दो को अपने नौकरी हेतु आमंत्रित किया। 1893 ई. में श्री अरबिन्दो 14 वर्ष बाद भारत लौटे और बड़ौदा नरेश के यहां 13 वर्ष तक नौकरी करते रहे। इसके पश्चात् उन्होंने बड़ौदा और कलकत्ता में विभिन्न प्रशासनिक एवं अध्यापकीय पदों पर कार्य किया। बड़ौदा के इस निवास काल में ही उन्होंने संस्कृत साहित्य व बंगला का अध्ययन किया।

1905 ई. में बंग-भंग आन्दोलन में वे पूरी तरह राजनीति में आ गए। बड़ौदा से वे बंगाल चले आए और प्रकट रूप से राजनीति में कार्य करने लगे। इस समय तक वह अखिल भारतीय स्तर के नेता हो चुके थे तथा गरम दल का नेतृत्व कर रहे थे। 1908 ई. में अरबिन्दो को गिरफ्तार कर लिया गया और अलीपुर जेल में रखा गया। 1909 ई. में देशबंधु चितरंजन दास ने कुशल पैरवी कर उन्हें जेल से मुक्त कराया। इसके पश्चात् अरबिन्दो सक्रिय राजनीति से अलग हो गए तथा 1910 ई. में पाण्डिचेरी पहुंचे, जहां उन्होंने अरबिन्दो आश्रम की स्थापना की। यहां अरबिन्दो घोष अंत तक योगाभ्यास करते रहे और उन्हें परमात्मा से साक्षात्कार की अनुभूति हुई। उनके आध्यात्मिक अनुभवों से असंख्य लोग प्रभावित हुए। उनका दृढ़ विश्वास था कि संसार के दुःख का निवारण केवल आत्मा के विकास से ही हो सकता है, जिसकी प्राप्ति केवल योग द्वारा ही संभव है। वे मानते थे कि योग से ही नई चेतना आ सकती है। अरबिन्दो घोष की मृत्यु 5 दिसम्बर, 1950 में पाण्डिचेरी में हुई थी।

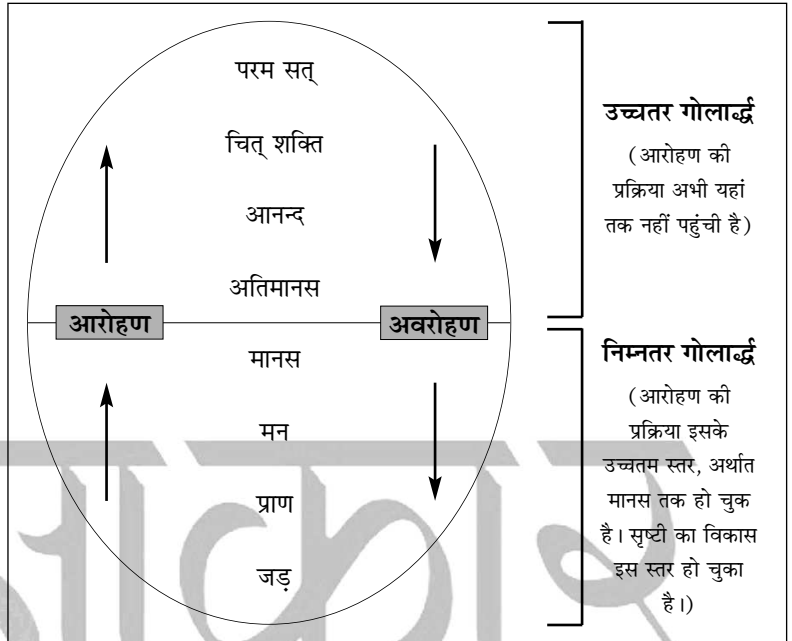
अरबिन्दो को भारतीय एवं यूरोपीय दर्शन और संस्कृति का अच्छा ज्ञान था। यही कारण है कि उन्होंने इन दोनों के समन्वय की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किया। कुछ लोग उन्हें भारत की ऋषि परम्परा (संत परम्परा) की नवीन कड़ी मानते हैं। श्री अरबिन्दो का दावा है कि इस युग में भारत विश्व में एक रचनात्मक भूमिका निभा रहा है तथा भविष्य में भी निभाएगा। उनके दर्शन में जीवन के सभी पहलुओं का समावेश है। उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं, यथा संस्कृति, राष्ट्रवाद, राजनीति, समाजवाद, साहित्य, विशेषकर काव्य के क्षेत्र में उनकी कृतियां बहुचर्चित हुई हैं।

♦ मुख्य रचनाएं

एसेज ऑन गीता, **द लाइफ डिवाइज़न**, कलेक्टेट पोयम्स एण्ड प्लेज, द सिंथेसिस ऑफ योगा, द ह्यूमन साइकिल, द आईडियल ऑफ ह्यूमन यूनियटी, ए लीजेंड एण्ड ए सिंबल, ऑन द वेदा आदि।

□ अरबिन्दो दर्शन - तत्त्वमीमांसा

अरबिन्दो नव्य वेदान्त से संबंधित दार्शनिक हैं। इनका दर्शन **पूर्ण अद्वैतवाद (Integral Non-dualism)** के नाम से प्रसिद्ध है। इनके दर्शन पर पाश्चात्य दार्शनिकों में प्लेटो व अरस्तू तथा भारतीय दर्शन में अद्वैतवेदान्त व योग का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सृष्टि विचार (Theory of Creation), अरबिन्दो के दर्शन में सबसे महत्वपूर्ण विचार है। वेदान्ती होने के कारण उनके सामने सबसे प्रमुख समस्या ब्रह्म, जीव व जगत के संबंधों को लेकर है। वे शंकर के अद्वैतवाद को स्वीकार नहीं करते हैं, जिसमें जगत को मिथ्या बताया गया है। चूंकि वे नव्य वेदान्ती थे, अतः वे जगत की वास्तविक सत्ता में विश्वास रखते थे। वह जगत को ब्रह्म की लीलामय अभिव्यक्ति मानते थे। जगत का हर ताल, हर लय, प्रत्येक गति आनन्द की ही अभिव्यक्ति है। इस अर्थ में जगत प्रक्रिया सच्चिदानन्द का ही अंग है तथा इस प्रक्रिया में निहित यह व्यापक आनन्द ही लीला है। इसी कारण अरबिन्दो यह कहते हैं कि सृष्टि उसी का खेल है, वही खेल है, वही खिलाड़ी है और वही क्रीड़ा स्थल है। उनका मानना था कि परम सत् या ब्रह्म और जगत के स्वरूप में किसी प्रकार का तात्त्विक अन्तर नहीं है।



अरबिन्दो के अनुसार जगत की प्रक्रिया 2 रूपों में व्यक्त होती है - अवरोहण/अवतरण (Involution) और आरोहण (Evolution)। अरबिन्दो के दर्शन में सत्ता के 8 स्तर है - परम सत् (Absolute Real), चित् शक्ति (Consciousness Force), आनन्द (Bliss), अतिमानस (Super Mind), मानस (Mind), मन (Psyche), प्राण (Life) एवं जड़ (Matter)। यहाँ अवरोहण का अर्थ है - परम सत् का स्वयं को जगत के निम्नतर रूपों में अभिव्यक्त करना। वस्तुतः अवरोहण का ही परिणाम है - अभिव्यक्ति। अतः जगत का अर्थ है - परम सत् की अभिव्यक्ति का क्षेत्र। वहीं आरोहण का अर्थ है निम्नतर का उच्चतर की ओर बढ़ना। जिस प्रकार अवरोहण में सच्चिदानन्द जगत के निम्नतर रूपों में व्यक्त होता है, ठीक उसी प्रकार आरोहण में जगत के निम्नतर रूप उसकी ओर बढ़ते हैं।

अरबिन्दो के अनुसार अभी तक आरोहण की प्रक्रिया 3 स्तरों को पार करके चौथे स्तर, अर्थात् - यह जड़, प्राण तथा मन को पार कर मानस तक पहुंच चुकी है। अब आरोहण का अगला स्तर आने ही वाला है, जिसमें विकास की प्रक्रिया अतिमानस में पहुंच जाएगी। यद्यपि यह परिवर्तन सरल नहीं है। अतिमानस की अवस्था में सच्चिदानन्द की पूर्ण चेतना होती है।

◆ पूर्ण अद्वैत योग (Integral Yoga)

योग का शाब्दिक अर्थ है - मिलन या एकत्व। महर्षि पतंजलि ने मोक्ष हेतु अष्टांग योग पर बल दिया है। किन्तु अरबिन्दो के दर्शन में योग का विस्तृत अर्थ लिया गया है तथा इसे पूर्ण अद्वैत योग कहा है। अरबिन्दो का मानना है कि आरोहण की प्रक्रिया के माध्यम से दिव्य जीवन (Divine Life) की प्राप्ति होती है। किन्तु यदि हम प्रयास करें, तो दिव्य जीवन तक पहुंचने की गति बढ़ाई जा सकती है। मानस से अतिमानस के स्तर पर छलांग लगाने के लिए उन्होंने योग का मार्ग सुझाया है।

□ अरबिन्दो का सामाजिक दर्शन

सामाजिक विकास के चक्र में श्री अरबिन्दो ने 4 सोपान बनाए हैं -

- 1) **प्रतीकात्मक सोपान** - प्रतीकात्मक युग में प्रतीकों के पीछे प्राकृतिक शक्ति की उपासना की गई है। समाजशास्त्री इस युग को टोटमवाद का युग भी कहते हैं। अरबिन्दो वैदिक युग को प्रतीकात्मक युग मानते हैं। इस युग में मानव सत्य के अधिक निकट था।
- 2) **प्रकारात्मक सोपान** - प्रकारात्मक युग में मनोवैज्ञानिक व नैतिक प्रकारों को महत्व दिया गया, जो व्यक्ति तथा समाज के

जीवन का आधार बना। गीता का धर्म तथा वर्णाश्रम व्यवस्था इसी युग की थी।

- 3) **रूढ़ीवादी सोपान** - तीसरा युग रूढ़ीवादी युग कहलाया। इसका आधार आर्थिक श्रम विभाजन बना। इसमें वर्ण अब जाति में बदल गए।
- 4) **व्यक्तिवादी सोपान** - चौथा युग व्यक्तिवादी युग है। इसमें आत्मा रूढ़ीवादी समाज के विरुद्ध विद्रोह करती है। व्यक्तिवादी सोपान में बुद्धि का शासन होता है और सभी परम्पराओं पर प्रश्न चिह्न लगते हैं। इसी युग में विज्ञान की प्रगति हुई, किन्तु वैज्ञानिक समाज में व्यक्ति का दम घुटने लगा है। अतः श्री अरबिन्दो सच्चे आत्मनिष्ठ व्यक्तिवाद की स्थापना को जीवन का लक्ष्य बताते हैं। यह युग अब धीरे-धीरे आत्मनिष्ठ युग की ओर बढ़ रहा है।

जिस प्रकार व्यक्ति में आत्मा है, वैसे ही समाज व राष्ट्र में एक समूह आत्मा है, जो सामाजिक जीवन में प्रकट होती है। अतः अरबिन्दो का मानना है कि सामाजिक विकास का आदर्श आध्यात्मिकता की प्राप्ति है। अतः व्यक्ति का आध्यात्मिक रूपान्तरण करना आवश्यक है। व्यक्ति में परिवर्तन के माध्यम से ही समाज में परिवर्तन की संभावना है। आध्यात्मिक जीवन बिताने वाले पुरुष तो मिल जाते हैं, लेकिन सम्पूर्ण समाज को आध्यात्मिकता पर आधारित करने का प्रयास अभी तक नहीं हुआ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सम्पूर्ण समाज का आध्यात्मिक विकास करने के लिए मानव को आध्यात्मिक विकास करने की आवश्यकता है।

□ राजनीतिक दर्शन

श्री अरबिन्दो ने जिस समय भारतीय राजनीति में कदम रखा, उस समय कांग्रेस के उदारवादी नेता राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व कर रहे थे। उदारवादियों की असफलता के कारण राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व उग्रवादियों के हाथों में आया, जिनमें बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल प्रमुख थे। अरबिन्दो की राष्ट्रीय विचारधारा भी इनके अधिक निकट थी। उन्होंने राजनीतिक रूप से स्वराज का समर्थन किया। तिलक की तरह ही उनका भी मानना था कि स्वराज के बिना कोई सामाजिक सुधार नहीं हो सकता, न कोई औद्योगिक प्रगति, न कोई उपयोगी शिक्षा और न ही राष्ट्रीय जीवन की परिपूर्णता।

उल्लेखनीय है कि अरबिन्दो का राष्ट्रवाद एक प्रकार से **आध्यात्मिक राष्ट्रवाद** था। जिस प्रकार मानव में आत्मा निवास करती है, वैसे ही राष्ट्र की भी आत्मा होती है। उन्होंने राष्ट्रवाद को दैवीय आदेश कहकर उसमें चेतना का संचार किया है। उनका मानना था कि लोगों की आत्ममुक्ति ही, ताकि राजनीतिक जीवन में वेदान्त के आदर्श प्राप्त किए जा सकें। यही भारत के लिए सच्चा स्वराज होगा। आध्यात्मिक स्वतंत्रता राष्ट्र की आत्मा है, अतः प्रत्येक व्यक्ति को इसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

इसके अलावा अरबिन्दो राजनीतिक दृष्टिकोण से पूंजीवाद एवं साम्यवाद का विरोध कर समाजवाद पर विश्वास करते थे। वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर ज्यादा बल देते थे। उदारवादियों की तरह ही उनका भी मानना था कि राज्य आवश्यक बुराई है, राज्य को वह अत्यन्त सीमित अधिकार देने के पक्ष में थे।

रबीन्द्रनाथ टैगोर Rabindranath Tagore

रबीन्द्रनाथ टैगोर एक बांग्ला कवि, कहानीकार, गीतकार, संगीतकार, नाटककार, निबंधकार और चित्रकार थे। भारतीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ रूप से पश्चिमी देशों का परिचय और पश्चिमी देशों की संस्कृति से भारत का परिचय कराने में टैगोर की बड़ी भूमिका रही तथा आमतौर पर उन्हें आधुनिक भारत का असाधारण सृजनशील कलाकार माना जाता है। वे एशिया के प्रथम नोबल पुरस्कार सम्मानित व्यक्ति हैं। वे एकमात्र कवि हैं, जिसकी 2 रचनाएं, 2 देशों का राष्ट्रगान बनीं।

रबीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म देवेन्द्रनाथ टैगोर और शारदा देवी के सन्तान के रूप में 7 मई, 1861 ई. को कोलकाता में हुआ। इनके पिता जाने-माने समाज सुधारक एवं ब्रह्म समाज के नेता थे। रबीन्द्रनाथ टैगोर की प्राथमिक शिक्षा सेन्ट जेवियर स्कूल में हुई। उनके पिता चाहते थे कि रबीन्द्रनाथ बड़े होकर बैरिस्टर बनें। इसलिए उन्होंने रबीन्द्रनाथ को कानून की पढ़ाई के लिए 1878 ई. में लंदन भेजा, लेकिन रबीन्द्रनाथ का मन तो साहित्य में था, फिर मन वहां कैसे लगता। उन्होंने कुछ समय तक लंदन के कॉलेज विश्वविद्यालय में कानून का अध्ययन किया, लेकिन 1880 ई. में बिना डिग्री लिए वापस आ गए। 1881 ई. में कानून की शिक्षा करने वह पुनः इंग्लैण्ड गए, किन्तु इंग्लैण्ड पहुंचने पर उनका विचार बदल गया और अन्ततः उन्होंने कानून की शिक्षा प्राप्त करने का विचार त्याग दिया।

1901 ई. में रबीन्द्रनाथ टैगोर ने बोलपुर के समीप शांति निकेतन की स्थापना की, जो 1918 में विश्वभारती विश्वविख्यात विश्वविद्यालय में परिवर्तित हो गया। उन्होंने राजनीति में भी सफलतापूर्वक प्रवेश किया और 1919 ई. तक वे राजनीतिक कार्यों में रूचि लेते रहे। राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षिक कार्यों को करते हुए भी उनकी साहित्य साधना अनवरत रूप से चलती रही और महाकवि एवं साहित्यकार के रूप में उनका व्यक्तित्व निखरता रहा।

टैगोर विश्वकवि थे और गीतांजलि उनका विश्वविख्यात ग्रंथ है। इस कृति का अनुवाद विश्व की लगभग सभी भाषाओं में हो चुका है। इसमें जिन गीतों का संग्रह है, वे दिव्य भावनाओं से पूर्ण हैं। इन गीतों में इतनी सादगी है कि पाठक का हृदय अलौकिक प्रकाश व आनन्द से भर जाता है। गीतों में असीम उल्लास व आनन्द भरा है। 1913 ई. में उन्हें गीतांजलि के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 1915 ई. में भारत सरकार ने उन्हें नाइट (Knight) की उपाधि प्रदान की। 1920-1930 ई. तक उन्होंने यूरोप, अमेरिका तथा एशिया के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। बर्ट्रेण्ड रसेल जैसे महान विचारक भी उनसे प्रभावित थे। 1941 ई. में इस महान साहित्यकार का देहावसान हो गया। गीतांजलि के अलावा रबीन्द्रनाथ टैगोर की प्रमुख रचनाएं मानसी, गोरा, घरे-बाइरे, पोस्ट मास्टर काबुलीवाला, डाकघर आदि हैं।

□ टैगोर का दर्शन

रबीन्द्रनाथ टैगोर महत्मा गांधी की तरह नव्य वेदान्ती थे। उनका दर्शन उपनिषदों के चिन्तन एवं मनन के परिणामस्वरूप विकसित हुआ था। अद्वैतवादी तथा ब्रह्मवादी होते हुए भी वह सर्वोच्च सत्ता को व्यक्तित्व प्रदान करते थे। एक समय वे परम सत्य को सूक्ष्म, तो दूसरे समय वे उसे उपास्य एवं स्थूल मानते हैं। उन्हें प्रकृति में अनन्त की सत्ता का आभास होता है। उन्हें जीव-जगत तथा विश्व की बाह्य विविधता के मध्य एक ही सत्ता दिखाई देती है। इसीलिए मानव मात्र की एकता में उनका अनन्त विश्वास था। उनका विश्वास है कि ईश्वर पूर्णता का अनन्त आदर्श है और मनुष्य उस पूर्णता को प्राप्त करने की शाश्वत प्रक्रिया। टैगोर की सबसे बड़ी देन उनका समन्वयवाद है। भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन के मध्य समन्वय, पूर्व-पश्चिम के मध्य समन्वय आदि विचार आज विश्वभर में जोर पकड़ते जा रहे हैं।

□ राजनीतिक एवं सामाजिक विचार

रबीन्द्रनाथ टैगोर व्यक्ति के सम्मान एवं उसकी स्वतंत्रता में आस्था रखते थे। वे धर्म, भाषा व लिंग के आधार पर कोई भेदभाव स्वीकार नहीं करते थे। उनका मानना था कि सहयोग से व्यक्ति एवं राष्ट्र की निर्धनता समाप्त हो सकती है। पराधीनता की बेड़ी को वे काटना चाहते थे, किन्तु उनका कथन था कि यदि देश आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से स्वावलम्बी एवं स्वतंत्र हो जाएगा, तो राजनीतिक स्वतंत्रता अपने आप प्राप्त हो जाएगी।

वे समाज सुधारक भी थे। ब्रह्म समाज से जुड़े होने के कारण उन्होंने जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, धार्मिक कट्टरता आदि का विरोध किया। राष्ट्रीय सृजन एवं सामाजिक सुधार में वे गांवों को प्रमुखतम स्थान देते थे। देश सेवा का महत्वपूर्ण कार्य ग्राम सेवा है, किन्तु यह ग्राम सेवा ग्रामीणों पर कृपा की तरह नहीं होनी चाहिए, अपितु सेवा में भी ग्रामीणों को उचित सम्मान दिया जाना चाहिए। वे गांवों और शहरों के बीच की खाई को समाप्त करना चाहते थे।

□ टैगोर का मानववाद व विश्ववाद

टैगोर मानव में आस्था रखते थे तथा वे उच्च कोटी के मानववादी थे। उन्होंने अपने सम्पूर्ण दर्शन में मानव कल्याण को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। एक महाकवि होने के नाते उन्होंने संवेगों व स्थायी भावों के दमन का परामर्श नहीं दिया है, वरन मानव की सभी शक्तियों के सामन्जस्यपूर्ण विकास का समर्थन किया है। टैगोर और महात्मा गांधी के बीच राष्ट्रीयता और मानवता को लेकर हमेशा वैचारिक मतभेद रहा। जहां गांधी पहले पायदान पर राष्ट्रवाद को रखते थे, वहीं टैगोर मानवता को राष्ट्रवाद से अधिक महत्व देते थे। यहां उल्लेखनीय है कि टैगोर का मानववाद आधुनिकतावाद लिए हुए था। उन्होंने गांधीजी के इस अवैज्ञानिक मत का भी विरोध किया था कि 1934 ई. में बिहार में आए भूकम्प भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता का परिणाम था, यह सवर्णों के लिए चेतवनी था। टैगोर मानववाद के साथ विश्वबंधुत्व में भी विश्वास करते थे। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विचार द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आया, जबकि टैगोर ने इसका आरंभ विश्वभारती में 20वीं सदी के आरंभ में ही कर दिया था।

सर्वपल्ली राधाकृष्णन Sarvepalli Radhakrishnan

स्वतंत्र भारत के पहले उपराष्ट्रपति और दूसरे राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म 5 सितंबर, 1888 को तमिलनाडु के एक पवित्र तीर्थ स्थल तिरुतनी ग्राम में हुआ था। इनके पिता सर्वपल्ली वीरास्वामी एवं माता सीताम्मा थी। इनके पिता गरीब, किन्तु विद्वान ब्राह्मण थे। वीरास्वामी के 5 पुत्र व 1 पुत्री थी। इस कारण राधाकृष्णन को बचपन में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सर्वपल्ली राधाकृष्णन का शुरुआती जीवन तिरुतनी और तिरुपति जैसे धार्मिक स्थलों पर ही बीता। यद्यपि इनके पिता धार्मिक विचारों वाले इंसान थे, लेकिन उन्होंने राधाकृष्णन को पढ़ने के लिए क्रिश्चियन मिशनरी संस्था लुथर्न मिशन स्कूल, तिरुपति में दाखिल कराया। इसके बाद उन्होंने वेल्लूर और मद्रास कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त की।

इन मिशनरी शिक्षण संस्थाओं में ईसाईयत का वातावरण रहता था, जहां हिन्दू धर्म को हीन दृष्टि से देखा जाता था तथा उसकी खिल्ली उड़ाई जाती है। इस वातवरण में राधाकृष्णन की हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धा कम होने की बजाय और बढ़ गई। इसी समय स्वामी विवेकानन्द के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने राधाकृष्णन को आत्मिक साहस व नैतिक बल दिया और राधाकृष्णन वेदान्त का गहन अध्ययन करने के लिए प्रेरित हुए। इसके अलावा समकालीन भारतीय विचारकों में रवीन्द्रनाथ, अरबिन्दो, टैगोर, गांधी आदि का भी राधाकृष्णन पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा।

1902 ई. में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा अच्छे अंकों में उत्तीर्ण की, जिसके लिए उन्हें छात्रवृत्ति प्रदान की गई। कला संकाय में स्नातक की परीक्षा में वह प्रथम आए। इसके बाद उन्होंने दर्शनशास्त्र में स्नातकोत्तर किया और 1916 ई. में मद्रास रेसीडेंसी कॉलेज में दर्शनशास्त्र के सहायक प्राध्यापक नियुक्त हुए।

तत्पश्चात् वे इंग्लैंड के ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में भारतीय दर्शनशास्त्र के शिक्षक बन गए। डॉ. राधाकृष्णन शिक्षा को पहला महत्व देते थे। यही कारण है कि वो इतने ज्ञानी विद्वान रहे। शिक्षा के प्रति रुझान ने उन्हें एक मजबूत व्यक्तित्व प्रदान किया था। हमेशा कुछ नया सीखने पढ़ने के लिए उतारू रहते थे। जिस कॉलेज से उन्होंने एम. ए. किया था, वही का इन्हें उपकुलपति बना दिया गया। परंतु एक वर्ष के भीतर ही इसे छोड़कर बनारस विश्वविद्यालय में उपकुलपति बन गए। डॉ. राधाकृष्णन ने अपने लेखों और भाषणों के माध्यम से विश्व को भारतीय दर्शनशास्त्र से परिचित कराया।

जब भारत को स्वतंत्रता मिली उस समय जवाहरलाल नेहरू ने राधाकृष्णन को सोवियत संघ का विशिष्ट राजदूत नियुक्त किया। वे 1947-1949 ई. तक संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य रहे। 13 मई, 1952 ई. से 13 मई, 1962 ई. तक वे देश के उपराष्ट्रपति रहे। 13 मई, 1962 को ही वे भारत के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। राजेंद्र प्रसाद की तुलना में इनका कार्यकाल काफी चुनौतियों भरा था। क्योंकि जहां एक ओर भारत के चीन और पाकिस्तान के साथ युद्ध हुए, जिसमें चीन के साथ भारत को हार का सामना करना पड़ा था, वहीं दूसरी ओर 2 प्रधानमंत्रियों का देहांत भी इन्हीं के कार्यकाल के दौरान ही हुआ था।

शिक्षा और राजनीति में उत्कृष्ट योगदान देने के लिए राधाकृष्णन को सर्वोच्च अलंकरण 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया। डॉ. राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शनशास्त्र एवं धर्म के ऊपर अनेक किताबें लिखीं। उनकी प्रमुख किताबें हैं - गौतम बुद्ध : जीवन और दर्शन, धर्म और समाज, भारत और विश्व आदि। 1967 ई. के गणतंत्र दिवस पर राधाकृष्णन ने देश को सम्बोधित करते हुए यह स्पष्ट किया था कि वह अब किसी भी सत्र के लिए राष्ट्रपति नहीं बनना चाहेंगे और बतौर राष्ट्रपति ये उनका आखिरी भाषण रहा। 17 अप्रैल, 1975 ई. को एक लम्बी बीमारी के बाद राधाकृष्णन का निधन हो गया।

राधाकृष्णन के शिक्षा के क्षेत्र में अमूल्य योगदान हेतु उनके जन्म दिवस (5 सितंबर) को शिक्षक दिवस के रूप में मनाकर उनके प्रति सम्मान व्यक्त किया जाता है। राधाकृष्णन को मरणोपरान्त 1975 ई. में अमेरिकी सरकार द्वारा टेम्पलटन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार धर्म के क्षेत्र में उत्थान के लिए प्रदान किया जाता है। इस पुरस्कार को ग्रहण करने वाले वे प्रथम गैर-ईसाई सम्प्रदाय के व्यक्ति थे। डॉ. राधाकृष्णन ने अपने जीवन के 40 वर्ष एक शिक्षक बन कर बिताए। शिक्षा के क्षेत्र में और एक आदर्श शिक्षक के रूप में उनको हमेशा-हमेशा याद किया जाएगा।

□ राधाकृष्णन का दर्शन

राधाकृष्णन की हिन्दू जीवन दर्शन के नैतिक व आध्यात्मिक विचारों में गहन निष्ठा थी। अद्वैतवाद में विश्वास रखते हुए वे नव्य वेदान्ती परम्परा के दार्शनिक थे। उन पर स्वामी विवेकानन्द का अत्यधिक प्रभाव था। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की तरह हिन्दू धर्म एवं दर्शन की श्रेष्ठता को सिद्ध करने का प्रयास किया तथा उन पर उठाई गई आपत्तियों का खण्डन किया। सामान्यतः पाश्चात्य दार्शनिकों ने हिन्दू दर्शन को निराशावादी, दुःखवादी व पलायनवादी कहा है। कुछ दार्शनिकों ने तो यहां तक कहा है कि हिन्दू दर्शन जगत की सत्ता पर विश्वास नहीं करता है तथा हिन्दू धर्म को गतिहीन कहा।

राधाकृष्णन ने हिन्दू धर्म को निरंतर गतिशील माना है। उन्होंने कहा कि हिन्दूत्व गति है न कि स्थिति, प्रक्रिया है न कि परिणाम, एक विकासशील प्रक्रिया है न कि ईश्वरीय ज्ञान। हिन्दू धर्म ने भौतिक जगत का खण्डन नहीं किया, बल्कि भौतिक जगत की आवश्यकताओं को साधन मानते हुए आध्यात्मिक कल्याण को अंतिम उद्देश्य माना है। राधाकृष्णन ने कहा कि हिन्दू धर्म तथा दर्शन मनुष्य को अपने उच्चतर व्यक्तित्व का साक्षात्कार करने की प्रेरणा देता है। उन्होंने कर्मकाण्डों से बंधे हुए हिन्दू धर्म को नहीं माना, इसलिए वे नवीन हिन्दुत्व में विश्वास करते थे।

नव्य वेदान्त में विश्वास करने के कारण राधाकृष्णन एक आध्यात्मिक, शाश्वत तथा पूर्ण सत् (ब्रह्म) की सत्ता में विश्वास करते थे, किन्तु उन्होंने अद्वैत वेदान्त की तरह जगत को मिथ्या नहीं माना। उन्होंने ब्रह्म व जीव के साथ जगत की वास्तविक सत्ता को स्वीकार किया है। उन पर अरबिन्दो के दर्शन का भी प्रभाव था। अतः अरबिन्दो की तरह वह भी मानते थे कि जगत ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। शंकर की तरह वे भी ब्रह्म को अनुभूति का विषय मानते थे। जैसे ही परमात्मा से साक्षात्कार होता है, वैसे ही ब्रह्म, जीव व जगत का भेद मिट जाता है तथा अभेद का ज्ञान होता है। यही आध्यात्मिक स्वतंत्रता या मोक्ष है।

□ धर्म तथा विज्ञान

राधाकृष्णन स्वामी विवेकानन्द की तरह एक समन्वयवादी दार्शनिक थे। उनका भी मानना था कि पाश्चात्य को भारत से तथा भारत को पाश्चात्य सीखने की आवश्यकता है। विज्ञान तर्कबुद्धि, परीक्षण, प्रयोग, सत्यापन, लौकिकता तथा संदेह पर आधारित है। पाश्चात्य जगत ने वैज्ञानिक उन्नति कर जीवन को सुखमय तो बनाया, किन्तु आज उसने मानवता को भी खतरे में डाल दिया है। वैज्ञानिक उन्नति के कारण आज पूरे विश्व में भौतिकतावाद, उपभोक्तावाद, प्राकृतिक असंतुलन, परमाणु खतरा आदि विद्यमान है। विज्ञान ने मानव की गरीमा कम कर उसे एक साधन बना दिया है। वहीं दूसरी ओर धर्म आस्था पर आधारित है, जिसमें अन्धविश्वास, आडम्बर, कुरीतियां विद्यमान हैं। आज पूरे विश्व में साम्प्रदायिकता, कट्टरता व उन्माद फैला हुआ है। स्पष्ट है कि विज्ञान व धर्म मानव का जितना हित नहीं किया है, उससे ज्यादा उसका अहित किया है।

अतः राधाकृष्णन का मानना था कि इनके बीच एक समन्वयनात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। वस्तुतः धर्म और विज्ञान दोनों मानवता की सेवा में तत्पर हैं, दोनों का लक्ष्य है सत्य की खोज। किन्तु धर्म के अभाव में विज्ञान अन्धा और विज्ञान के अभाव में धर्म पंगु है। धर्म को वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, ताकि धर्म को युगानुकूल बनाकर अन्धविश्वास व आडम्बरों को दूर किया जा सके। वहीं दूसरी ओर विज्ञान को मानवीय मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों की जरूरत है, ताकि विज्ञान का प्रयोग मानव हित में किया जा सके। अतः आज विश्व को भौतिक व आध्यात्मिक कल्याण दोनों की आवश्यकता है।

□ सामाजिक एवं राजनीतिक विचार

राधाकृष्णन समाज में सामाजिक-आर्थिक न्याय की वकालत करते थे। उनका कहना है कि “मैं समानतावादी समाज का पूर्णतः समर्थन करता हूं। मेरा विश्वास है कि इस प्रकार की व्यवस्था का श्रेष्ठतम धर्म के साथ कोई विरोध नहीं है।” यद्यपि वे समाजवादी नहीं थे, किन्तु आर्थिक समानता लाने और आर्थिक सुविधाओं के लिए लोकतांत्रिक प्रयासों का वे समर्थन करते हैं। वर्ण व्यवस्था के विषय में उनके विचार पुरातनवादी हैं, किन्तु प्रतिक्रियावादी नहीं। वे वर्ण व्यवस्था के मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्री आधारों को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे जाति व्यवस्था के समर्थक नहीं थे। यहां पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है।

राधाकृष्णन के स्वतंत्रता के संबंधी विचारों में व्यक्तिवाद व आदर्शवाद दोनों का मिश्रण मिलता है। वे स्वतंत्रता पर किसी प्रकार का प्रतिबंध स्वीकार नहीं करते हैं, तो दूसरी ओर उनका मानना है कि स्वतंत्रता का प्रयोजन नैतिक व आध्यात्मिक विकास है। उनके अनुसार मनुष्य ईश्वरीय आत्मा है, अतः यह आवश्यक है कि स्वतंत्रता का प्रयोग कर ईश्वर का साक्षात्कार किया जाए।

सर्वपल्ली राधाकृष्णन राष्ट्रवाद के समर्थक थे, किन्तु वे संकीर्ण राष्ट्रवाद का विरोध करते थे। वे लोकतंत्र और राष्ट्रवाद में समन्वय करना चाहते थे, जिससे मानव की आधारभूत एकता पर बल दे सके और विश्व समाज की स्थापना में सहयोग दे सके। इस प्रकार उनका अन्तर्राष्ट्रवाद में अटूट विश्वास है।

वे साम्यवाद से भी यहां तक सहमत थे कि केवल राजनीतिक स्वतंत्रता पर्याप्त नहीं, बल्कि व्यक्ति को सामाजिक व आर्थिक न्याय भी मिलना चाहिए। किन्तु वे मार्क्सवादी दर्शन, धर्म, ईश्वर संबंधी उनके विचारों, मानव स्वभाव की प्रकृतिवादी धारणा, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और हिंसा के कटु आलोचक हैं। वह यह भी नहीं मानते हैं कि केवल साम्यवाद ही क्रांति ला सकता है या साम्यवादी क्रांति के द्वारा ही न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है।

राधाकृष्णन वर्तमान विश्व में व्याप्त तनाव व दुःखों से बहुत चिन्तित थे। उनके अनुसार वर्तमान संकट के लिए मानव का लोभ और स्वार्थपरकता प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। उनका मानना था कि मनुष्य के हृदय से इन विकारों को दूर करके ही समस्या का सामाधान खोजा जा सकता है। इस संबंध में वह भी गांधी व अरबिन्दो की भाँति मनुष्य के हृदय तथा मन में परिवर्तन के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं।

□ शिक्षा संबंधी विचार

भारतीय दर्शन व जनजीवन में आध्यात्मिक दृष्टिकोण का अत्यन्त महत्व है, इसीलिए राधाकृष्णन ने इसी को शिक्षा का आधार स्वीकार किया है। वह आत्मा की सत्ता को महत्वपूर्ण तत्व के रूप में मानते हैं। अतः उनके दर्शन में समस्त प्रयास आत्मा को लक्ष्य में रखकर किए गए हैं। इस प्रकार जब राधाकृष्णन शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं, तो वे भौतिक दृष्टिकोण के स्थान पर आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अधिक महत्व देते हैं। आधुनिक युग में भौतिकवाद की प्रधानता होने से शिक्षा को भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन माना जाता है। अतः आज की शिक्षा का स्वरूप भौतिक होता जा रहा है।

राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं -

- 1) ज्ञानोपार्जन (Acquiring Knowledge)।
- 2) ज्ञान का रूपान्तरण (Transformation of Knowledge)।
- 3) स्वतंत्रता (Freedom)।
- 4) चरित्र निर्माण (Character Building)।
- 5) जीने की कला (Art of Living)।
- 6) अन्तर्दृष्टि का विकास (Development of Insight)।
- 7) आत्माभिव्यक्ति का विकास (Development of Art of Self-expression)।

मौलाना अबुलकलाम आजाद Maulana Abul Kalam Azad

मौलाना अबुलकलाम का जन्म 11 नवम्बर, 1888 ई. को मक्का में हुआ था। उनके पिता मौलाना खैरुद्दीन एक विख्यात विद्वान थे, जो बंगाल में रहते थे तथा माता आलिया अरबी थी। मौलाना खैरुद्दीन भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के पहले 1857 ई. में कलकत्ता छोड़कर मक्का चले गए थे। 1890 वे पुनः भारत लौट आए थे। 11 वर्ष की उम्र में मौलाना अबुलकलाम आजाद की माता का देहान्त हो गया था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा इस्लामी तौर-तरीकों से हुई थी, लेकिन 1905 ई. में आजाद को अरबी उच्चतर अध्ययन के लिए काहिरा के अल अजहर विश्वविद्यालय में भेज दिया गया। आजाद को उर्दू, फारसी, हिन्दी, अरबी तथा अंग्रेजी भाषा का ज्ञान था। 16 वर्ष में उन्हें वह सभी शिक्षा मिल गई थी, जो आमतौर पर 25 वर्ष की उम्र में मिलती थी।

1905 ई. में धार्मिक आधार पर बंगाल विभाजन किया गया, जिसके विरोध में अबुलकलाम आजाद सक्रिय राजनीति में आए। यद्यपि मुस्लिम मध्यम वर्ग ने इस विभाजन का समर्थन किया था, किन्तु आजाद इसके विरोध में थे। वे अरबिन्दो घोष तथा श्यामसुन्दर चक्रवर्ती के सम्पर्क में आए तथा गुप्त सभाओं एवं क्रांतिकारी संगठनों में शामिल होने लगे। आजाद का मानना था कि 1857 की क्रांति के समय बहुत-से मुसलमान अपने देशवासियों से पीछे रह गए हैं। बहुत-से मुसलमान ऐसा सोच रहे थे कि भारत में हमेशा अंग्रेजों का ही राज बना रहेगा और इसलिए उन्हें अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने की कोई आवश्यकता नहीं है। आजाद ने अपने कई लेखों के माध्यम से उन्हें समझाया कि विदेशी सरकार की गुलामी से छुटकारा पाना सिर्फ राष्ट्रीय ध्येय ही नहीं, बल्कि यह उनका धार्मिक कर्तव्य भी है। अपने इस संदेश को फैलाने के लिए 1912 ई. में उन्होंने अपना प्रसिद्ध साप्ताहिक अखबार अलहिलाल आरंभ किया।

इस अखबार में उन्होंने अपने प्रगतिशील विचार, कुशल तर्क और इस्लामी इतिहास के प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रकाशित किया। यह अखबार भारत एवं विदेशों में इतनी जल्दी प्रसिद्ध हो गया कि कुछ ही दिनों में इसकी 26,000 प्रतियां बिकने लगीं। अन्ततः ब्रिटिश सरकार ने, सरकार के विरुद्ध लिखने के जुर्म में अलहिलाल को बंद कर मौलाना आजाद को बंगाल से बाहर भेज दिया।

इसके पश्चात् आजाद 4 वर्षों तक जेल में रहे। 1920 ई. में वे गांधीजी और तिलक के सम्पर्क में आए तथा सक्रिय रूप से असहयोग आन्दोलन व खिलाफत आन्दोलन में शामिल हो गए। वे गांधीजी के स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग और स्वराज्य जैसे आदर्शों के प्रबल समर्थक थे। लेकिन मुस्लिम लीग ने जब गांधीजी के सत्याग्रह की निन्दा की, तो उन्होंने मुस्लिम लीग हमेशा के लिए छोड़ दी। उनकी लोकप्रियता इतनी थी कि 35 वर्ष की उम्र (1923 ई.) में वे कांग्रेस के अब तक के सबसे युवा अध्यक्ष बन गए। इसके बाद वे लगातार राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े रहे।

1940 ई. में लाहौर में हुए अधिवेशन में पाकिस्तान ने जब मुस्लिम लीग की मांग रखी, मौलाना आजाद उस समय कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए थे। उन्होंने जिन्ना के दो राष्ट्र सिद्धान्त को अस्वीकृत कर दिया। मौलाना आजाद ने यह मानने से इन्कार कर दिया कि मुस्लिम और हिन्दू 2 अलग राष्ट्र हैं। इस्लाम धर्म के इस विद्वान ने इस्लाम के आधार पर बनने वाले देश को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने सभी मुसलमानों से हिन्दुस्तान में ही रहने की बात कही। 1940-1946 ई. तक वे कांग्रेस के अध्यक्ष रहे तथा यही समय कांग्रेस के समूचे इतिहास में सबसे ज्यादा कठिन समय था। मौलाना आजाद ही ऐसे मुस्लिम नेता थे, जिन्होंने भारत विभाजन का विरोध किया था। नेहरू, पटेल व गांधी के विभाजन स्वीकार करने के बाद उन्होंने भी इस कटु सत्य को स्वीकार किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् वे देश के पहले शिक्षा मंत्री बने और उन्होंने 11 वर्षों तक राष्ट्र की शिक्षा नीति का मार्गदर्शन किया। भारत के पहले शिक्षा मंत्री बनने पर उन्होंने निःशुल्क शिक्षा, भारत की शिक्षा पद्धति, उच्च शिक्षा संस्थाओं की स्थापना के लिए कार्य किया। मौलाना आजाद को ही भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT) और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना का श्रेय जाता है। इसके अलावा शिक्षा व संस्कृति को विकसित करने के लिए उन्होंने संगीत नाटक अकादमी (1953 ई.), साहित्य अकादमी (1954 ई.) व ललीत कला अकादमी (1954 ई.) की स्थापना की। 22 फरवरी, 1958 ई. को उनका देहावसान हो गया।

उनकी मृत्यु के समय उनके पास कोई संपत्ति नहीं थी और न ही कोई बैंक खाता था। उनकी निजी अलमारी में कुछ सूती अचकन, एक दर्जन खादी के कुर्ते पायजामे, दो जोड़ी सैंडल, एक पुराना ट्रैसिंग गाऊन और एक उपयोग किया हुआ ब्रश मिला, किन्तु वहां अनेक दुर्लभ पुस्तकें थीं, जो अब राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। मौलाना आजाद जैसे व्यक्तित्व कभी-कभी ही जन्म लेते हैं। अपने सम्पूर्ण जीवन में वे भारत व इसकी सांस्कृतिक एकता के लिए ही प्रयासरत रहे। इन सबसे बढ़कर मौलाना आजाद धार्मिक व्यक्ति होते हुए भी सही अर्थों में भारत की धर्म-निरपेक्ष सभ्यता के प्रतिनिधि थे। 1992 ई. में उन्हें मरणोपरान्त भारत रत्न से सम्मानित किया गया तथा उनके जन्म दिवस 11 नवम्बर को राष्ट्रीय शिक्षा दिवस घोषित किया गया।

□ रचनाएं

- | | | |
|---------------------------|--------------------|--------------------|
| 1) इंडिया विन्स फ्रीडम। | 2) तर्जमन-ए-कुरान। | 3) गुबारे-ए-खातिर। |
| 4) अंजमने-तारीकी-ए-हिन्द। | 5) हमारी आजादी। | 6) तजकरा। |
| 7) हिज्र-ओ-वसल। | 8) खतबात-ए-आजाद। | |

□ दार्शनिक एवं धार्मिक विचार

आजाद दार्शनिक दृष्टिकोण से एक ईश्वर की अवधारणा में विश्वास करते थे। उनका मानना था कि सभी धर्म तात्विक व आन्तरिक रूप से एक हैं, बाह्य रूप में उनकी अभिव्यक्तियां भले ही अलग-अलग हो। दयानन्द सरस्वती की तरह उनका भी मानना था कि जिस प्रकार सभी नदियां अलग-अलग मार्गों से होते हुए अन्ततः समुद्र में मिलती हैं। ठीक उसी प्रकार सभी धर्म के मार्ग अलग-अलग हो सकते हैं, किन्तु लक्ष्य सार्वभौमिक ईश्वर की प्राप्ति ही है। आजाद का कहना था कि ईश्वर का स्वरूप वृक्ष रूपी जड़ के समान एक ही है, जबकि विभिन्न पत्तियों एवं शाखाओं की भाँति धर्म अलग-अलग हो सकते हैं। आजाद भी हिन्दू दर्शन की तरह कर्म सिद्धान्त व पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे। वे भी अन्य भारतीय दार्शनिकों एवं चिन्तकों की तरह धर्म का अन्तिम उद्देश्य मानव कल्याण ही मानते थे।

आजाद सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलन की देवबंद शाखा (Deoband School) से जुड़े थे। यह एक पुनरुद्धार आन्दोलन था, जिसके 2 मुख्य उद्देश्य थे -

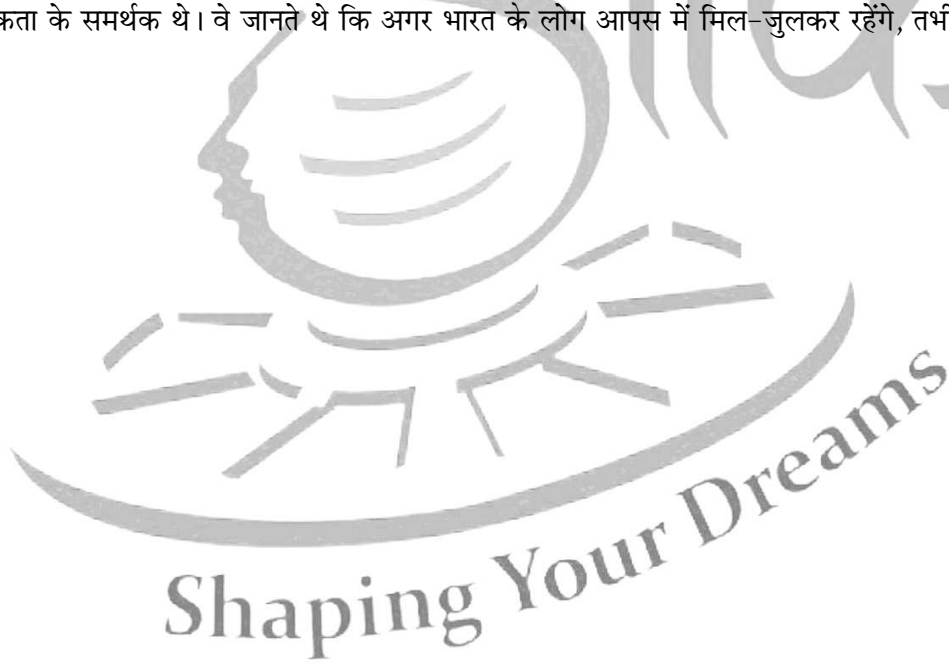
- 1) मुसलमानों में कुरान तथा हदीश की शुद्ध शिक्षा का प्रसार करना।
- 2) विदेशी शासकों के विरुद्ध जेहाद की भावना को जीवित रखना।

यह आन्दोलन अंग्रेजी शिक्षा व पाश्चात्य संस्कृति का पूर्ण रूप से विरोध करता था। इस आन्दोलन का मानना था कि शिक्षा मौलिक रूप से इस्लाम धर्म के अनुरूप दी जानी चाहिए। देवबंद आन्दोलन अलीगढ़ आन्दोलन के विपरीत था। देवबंद आन्दोलन ने कांग्रेस की स्थापना का समर्थन तथा भारत विभाजन का विरोध किया था।

किन्तु यहां उल्लेखनीय है कि आजाद का दृष्टिकोण समन्वयवादी था। वे देवबंद आन्दोलन की तरह इस्लामिक शिक्षा के समर्थक तो थे, किन्तु विज्ञान व पाश्चात्य शिक्षा विरोधी नहीं थे। वे विज्ञान एवं तर्क को धर्म विरोधी नहीं मानते थे, बल्कि दोनों को परस्पर पूरक मानते थे। वे सर सैयद अहमद के विचारों का सम्मान करते थे तथा आधुनिक शिक्षा पर बल देते थे।

□ राजनीतिक विचार

राजनीतिक दृष्टिकोण से आजाद लोकतंत्र, समाजवाद, धर्म निरपेक्षतावाद के समर्थक थे। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान आजाद पर गांधी के राष्ट्रवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा। गांधी की तरह उनकी भी सत्य व अहिंसा के प्रति निष्ठा थी तथा साधन व साध्य की पवित्रता में विश्वास करते थे। आजाद एक वास्तविक मुस्लिम राजनीतिक चिन्तक थे, जो मुस्लिमों की समस्याओं का यथार्थवाद के आधार पर चिन्तन करते थे। यहां उल्लेखनीय है कि आजाद ने भारत विभाजन का समर्थन कभी-भी नहीं किया था। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। वे जानते थे कि अगर भारत के लोग आपस में मिल-जुलकर रहेंगे, तभी एक मजबूत राष्ट्र बनाया जा सकता है।



IAS

महात्मा गांधी Mahatma Gandhi

मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को गुजरात के पोरबंदर में हुआ था। इनके पिता का नाम करमचन्द और माता का नाम पुतलीबाई था। गांधीजी के पिता पोरबंदर राजकोट तथा बांकानेर रियासतों के दीवान रहे। इनकी प्राथमिक शिक्षा राजकोट में हुई तथा 1881 में इनका विवाह कस्तुरबा के साथ हुआ। आगे 1888 में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की और उच्च शिक्षा के लिए भावनगर गए, लेकिन वे वहां पर जम नहीं पाए। उस समय उनके एक पारिवारिक मित्र ने गांधीजी को इंग्लैण्ड जाने का परामर्श दिया।

गांधीजी 4 सितम्बर, 1888 में बैरिस्टर की पढ़ाई हेतु बम्बई से इंग्लैण्ड गए। 1891 में उन्होंने इंग्लैण्ड से बैरिस्टरी पास की और पहले राजकोट और फिर बम्बई में वकालत करने लगे। 1893 में उन्हें दक्षिणी अफ्रीका के एक व्यापारिक कंपनी से निमंत्रण मिला और वे वहां चले गए, वहां उन्होंने गोरे लोगों द्वारा काले लोगों से रंग-भेद की नीति के विरुद्ध विरोध प्रकट किया। फिर नटाल भारतीय कांग्रेस बनाई और जेल गए। इसके अलावा उन्होंने एक टॉलस्टॉय फॉर्म की स्थापना की। उन्होंने एशियाटिक (काले लोगों का) अधिनियम और ट्रांसवाल देशान्तरवास अधिनियम (Transvaal Immigration Act) के विरुद्ध भी विरोध प्रकट किया और अपना अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारंभ किया। दक्षिण अफ्रीका की सरकार को उनकी बात माननी पड़ी और 1914 में भारतीयों के विरुद्ध अधिकतर कानून रद्द कर दिए गए।

9 जनवरी, 1915 को गांधीजी भारत लौट आए। यहां वे कुछ समय तक भारतीय स्थिति और राजनीति का अध्ययन करते रहे। इसके पश्चात् उन्होंने चम्पारण, अहमदाबाद व खेड़ा में किए सत्याग्रह के साथ ही सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया। उन्होंने अपने अहिंसक साधनों से भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को एक नई दिशा दी। गांधीजी के नेतृत्व में 1920 में असहयोग आन्दोलन, 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन और 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन किए गए।

भारत विभाजन के फलस्वरूप हुए साम्प्रदायिक दंगों से गांधीजी बहुत आहत हुए थे। उन्होंने साम्प्रदायिक दंगों को रोकने का भरपूर प्रयास किया और इस धार्मिक उन्माद को रोकने के लिए 2 अक्टूबर, 1947 से आमरण अनशन शुरू किया था, किन्तु विभिन्न समुदायों के नेताओं के अनुरोध पर गांधीजी ने तीसरे दिन ही उपवास तोड़ दिया। 30 जनवरी, 1948 को बिडला भवन के प्रार्थना सभा के दौरान नाथूराम गोडसे ने उनकी हत्या कर दी।

महात्मा गांधी का नैतिक दर्शन

गांधीजी के दर्शन को हम व्यावहारिक आदर्शवाद की संज्ञा दे सकते हैं। गांधीजी को आदर्शवादी इसलिए मानते हैं, क्योंकि उन्होंने भारतीय आध्यात्मिक विचारों को अपने जीवन एवं दर्शन का केन्द्र बनाया है। व्यावहारिक आदर्शवाद से तात्पर्य आदर्श को जीवन में, समाज में, राजनीति में किस तरह से प्रयोग किया जाता है। महात्मा गांधी पर मुख्यतः वेदान्त, ईसाई धर्म, भगवद्गीता, टालस्टाय तथा बौद्ध दर्शन का प्रभाव है।

गांधीजी नव्य वेदान्त में विश्वास करते थे। वे जगत को भ्रम मानने के स्थान पर ईश्वर की अभिव्यक्ति मानते हैं। प्रकृति के कण-कण में ईश्वर व्याप्त है और इस रूप में प्रत्येक मानव में भी ईश्वर है। अतः अन्य नव्य वेदान्त दार्शनिकों की तरह उनका भी मानना है कि मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है। गांधीजी का मत है कि ईश्वर की आवश्यकता मात्र बौद्धिक नहीं है, बल्कि जीवन में शांति व संबल के लिए भी ईश्वर की आवश्यकता है, लेकिन यह तभी संभव है, जब मनुष्य का ईश्वर के साथ संबंध हो और ईश्वर व्यक्तिपूर्ण हों। गांधीजी ईश्वर भक्ति एवं उसकी अनुकम्पा को ही मोक्ष का साधन मानते हैं।

♦ सत्य ही ईश्वर है

गांधीजी कहते हैं कि सत्य ही ईश्वर है। उन्होंने सत्य को ईश्वर से ज्यादा महत्व इसलिए दिया है, क्योंकि -

- 1) अकसर कट्टर धार्मिकता के कारण समाज में दंगे होते हैं। इस कारण गांधीजी ने ईश्वर के बदले सत्य को मान्यता देना अधिक उचित समझा।
- 2) विवेक (तार्किक व्यक्ति) ईश्वर की सत्ता में संदेह कर सकता है किन्तु सत्य की सत्ता में नहीं, क्योंकि विवेक का उद्देश्य ही सत्य की प्राप्ति है। जो मानव की सेवा नहीं कर सकता और वह सही अर्थ में धर्मात्मा भी नहीं बन सकता।

गांधीजी के अनुसार धर्म का उद्देश्य सत्य या ईश्वर की प्राप्ति है। सत्य या ईश्वर को प्राप्त करने के लिए मानव को अपनी तृष्णा, वेदना से ऊपर जाना होगा। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ईश्वर की सृष्टि और उनके द्वारा रचित मानव की सेवा आवश्यक है। यही सबसे बड़ी नैतिकता है।

□ पंचव्रत का सिद्धान्त

♦ अहिंसा

गांधीजी के अनुसार अहिंसा सर्वोत्तम सद्गुण है। अहिंसा के 2 पक्ष हैं - निषेधात्मक एवं भावात्मक। निषेधात्मक अर्थ में अहिंसा का एक अर्थ है - हिंसा का निषेध, अर्थात् - मन, वचन एवं कर्म से किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुंचाना। जबकि भावात्मक अर्थ में अहिंसा का अर्थ है - सभी प्राणियों के प्रति प्रेम, दया, सहानुभूति एवं सेवाभाव रखना शामिल हैं।

गांधीजी जैनियों की तरह (अतिवादी) अहिंसा का शाब्दिक एवं संकीर्ण अर्थ न लेकर उसका व्यावहारिक एवं व्यापक अर्थ लेते हैं। वे अहिंसा कमजोरी की निशानी नहीं, बल्कि शक्ति का परिचायक मानते हैं। उनका मानना है कि अहिंसा और कायरता समान नहीं है। अगर हमें हिंसा और कायरता में से किसी एक को ही चुनना हो, तो हिंसा को चुनना बेहतर है। अहिंसा में नैतिक व अध्यात्मिक बल होता है, जबकि कायरता विवशता या दुर्बलता से पैदा होती है।

♦ सत्य

गांधीजी ने सत्य को 2 अर्थों में समझाया है -

1) **तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण** - जिसे हम चरमसत्ता कहते हैं (सत्य ही ईश्वर है)।

2) **नैतिक दृष्टिकोण** - जिसे हम मूल्य के अर्थ में स्वीकार करते हैं।

नैतिक दृष्टिकोण से गांधीजी के अनुसार सत्य बोलने का अर्थ है, वही बोलना जो शुभ है। जो तथ्य जिस रूप में देखा, सुना, जाना या अनुभव किया गया है, उसे उसी रूप में (कोई परिवर्तन या संशोधन किए बिना) व्यक्त करना ही सत्य है। यदि मनुष्य अपने व्यावहारिक जीवन में सत्य का दृढ़तापूर्वक पालन करे, तो उसे इस समस्या का समाधान स्वतः प्राप्त हो जाएगा कि किसी कठिन अवसर पर वास्तव में उसका क्या कर्तव्य है।

गांधीजी अहिंसा की भाँति सत्य को भी बहुत व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हैं और केवल वाणी द्वारा ही नहीं, बल्कि विचार तथा कर्म द्वारा भी सदैव सत्य के अनुसार आचरण करना अनिवार्य मानते हैं। उनका मत है कि सत्य के अनुसार आचरण करने के लिए अहिंसा का निष्ठापूर्वक पालन करना भी बहुत आवश्यक है।

♦ अस्तेय

गांधीजी ने अस्तेय को 2 अर्थों में समझाया है -

1) **साधारण अर्थ** - चोरी न करना।

2) **व्यापक अर्थ** - किसी को ऐसी वस्तु से वंचित न करना, जिस पर वस्तुतः उसका अधिकार है।

गांधीजी के अनुसार चोरी 3 प्रकार से हो सकती है - भौतिक, मानसिक एवं वैचारिक। जो व्यक्ति सत्य एवं अहिंसा का पालन करेगा, वह स्वाभाविक रूप से अस्तेय का पालन भी करेगा। क्योंकि चोरी करना कहीं न कहीं किसी प्रकार से मानसिक हिंसा है।

♦ अपरिग्रह

गांधीजी ने आवश्यकता से अधिक संचय न करने को अपरिग्रह की संज्ञा दी है। गांधीजी का कहना है कि अधिक से अधिक चीजों को रखने की प्रवृत्ति अशुभ है। हर मानव को ऐसी आदत डालनी चाहिए कि जो उसके पास हो, उसी में जीवन निर्वाह करें। परिग्रह वस्तुतः भविष्य की दृष्टि से किया जाता है, लेकिन गांधीजी कहते हैं कि मानव को रोज पैदा करना और उसका उपभोग करना चाहिए।

♦ ब्रह्मचर्य

गांधीजी के अनुसार ब्रह्मचर्य का सामान्य अर्थ है - मन, वचन तथा कर्म से इन्द्रियों पर संयम रखना। किन्तु व्यापक अर्थ में ब्रह्मचर्य का अर्थ है - ब्रह्म की - सत्य की - साधना में चर्या, अर्थात् - ब्रह्मचर्य वह आचरण है, जो ब्रह्म की खोज के लिए किया जाए।

□ सत्याग्रह

सत्याग्रह का तात्पर्य है - सत्य के प्रति आग्रह। गांधीजी सत्य एवं अहिंसा के पोषक थे। उन्हें पता था कि सत्य और अहिंसा का जीवन में प्रयोग आवश्यक है, अन्यथा इसका मात्र सैद्धान्तिक महत्व रह जाएगा। अहिंसा को गांधीजी ने अपने राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में अपनाया और उसी का नाम सत्याग्रह दिया। गांधीजी ने सत्याग्रह को एक आध्यात्मिक शक्ति के रूप में समझा है।

गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह का पालन वही कर सकता है, जो हिंसा की भावना को दमित कर दे। सत्याग्रह एक ऐसी शक्ति है, जिसे व्यक्ति या समुदाय इस्तेमाल कर सकता है, लेकिन कमजोर व्यक्ति सत्याग्रह नहीं कर सकता। वही व्यक्ति सत्याग्रह कर सकता है, जिसमें आत्मशक्ति हो, नैतिक बल हो। अन्याय, हिंसा और अत्याचार का सामना करने के लिए गांधीजी ने अहिंसक विधि का प्रतिपादन किया, जिसे सत्याग्रह नाम दिया गया। गांधीजी सत्याग्रह के लिए पुनर्जन्म को आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार सत्य का शोधक यह मानकर चलता है कि आत्मा अमर है और यदि इस जन्म में सत्य की विजय नहीं होती, तो दूसरे जन्म में अवश्य होगी।

सत्याग्रह की मान्यता है कि मनुष्य वस्तुतः अच्छाइयों से युक्त है, क्योंकि उसमें देवत्व का अंश है। अशुभ या बुराई इसलिए वर्तमान है क्योंकि वह व्यक्ति क्रोध, लोभ, मोह से ग्रस्त है। आवश्यकता इस बात की है कि उस व्यक्ति के अन्दर की वर्तमान अच्छाइयों को उभारा जाए, जिससे वह स्वयं क्रोध, लोभ, मोह से मुक्त होकर सत्य को सत्य के रूप में समझे और अपनी कमियों के प्रति सचेत हों। इसलिए गांधीजी ने सत्याग्रह का आधार मनुष्य के अन्दर वर्तमान अच्छाई को माना है।

सत्य के लिए सत्याग्रही स्वयं कष्ट झेलता है तथा अपने विरोधी को बाध्य करता है कि वह सत्य को समझे। यही कारण है कि सत्याग्रह को 'आवर्तन विधि' कहा गया है। कुछ आलोचकों ने सत्याग्रह को 'बाध्यता की विधि' कहा है लेकिन बाध्यता के नियम में हिंसायुक्त है। सत्याग्रह का ध्येय दोषी व्यक्ति को सही रास्ते पर लाना है, इसलिए उसका आग्रह हृदय से सम्बन्धित है और इसका उद्देश्य हृदय परिवर्तन से है।

♦ गांधीजी द्वारा सत्याग्रह एवं निष्क्रिय विरोध में अन्तर

- 1) सत्याग्रह निष्क्रियावस्था नहीं, बल्कि यह हिंसा से भी अधिक सक्रियावस्था है।
- 2) निष्क्रिय विरोध में शक्ति का प्रयोग होता है। अतः हिंसा को वर्जित नहीं मानता है, बल्कि सत्याग्रह किसी भी परिस्थिति में हिंसा का प्रयोग वर्जित मानता है।
- 3) निष्क्रिय विरोध में विरोधी के मन में दहशत पैदा की जाती है, लेकिन सत्याग्रह से विरोधी के मन में किसी तरह का आतंक नहीं भरा जाता।
- 4) निष्क्रिय विरोध में हम कानून भंग कर देते हैं। फलस्वरूप इसमें कानून के प्रति वफादारी नहीं रहती। दूसरी तरफ सत्याग्रह में कानून के प्रति एक आदर भाव रहता है। सत्याग्रह ईश्वर के नियम को सबसे उच्च मानता है।
- 5) निष्क्रिय विरोध विरोधी को कोई विशेष कार्य करने के लिए बाध्य कर देता है। इसी कारण इसमें बाध्यता का भाव छिपा रहता है। इसमें हृदय परिवर्तन की बात नहीं होती, जबकि सत्याग्रह सदा दूसरे व्यक्ति के हृदय को छूता है और उसका उद्देश्य व्यक्ति में परिवर्तन लाना रहता है।
- 6) निष्क्रिय विरोध में प्रेम का उपर्युक्त स्थान नहीं रहता और सत्याग्रह में घृणा का स्थान नहीं रहता।

♦ सत्याग्रह की विशेषताएं

- 1) सत्याग्रही को अपने कार्य एवं उद्देश्य के प्रति ईमानदार रहना चाहिए।
- 2) सत्याग्रही को खुले दिमांग का एवं सहृदयी होना चाहिए, हृदय परिवर्तन तभी संभव है।
- 3) सत्याग्रही के लिए सत्य ही उसका मालिक एवं अन्तरात्मा उसकी निर्देशक होनी चाहिए।
- 4) सत्याग्रही को निर्भय एवं निःस्वार्थी होना चाहिए।
- 5) सत्याग्रही को विनम्र होना चाहिए।
- 6) सत्याग्रही को मन, वचन एवं कर्म से अहिंसक होना चाहिए।
- 7) सत्याग्रही को अपने व्यवहार एवं विचार में दृढ़ होना चाहिए।
- 8) सत्याग्रही के लिए यह भी अनिवार्य है कि उसके विचार तथा कर्मों में समरूपता हो।

- 9) गांधीजी ने सत्याग्रही के लिए अपने स्वार्थमूलक प्रवृत्तियों पर रोक लगाने की अनुशंसा की है।
- 10) गांधीजी की यह भी अनुशंसा है कि सत्याग्रही को अपने व्यक्तित्व में अनिवार्य सद्गुणों को आत्मसात करना है, जैसे - सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि।
- 11) सत्याग्रही में सहिष्णुता का गुण होना भी आवश्यक है।
- 12) सत्याग्रही के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपने जीवन में विभिन्न पाबंदियों का पालन करें, जैसे - समय, व्यवस्था।
- 13) सत्याग्रही को ईश्वर में अटूट आस्था रखनी चाहिए, क्योंकि सत्य के ईश्वर में आस्था रहने पर ही सत्य का आग्रह सफल एवं सार्थक होता है।

♦ सत्याग्रह की विधियां

- | | | | |
|-------------|------------------------|---------------------------|------------------------------|
| 1) बातचीत। | 2) मध्यस्थता मांग। | 3) आन्दोलन एवं प्रदर्शन। | 4) आर्थिक बहिष्कार। |
| 5) असहयोग। | 6) नागरिक अवज्ञा। | 7) सीधी प्रतिवाद क्रिया। | 8) कानून की सामूहिक अवज्ञा। |
| 9) उपवास। | 10) निष्क्रिय विरोध। | 11) हड़ताल। | 12) प्रवेश में अवरोध। |
| 13) धरना। | 14) कर आदि नहीं देना। | | |

□ साधन-साध्य सम्बन्ध

नैतिक दर्शन में साधन एवं साध्य को लेकर एक महत्वपूर्ण नैतिक प्रश्न उत्पन्न होता है कि साधन, साध्य से स्वतंत्र है या साध्य पर निर्भर? कुछ दार्शनिकों (मार्क्स, फ्रांसीवाद व नाजीवाद) का मानना है कि यदि साध्य नैतिक है, तो वह साधन को भी नैतिक बना देता है। यदि साध्य उचित है, तो फिर उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार के साधन प्रयोग करना अनैतिक नहीं है। वहीं उपयोगितावादियों का मानना है कि अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख साधने के लिए कुछ लोगों को कुछ कष्ट उठाना पड़े, तो यह अनैतिक नहीं है। किन्तु गांधीजी ने इन सभी विचारों को अस्वीकार कर दिया। उनका मानना है कि साध्य अपने आप में कितना भी पवित्र क्यों न हो, वह साधन को पवित्र नहीं बना सकता।

गांधीजी के अनुसार साधन साध्य को पवित्र करता है। जैसा साधन होगा, वैसा ही लक्ष्य प्राप्त होगा। अनैतिक साधन को अपनाकर हम कभी-भी उच्च और पवित्र नैतिक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। गांधीजी कहते थे कि “मैं जानता हूँ कि अगर हम साधनों की चिन्ता रख सके, तो ध्येय की प्राप्ति निश्चित है। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि ध्येय की ओर हमारी प्रगति ठीक उतनी ही होगी, जितने हमारे साधन शुद्ध होंगे।” नैतिक दृष्टि से मनुष्य के लिए उच्चतम आदर्श यही है कि वह केवल शुभ साधनों द्वारा ही शुभ लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करे, क्योंकि यही व्यक्ति एवं समाज दोनों के कल्याण का उत्कृष्ट मार्ग है।

□ हृदय परिवर्तन

हृदय परिवर्तन गांधीजी के नैतिक दर्शन का एक प्रमुख विचार है, जो सत्याग्रह सिद्धान्त के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। मार्क्स का मानना है कि बिना भौतिक परिस्थितियों को बदले हम किसी विचार को नहीं बदल सकते हैं, जबकि इसके विपरीत महात्मा गांधी का मानना है कि किसी भी व्यक्ति के विचार बदले जा सकते हैं। यदि उसके पास उपयुक्त परिस्थितियां विद्यमान हो।

गांधीजी का मानना है कि प्रत्येक मनुष्य ईश्वर की अभिव्यक्ति है। यदि कोई व्यक्ति अनैतिक है, तो इसका अर्थ केवल इतना है कि उसके भीतर ईश्वरत्व का अंश दबा हुआ है। अगर उसे प्रेरणा और सही परिस्थितियां मिले, तो उसके भीतर छिपा हुआ ईश्वरत्व जाग जाएगा और वह समाज के लिए सकारात्मक योगदान करेगा (उदाहरणार्थ - अंगुलीमाल और अशोक)। इसी संदर्भ में गांधीजी ने कहा है कि पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।

□ सर्वोदय

सर्वोदय शब्द गांधी द्वारा प्रतिपादित एक ऐसा विचार है, जिसमें 'सर्वभूत हितेशताः' की भारतीय कल्पना, सुकरात की 'सत्य-साधना' और रस्किन की 'अंत्योदय की अवधारणा' सबकुछ सम्मिलित है। सर्वोदय एक सामासिक शब्द है, जो 'सर्व' और 'उदय' के योग से बना है। सर्व का अर्थ है - सभी का और सभी प्रकार से, जबकि उदय का अर्थ है - उत्थान या कल्याण, अर्थात् - सभी का सभी प्रकार से उत्थान या कल्याण। यहां पर सभी से आशय है स्त्री-पुरुष, अमीर-गरीब, सवर्ण-दलित आदि तथा सभी प्रकार से आशय है भौतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक आदि।

इस प्रकार सर्वोदय एक ऐसी विचारधारा है, जो समाज के सभी वर्गों के सभी पक्षों का कल्याण करना चाहती है। यहां उल्लेखनीय है कि सर्वोदय अन्य सभी विचारधाराओं से श्रेष्ठ एवं व्यापक है। जहां एक ओर उपयोगितावाद अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख की बात करता है, मार्क्सवाद सर्वहारा के हित की बात करता है, नारीवाद केवल नारियों के हित की बात करता है, वहीं गांधीजी सर्वोदय के माध्यम से सभी के हित की बात करते हैं। दूसरी ओर जहां अन्य विचारधाराएं केवल भौतिक कल्याण की बात करती हैं, वहीं गांधीजी सर्वोदय में भौतिक कल्याण के साथ-साथ आध्यात्मिक कल्याण को भी स्वीकार करते हैं।

गांधीजी के सर्वोदय के विरुद्ध यह कहा जाता है कि इस प्रकार की सार्वभौम समरूपता की अनुभूति तो इस जीवन में सम्भव नहीं है, किन्तु गांधीजी का कहना है कि वह तो आदर्श है, उसकी अनुभूति सम्भव भले न हो, वह प्रेरणा का आधार तो बन ही सकता है। गांधीजी कहते हैं कि नैतिक आध्यात्मिक जीवन का महत्व आदर्श को पा लेने में नहीं, बल्कि उसे पाने के लिए सतत प्रयत्न में है।

गांधीजी के सर्वोदय की अभिव्यक्ति उनके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक विचारों में दिखाई देती है। इन विचारों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देख सकते हैं -

♦ सामाजिक विचार

महात्मा गांधी पर वैष्णव परम्परा का प्रभाव था, जिसकी अभिव्यक्ति उनके सामाजिक विचारों में भी दिखाई देती है। गांधीजी सामाजिक रूप से वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हैं, किन्तु वे जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता को नहीं मानते थे। यहां यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि वर्ण व जाति दोनों बिल्कुल अलग-अलग संकल्पनाएं हैं। वर्ण एक कर्म आधारित व्यवस्था है, जबकि जाति एक जन्म आधारित व्यवस्था है। गांधीजी ने वर्णव्यवस्था के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिए हैं -

- 1) गांधीजी के अनुसार वर्ण व्यवस्था कार्य के आधार पर विभाजित एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें व्यक्ति की क्षमता के अनुरूप उसके कार्य को निर्धारित कर दिया जाता है। फलतः कार्यों के चयन को लेकर व्यक्ति में किसी प्रकार की दुविधा या संघर्ष की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है, जिससे एक स्थायी अहिंसक सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करने में सहायता मिलती है।
- 2) गांधीजी वर्णों के पहचान के संदर्भ में कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही कुछ प्राकृतिक क्षमताएं विद्यमान होती हैं। इसलिए क्षमता के रूप में वर्ण की पहचान का आधार जन्म है। आप जिस माता-पिता के वर्ण में जन्म लेंगे, वहीं प्राकृतिक क्षमताएं आपमें भी विद्यमान होंगी। इस प्रकार गांधीजी ने वर्ण व्यवस्था को वंशानुगत माना है। इस रूप में गांधीजी का यह भी मानना है कि हर व्यक्ति को अपने पैतृक व्यवसाय का ही चयन करना चाहिए।

गांधीजी के अनुसार वर्ण व्यवस्था के कई लाभ हैं, जैसे - वर्ण व्यवस्था से आजीविका सुनिश्चित होती है और प्रत्येक व्यक्ति अनावश्यक प्रतिस्पर्धा से बच जाता है। इससे उसे आध्यात्मिक विकास का मौका मिलता है। दूसरा, पैतृक व्यवसाय अपनाने से उसे किसी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है। तीसरा, पैतृक व्यवसाय को अपनाने से कार्य-कुशलता में वृद्धि होती है, जिससे सामाजिक-आर्थिक विकास होता है।

यहां उल्लेखनीय है कि गांधीजी वर्ण व्यवस्था के समर्थक होने के बावजूद किसी प्रकार के ऊँच-नीच, छूआ-छूत, अस्पृश्यता व श्रेणीकरण में विश्वास नहीं करते हैं। उनका मानना है कि भले ही सभी व्यक्ति अलग-अलग क्षमताओं के आधार पर अलग-अलग कार्य करते हो, किन्तु सभी वर्णों के कार्यों का महत्व बराबर है। उनमें किसी भी प्रकार का श्रेणीकरण सम्भव नहीं है। गांधीजी ने यहां तक कहा है कि एक वकील व नाई का वेतन समान होना चाहिए।

♦ राजनीतिक विचार

गांधीजी ने किसी व्यवस्थित राजनीतिक दर्शन का प्रतिपादन नहीं किया। उन्होंने अपने युग की यथार्थ राजव्यवस्थाओं का मूल्यांकन करके उनकी कमियों को उजागर किया तथा भारत के संदर्भ में अहिंसक राज्य का चित्र खींचा। गांधीजी के राज्य के विषय में अराजकतावाद में विश्वास करते हैं। गांधीजी के अनुसार वर्तमान राज्य बल एवं शक्ति पर आधारित है। इसका मूल हिंसा है। राज्य अपनी आज्ञाओं का पालन पुलिस बल, सैन्य शक्ति एवं अदालतों के द्वारा करता है और इन सब का आधार दण्ड का भय एवं शक्ति ही होता है। यही शक्ति व हिंसा मनुष्यों की स्वतंत्रता में बाधक है, जिसके परिणामस्वरूप नागरिकों का स्वतंत्र नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास नहीं हो पाता है।

अतः गांधीजी सर्वोदय के आदर्श के रूप में एक राज्यविहीन शासन (रामराज्य) की चर्चा करते हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का शासक उसकी आत्मा होती है। इसीलिए गांधीजी थोरो के इस विचार का समर्थन करते हैं कि सर्वोत्तम सरकार वह है, जो सबसे कम शासन करती है। लेकिन गांधीजी वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए राज्य के उन्मूलन के पक्ष में नहीं हैं, क्योंकि मानव अभी इतना नैतिक रूप से विकसित नहीं हो पाया है कि वह स्वयं पर शासन कर सके। अतः वे राज्य को एक आवश्यक बुराई कहते हैं।

गांधीजी वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए राज्य के अस्तित्व की बात तो करते हैं, किन्तु वे इसे कुछ संशोधन के साथ स्वीकार करते हैं। जैसे - उनका मानना है कि **राज्य का कार्यक्षेत्र न्यूनतम** हो, सर्वोत्तम सरकार वही है, जो कम से कम शासन करे और व्यक्ति को अधिक से अधिक स्वतंत्रता प्रदान करे। इसके लिए गांधीजी **शक्ति के विकेन्द्रीकरण** पर बल देते हैं, जो **पंचायती राज्य व स्वराज** के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। यहां स्वतंत्रता का आशय केवल राजनीतिक नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक स्वतंत्रता से भी है।

♦ गांधीजी का रामराज्य

गांधीजी रामराज्य की अवधारणा का प्रतिपादन करते हैं, जो एक राज्यविहीन लोकतांत्रिक व्यवस्था होगी। यह एक विकेन्द्रीकृत सामाजिक व्यवस्था होगी, जिसमें जीवन स्वचालित एवं स्वनियमित होगा, अर्थात् - व्यक्ति की अन्तरात्मा बाह्य नियंत्रणों से पूर्णतः मुक्त होगी। यह रामराज्य अहिंसा पर आधारित होगा, जिसमें छोटे-छोटे जनसमूह ग्रामों में रहते हैं और उनके संगठन व शांतिपूर्ण अस्तित्व की मुख्य शर्तें ऐच्छिक सहयोग से होंगी। इसमें यदि राज्य द्वारा बनाए गए कानून जनता की नैतिक भावनाओं के विरुद्ध होंगे, तो लोगों का यह अधिकार एवं कर्तव्य भी होगा कि वे अहिंसात्मक ढंग से उनका विरोध करें। वस्तुतः रामराज्य एक प्रकार से आत्मा का शासन है। गांधीजी ने इसे प्रबुद्ध अराजकता की स्थिति कहा है।

♦ आर्थिक विचार

गांधीजी के आर्थिक विचारों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझ सकते हैं -

- 1) **रोटी के लिए श्रम सिद्धान्त** - गांधीजी ने श्रम को अत्यधिक महत्व दिया है। वे मानते हैं कि जो श्रम नहीं करता, उसे खाने का अधिकार नहीं है। वे श्रम किए बिना खाने को चोरी मानते हैं। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादन हेतु कुछ न कुछ श्रम करना चाहिए। वह इससे स्वस्थ रहेगा और अपनी आजीविका भी अर्जित करेगा। गांधीजी का यहां तक मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन कुछ समय चरखा चलाना चाहिए, जिससे उसका आध्यात्मिक कल्याण होगा।
- 2) **कुटीर उद्योगों का समर्थन** - गांधीजी समाज की इकाई के रूप में स्वायत्त एवं आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था के समर्थक हैं। अतः वे ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों का समर्थन करते हैं। गांधीजी अत्यधिक औद्योगीकरण को अनुचित मानते थे। वह केवल ऐसी मशीनों का प्रयोग उचित मानते थे, जिनका प्रयोग जनसाधारण के लाभ हेतु किया जा सके। किन्तु वह उन क्षेत्रों में भारी उद्योगों के स्थापना के विरोधी हैं, जिसमें मानव श्रम का उपयोग किया जा सकता है।
- 3) **स्वदेशी पर बल** - गांधीजी का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वदेश में निर्मित वस्तुओं का ही प्रयोग करना चाहिए। स्वदेशी के माध्यम से वह समानता की स्थापना करते हैं, क्योंकि यदि सभी स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करेंगे, तो सबका रहन-सहन समान हो जाएगा और सामाजिक विषमता समाप्त हो जाएगी। इसके अलावा स्वदेशी से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी और नागरिकों का सम्मान बढ़ेगा।

4) **न्यासधारिता (ट्रस्टीशिप) का सिद्धान्त** - गांधीजी ने सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना हेतु ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इसके माध्यम से वह समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता की समस्या का समाधान करने का प्रयास करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार गांधीजी निजी सम्पत्ति को मान्यता देते हैं, किन्तु वे कहते हैं कि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के उतने ही भागों का उपयोग करेगा, जितनी उसे आवश्यकता है। यदि किसी के पास आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति है, तो वह अपनी अतिरिक्त सम्पत्ति का केवल संरक्षक (ट्रस्टी) के रूप में भूमिका का निर्वहन करेगा, जो कि सामाजिक हित में प्रयोग होगी। वस्तुतः ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के पीछे अपरिग्रह की अवधारणा विद्यमान है।

गांधीजी के शब्दों में “**ट्रस्टी का जनता के अतिरिक्त अन्य कोई उत्तराधिकारी नहीं होगा।**” इस प्रकार गांधीजी अनर्जित आय तथा उत्तराधिकार के परिणामस्वरूप बढ़ने वाली अमीरी को रोकने के लिए ट्रस्ट की सम्पत्ति पर राज्य का नियंत्रण स्थापित किए जाने का समर्थन करते थे। सम्पत्ति के अधिकार का औचित्य केवल सर्वोदय के आधार पर ही निर्धारित किया जा सकता है। अतः उनके अनुसार यदि सम्पत्ति का समान वितरण संभव नहीं हो पाए, तो सम्पत्ति का न्यायोचित वितरण किया जाना चाहिए।

यहां उल्लेखनीय है कि साम्यवाद भी यह मानता है कि समस्त सम्पत्ति पर समाज का अधिकार है तथा उसका प्रयोग सामाजिक हित में किया जाना चाहिए। किन्तु यहां साम्यवाद पूंजीपतियों के विनाश के लिए शक्ति एवं हिंसा का प्रयोग करना चाहता है। वहीं गांधीजी सर्वोदय के माध्यम से पूंजीपतियों का हृदय परिवर्तन करना चाहते हैं। वह वर्ग संघर्ष की बजाय वर्ग समन्वय में विश्वास करते थे।

♦ धर्म

गांधीजी के धर्म को नैतिक धर्म की संज्ञा दी गई है। कोई भी व्यक्ति निर्दयी, असत्य एवं हिंसात्मक होकर यह दावा नहीं कर सकता है कि उसके साथ ईश्वर है। जैसे ही हम नैतिकता को खो देते हैं, वैसे ही हम धर्मच्युत हो जाते हैं। गांधीजी भी वैष्णव परम्परा को मानते हुए धर्म के लिए ईश्वर की आवश्यकता मानते हैं, किन्तु गांधीजी के धर्म में व वैष्णवों के धर्म में अन्तर यह है कि उन लोगों ने ईश्वर पर अधिक बल दिया है तथा गांधीजी ने ईश्वर से अधिक सत्य पर बल दिया है। सत्य के प्रति निष्ठा सबसे बड़ा धर्म माना है।

यद्यपि गांधीजी हिन्दू धर्म के अनुयायी थे, किन्तु उन्होंने हिन्दू धर्म को एक मानव धर्म के रूप में देखा, न कि अन्धविश्वास या धार्मिक हटवादिता के रूप में। उनका हिन्दुत्व प्रेम अन्य धर्मों का विरोधी नहीं है। गांधीजी सभी धर्मों का आदर करते थे तथा **सर्वधर्मसमभाव** में विश्वास करते थे। उनके अनुसार सभी धर्म भगवत् प्राप्ति के मार्ग हैं। अतः सभी धर्म समान हैं, कोई धर्म अन्य धर्म से श्रेष्ठतम नहीं है। इसीलिए वे धर्म परिवर्तन को अनुचित मानते थे।

गांधीजी ने धर्म को व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी बतलाया है, गांधीजी ने अपने सामाजिक एवं नैतिक जीवन में प्रार्थना को बहुत मूल्यवान माना है। तनाव की स्थिति में साधना व प्रार्थना करने से नई शक्ति का संचार होता है। गांधीजी के अनुसार प्रार्थना का उद्देश्य ईश्वर से कुछ मांगना न होकर सान्निध्य प्राप्त करना होता है। गांधीजी के अनुसार धर्म का मूल उद्देश्य है - “**मानव की सेवा करना।**”

डॉ. भीमराव अम्बेडकर
Dr. Bhimrao Ambedkar

भारत के संविधान निर्माता एवं दलितों के मसीहा डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को महू (मध्य प्रदेश) में हुआ था। उनके पिता का नाम रामजी मालोजी सकपाल और माता का भीमाबाई था। भीमराव अपने माता-पिता की 14वीं संतान थे। वे महार जाति के थे, जिसे लोग अछूत और बेहद निचला वर्ग मानते थे। अम्बेडकर के पिता ब्रिटिश भारतीय सेना की मऊ छावनी में सेवा में थे।

1894 में भीमराव अम्बेडकर के पिता सेवानिवृत्त हो गए और इसके 2 वर्ष बाद अम्बेडकर की मां की मृत्यु हो गई। अम्बेडकर का विवाह 14 वर्ष की आयु में रमाबाई के साथ हुआ। स्कूल में ही अम्बेडकर को जात-पात के कारण अत्यन्त अपमानित होना पड़ता था। उन्होंने शिक्षक महादेव अम्बेडकर के कहने पर अपने नाम से सकपाल हटाकर अम्बेडकर जोड़ लिया, जो उनके गांव के नाम अम्बावडे पर आधारित था।

रामजी सकपाल ने 1898 में पुनर्विवाह कर लिया और परिवार के साथ मुम्बई चले आए। 1907 में मैट्रिकुलेशन पास करने के बाद बड़ौदा महाराज की आर्थिक सहायता से वे एलफिन्सटन कॉलेज से 1912 में ग्रेजुएट हुए। कुछ साल बड़ौदा राज्य की सेवा करने के बाद उनको गायकवाड़-स्कालरशिप प्रदान किया गया, जिसके सहारे उन्होंने अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एमए (1915) किया। इसी क्रम में वे प्रसिद्ध अमेरिकी अर्थशास्त्री सेलिगमैन के प्रभाव में आए। सेलिगमैन के मार्गदर्शन में अम्बेडकर ने कोलंबिया विश्वविद्यालय से 1917 में पीएचडी की उपाधि प्राप्त कर ली। इसी वर्ष उन्होंने लंदन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स में दाखिला लिया, लेकिन साधनाभाव में अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पाए।

विदेश से पढ़ाई पूरी करके आने वाले अम्बेडकर के माथे से अछूत होने का कलंक नहीं मिटा। यही कारण था कि बड़ौदा के किसी भी होटल में उन्हें जगह नहीं मिली। उन्होंने बड़ौदा के महाराज के यहां नौकरी कर ली, किन्तु यहां के चपरासी भी उनसे दूर रहते थे। अम्बेडकर ने बम्बई में द स्मॉल होलिंग्स इन इंडिया एंड देअर रेमिडीज नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की। उन्होंने अपने जीवन का एकमात्र ध्येय हिन्दू समाज के अन्याय तथा अत्याचार का प्रतिकार करके अस्पृश्योद्धार करना निश्चित किया।

नवम्बर, 1918 में डॉ. अम्बेडकर बम्बई सिडेनहम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकॉनॉमिक्स में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए। जून, 1921 में लन्दन विश्वविद्यालय ने उन्हें एमएससी की उपाधि प्रदान की। इसके पश्चात् वे जर्मनी के बोन विश्वविद्यालय में पढ़ाई के लिए गए और वहां से डीएससी की उपाधि प्राप्त की। अप्रैल, 1923 में वे बेरिस्टर बने और उसी वर्ष से उन्होंने बम्बई उच्च न्यायालय में वकालत करना आरंभ कर दी।

इस तरह विपरीत परिस्थिति में पैदा होने के बावजूद अपनी लगन और कर्मठता से उन्होंने एमए, पीएचडी, एमएससी, बार-एट-लॉ की डिग्रियां प्राप्त की। इस तरह से वे अपने युग के सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे राजनेता एवं विचारक थे। अछूतों के जीवन से उन्हें गहरी सहानुभूति थी। उनके साथ जो भेदभाव बरता जाता था, उसे दूर करने के लिए उन्होंने आन्दोलन किया और उन्हें संगठित किया।

उन्होंने अपने अछूतोद्धार आन्दोलन का प्रारंभ 20 जुलाई, 1924 को बम्बई में बहिष्कृत हितकारणी सभा से किया। आगे चलकर अम्बेडकर ने अगस्त, 1930 को नागपुर में एक अखिल भारतीय दलित कांग्रेस का आयोजन किया। उन्होंने दलित वर्ग के लोगों को लोक सेवा में जाने हेतु प्रोत्साहित किया। उन्होंने दिसम्बर, 1930 में गोलमेल सम्मेलन में भाग लिया, जिससे विश्वभर में उनकी छवि भारत के अस्पृश्य लोगों के नेता के रूप में उभरकर आई। इसी सम्मेलन में अम्बेडकर द्वारा पृथक निर्वाचन तथा आरक्षित सीटों की मांग की गई, जो आगे चलकर गांधी व अम्बेडकर के मध्य संघर्ष का कारण बनी। 1932 में पुनः इस संबंध में समझौता हुआ, जिसके अनुसार पृथक निर्वाचनमण्डल के स्थान पर पृथक प्रतिनिधित्व पर सहमति बनी।

अक्टूबर, 1935 को अम्बेडकर को सरकारी लॉ कॉलेज, बम्बई का प्रधानचार्य नियुक्त किया गया और इस पद पर उन्होंने 2 वर्ष तक कार्य किया। इसी वर्ष उनकी पत्नी रमाबाई की मृत्यु हो गई। 1936 में अम्बेडकर ने स्वतंत्र लेबर पार्टी की स्थापना की, जो 1937 में केन्द्रीय विधानसभा चुनावों में 15 सीटें जीती। अम्बेडकर ने रक्षा सलाहकार समिति और वाइसराय की कार्यकारी परिषद् के लिए श्रम मंत्री के रूप में सेवारत रहे। वे नेहरू की अंतिम सरकार में विधि मंत्री बनाए गए।

अगस्त, 1947 में अम्बेडकर को संविधान सभा ने प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनाया। अप्रैल, 1948 को उन्होंने डॉ. शारदा कबीर, जो कि जाति से ब्राह्मण थी, से पुनर्विवाह किया। अन्ततः अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म में व्याप्त छूआछूत एवं अन्य कुरीतियों से खिन्न होकर नागपुर में अपने लगभग 2 लाख दलित अनुयायियों के साथ सामूहिक रूप से हिन्दू धर्म का त्यागकर बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। 6 दिसम्बर, 1956 को महान समाजसेवी, दलितों के उद्धारक और उनके हित चिंतक अम्बेडकर का निधन हो गया।

♦ डॉ. अम्बेडकर के विचार

अम्बेडकर एक आमूल परिवर्तनकारी विचारक थे, क्योंकि उनका जन्म निम्न वर्ण में हुआ था और उन्होंने जाति संबंधी अत्याचारों व शोषणों का स्वयं अनुभव किया था। इसलिए गांधीजी के परम्परावादी दृष्टिकोण के विपरीत अम्बेडकर के वर्णव्यवस्था पर विचार उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण के अनुरूप सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक कारकों की पहचान पर आधारित थे। अम्बेडकर का मानना है कि वर्ण व्यवस्था मूलतः ब्राह्मणवादी व्यवस्था के हितों पर टिकी हुई मानव द्वारा बनाई गई व्यवस्था है, जिसके मूल में ही शोषण, अन्याय व असमानता के विचार विद्यमान हैं। अतः इस व्यवस्था को समाप्त किए बिना हिन्दू समाज में समानता स्थापित करना संभव नहीं है।

अम्बेडकर ने अपने ऐतिहासिक दृष्टिकोण की समझ के आधार पर शुद्रों की संदर्भ में एक नई व्याख्या प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने दावा किया है कि मूलरूप से शुद्र सूर्यवंशीय क्षत्रिय थे, किन्तु राजाओं ने वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मणों का वर्चस्व मानने से इनकार कर दिया, जिसकी प्रतिक्रिया में ब्राह्मणों से उनका उपनयन संस्कार बंद कर दिया। परिणामस्वरूप संस्कार न होने के कारण समाज के अन्य लोगों ने इनसे सामाजिक संबंध तोड़ लिए और धीरे-धीरे सामाजिक व्यवस्था में यह वर्ग बाकी वर्गों के साथ त्याज्य एवं बहिष्कृत होता गया। इनके बहिष्करण की प्रक्रिया इतनी व्यापक हो गई कि बाकी वर्ग इनके साथ छूआछूत जैसी प्रथाओं का पालन करने लगे। साथ ही मुख्य सामाजिक कार्यों के इनके बहिष्करण ने इन्हें ऐसे कर्मों के लिए अपनी आजीविका चलाने के लिए मजबूर कर दिया, जो अमानवीय होने के साथ-साथ गरिमा व प्रतिष्ठा के विरुद्ध थे। इसके अलावा कुओं-तालाबों, सामूहिक कार्यक्रमों, उत्सवों, मंदिरों में आदि में इनकी भागीदारी को रोक दिया गया। इन सब प्रथाओं को स्वीकार्यता प्रदान करवाने के लिए गीता, मनुस्मृति, पुरुष सुक्त जैसे धर्म ग्रंथों का सहारा लिया गया। एक बार धर्म जैसे परम्परागत संस्था के साथ जुड़ जाने पर यह कुरीतियां इतनी प्रभावशाली हो गई कि इनका विरोध करना असंभव होता चला गया।

♦ वर्ण/जाति व्यवस्था का विरोध

अम्बेडकर ने निम्नलिखित तरीकों से वर्ण/जाति व्यवस्था का विरोध किया -

- 1) अम्बेडकर का मानना है कि वर्ण व्यवस्था गतिशीलता को रोकती है। यह रूचि और योग्यता के अनुसार नहीं, बल्कि जन्म के अनुसार श्रमिकों का विभाजन करती है।
- 2) वर्ण व्यवस्था सामाजिक विषमताओं को बढ़ाती है, जो कि आधुनिक व सभ्य समाज के लिए उचित नहीं। इसमें एक ओर शुद्रों को अमानवीय जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता है, उनकी परछाई को भी अशुभ माना जाता है, तो दूसरी ओर ब्राह्मणों को अधिक से अधिक विशेषाधिकार दिए जाते हैं।
- 3) जाति व्यवस्था बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम में भेद करके कुलीनवादी मानसिकता को बढ़ावा देती है। वर्णव्यवस्था ब्राह्मणों को बौद्धिक कार्य देती है और समाज में सबसे ऊँचा स्थान देकर बौद्धिक श्रम को सबसे श्रेष्ठ घोषित करती है। जबकि समाज के लिए शारीरिक व बौद्धिक श्रम दोनों आवश्यक हैं, अतः उन्हें समान महत्व मिलना चाहिए।
- 4) जाति व्यवस्था एक बंद प्रकार की व्यवस्था है, जो परावलम्बन को बढ़ावा देती है। जैसे - क्षत्रियों को केवल साहसिक कार्य देकर बाकी योग्यताओं से वंचित कर देती है।
- 5) जाति व्यवस्था मनुष्य की सृजनात्मक शक्तियों का नाश करती है तथा समाज में पृथकता व विघटन जैसे तत्वों को बढ़ावा देती है।

♦ वर्ण/जाति व्यवस्था उन्मूलन

गांधीजी भी जाति व्यवस्था में विश्वास नहीं रखते तथा उसके उन्मूलन पर बल देते थे, किन्तु गांधीजी इसका उन्मूलन लोगों के हृदय परिवर्तन के माध्यम से करना चाहते थे। इसके अलावा उन्होंने अन्तर्जातीय भोज एवं विवाह को भी इसका साधन बनाया। डॉ. अम्बेडकर गांधीजी के इन प्रयासों से असंतुष्ट थे। उनका मानना था कि यह महज एक छलावा है, जिससे तात्त्विक स्तर पर कोई परिवर्तन

नहीं होगा। अम्बेडकर का मानना था कि हृदय परिवर्तन एक बेहद लंबी प्रक्रिया है और दलित वर्ग अब इसका इन्तजार नहीं कर सकता है। उन्होंने कहा था कि “जब महात्मा गांधी जैसा महान राष्ट्र नायक सवर्ण हिन्दूओं का हृदय परिवर्तन नहीं कर सका, तो फिर यह और किसी के लिए कैसे सम्भव है?”

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि जाति या वर्ण व्यवस्था का दार्शनिक आधार धर्म है। अतः धर्म में सुधार किए बिना इस समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता है। विभिन्न हिन्दू धर्म ग्रंथ गीता, मनुस्मृति, पुरुषसुक्त आदि वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हैं। अतः इसी आधार पर अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म की धार्मिक व्यवस्था को पुनःसंगठित करने पर बल दिया। इसके लिए उन्होंने कहा कि हिन्दू धर्म का केवल एक प्रमाणिक ग्रंथ होना चाहिए, जिसमें आधुनिक मूल्यों का समावेश हो तथा शेष सभी धर्म ग्रंथों को कानूनी रूप से निषिद्ध कर देना चाहिए। उन्होंने दूसरा सुझाव दिया कि पंडिताई की वंशानुगत व्यवस्था समाप्त होनी चाहिए। उनका तर्क था कि यदि डॉक्टर, इंजीनियर, वकील बनने के लिए विशेष योग्यताओं को अर्जन करना पड़ता है, तो पंडिताई के लिए क्यों नहीं? हो सकता है पुरोहित मंद बुद्धि का हो। पुरोहित को राजकीय सेवक बनाया जाना चाहिए और राज्य द्वारा चुना जाना चाहिए।

इन सबके अलावा अम्बेडकर ने समानता स्थापित करने हेतु आरक्षण पर भी बल दिया। उनका तर्क था कि निम्न वर्ग की कई पीढ़ियों का बहुत शोषण हुआ तथा उन्होंने समस्त श्रम सवर्णों की सेवा के लिए किया है। अतः अब समानता स्थापित करने के लिए निम्न वर्गों को क्षतिपूर्क न्याय मिलना चाहिए। उन्होंने अस्पृश्यता को अपराध घोषित करने के लिए मांग की, जिसे संविधान द्वारा स्वीकार किया गया।

अंतिम रूप से अम्बेडकर का मानना था कि यदि निम्न वर्ग को किसी भी प्रकार से जातीय शोषण से मुक्ति न मिले, तो उसे हिन्दू धर्म ही छोड़ देना चाहिए। उन्होंने 1935 में एक सभा को संबोधित करते हुए कहा था कि “दुर्भाग्य से मैं हिन्दू धर्म में पैदा हुआ हूँ, क्योंकि यह तय करना मेरी शक्ति से बाहर था, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं हिन्दू के रूप में मरूंगा नहीं।” अम्बेडकर ने आगे चलकर यही किया और 1956 में बौद्ध धर्म अपना लिया।

Shaping Your Dreams

IAS

पंडित दीनदयाल उपाध्याय
Pandit Deendayal Upadhyaya

किसी ने सच ही कहा है कि कुछ लोग केवल समाज बदलने के लिए जन्म लेते हैं और समाज का भला करते हुए ही खुशी से मौत को गले लगा लेते हैं। उन्हीं में से एक हैं पंडित दीनदयाल उपाध्याय, जिन्होंने अपनी पूरी जिन्दगी समाज सेवा में समर्पित कर दी। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितंबर, 1916 को ब्रज के मथुरा जिले के छोटे से गांव नगला चंद्रभान में हुआ था। उनके पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय तथा माता का नाम रामप्यारी था। दीनदयालजी के पिता रेलवे में काम करते थे, लेकिन जब वे 3 वर्ष के थे, तभी उनके पिता और 7 वर्ष की आयु में उनकी माता का भी निधन हो गया। 1934 में बीमारी के कारण दीनदयाल के भाई (शिवदयाल) का देहान्त हो गया।

दीनदयालजी की प्रारंभिक शिक्षा बहुत ही संघर्ष व अभाव में हुई। 1937 ई. में उन्होंने इण्टरमीडिएट की परीक्षा दी, जिसमें उन्होंने सर्वाधिक अंक प्राप्त कर कीर्तिमान स्थापित किया। इस पर घनश्याम दास बिड़ला ने उन्हें स्वर्ण पदक व उच्च अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति प्रदान की। इसके बाद दीनदयालजी ने बी. ए. के लिए एस. डी. कॉलेज, कानपुर में प्रवेश लिया। यहीं दीनदयाल में राष्ट्र की सेवा के बीज का स्फुरण हुआ। बलवंत महासिंघे के सम्पर्क के कारण दीनदयालजी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यक्रमों में रुचि लेने लगे। इन सब व्यस्तताओं के बाद भी उन्होंने 1939 ई. में प्रथम श्रेणी में बी. ए. की परीक्षा पास की।

पंडित दीनदयाल एम. ए. करने के लिए आगरा चले गए। वे यहां पर श्री नानाजी देशमुख और श्री भाऊ जुगाडे के साथ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गतिविधियों में हिस्सा लेने लगे। इसी बीच दीनदयालजी की चचेरी बहन रमा देवी बीमार पड़ गई और वे ईलाज कराने के लिए आगरा चली गईं, जहां उनकी मृत्यु हो गई। दीनदयालजी इस घटना से बहुत उदास रहने लगे और एम. ए. की परीक्षा नहीं दे सके। इससे सीकर के महाराजा और श्री बिड़ला से उन्हें मिलने वाली छात्रवृत्ति भी बंद हो गई।

आगे चलकर वे राष्ट्रीय सेवक संघ के प्रांतीय प्रचारक बन गए। उन्होंने लखनऊ में 'राष्ट्र धर्म प्रकाशन' नामक संस्थान की स्थापना की और अपने विचारों को प्रकाशित करने के लिए एक मासिक पत्रिका 'राष्ट्र धर्म' शुरू की। बाद में उन्होंने पान्चजन्य और स्वदेश की शुरुआत की। पंडितजी ने 21 सितम्बर, 1951 ई. को उत्तर प्रदेश में एक राजनीतिक सम्मेलन आयोजित किया और नई पार्टी की राज्य इकाई, भारतीय जनसंघ की नींव डाली। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने जनसंघ के 1951 ई. में आयोजित पहले अखिल भारतीय सम्मेलन की अध्यक्षता की। दीनदयालजी अपने उत्तर प्रदेश शाखा के पहले महासचिव बने। 1953 में डॉ. मुखर्जी की मृत्यु के बाद अनाथ संगठन पोषण और एक देशव्यापी आन्दोलन के रूप में इस इमारत का पूरा बोझ दीनदयाल के युवा कंधों पर आ गया। 15 साल के लिए वह संगठन के महासचिव बने। वे 1968 ई. में जनसंघ के अध्यक्ष बने।

पं. दीनदयाल उपाध्यायजी की मृत्यु 52 वर्ष की आयु में 11 फरवरी, 1968 को मुगलसराय के पास रेलगाड़ी में यात्रा करते समय हुई थी। उनका पार्थिव शरीर मुगलसराय स्टेशन के वार्ड में पड़ा पाया गया। भारतीय राजनीतिक क्षितिज के इस प्रकाशमान सूर्य ने भारतवर्ष में सभ्यतामूलक राजनीतिक विचारधारा का प्रचार एवं प्रोत्साहन करते हुए अपने प्राण राष्ट्र को समर्पित कर दिए।

उपाध्यायजी पत्रकार तो थे ही, चिन्तक और लेखक भी थे। उनकी असामयिक मृत्यु से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि जिस धारा में वह भारतीय राजनीति को ले जाना चाहते थे, वह धारा हिन्दुत्व की थी, जिसका संकेत उन्होंने अपनी कुछ कृतियों में ही दे दिया था। उनकी प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं -

- | | | |
|------------------------|-------------------------|---------------------------------|
| 1) दो योजनाएं। | 2) राजनीतिक डायरी। | 3) भारतीय अर्थनीति का अवमूल्यन। |
| 4) सम्राट चन्द्रगुप्त। | 5) जगद्गुरु शंकराचार्य। | 6) एकात्म मानववाद। |

□ **दर्शन व सामाजिक-राजनीतिक विचार**

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने हिन्दुवाद की एक नई अवधारणा को प्रस्तुत किया। इनका मानना था कि हिन्दुत्व एक जीवन पद्धति का नाम है। हर वह व्यक्ति जो भारत को अपनी जन्मभूमि, मातृभूमि, पुण्यभूमि मानता है वह हिन्दु है। अतः हिन्दुत्व को किसी धर्म विशेष या पंथ विशेष एवं देवी-देवताओं के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने राजनीतिक दर्शन में अपनी पुस्तक 'एकात्म मानववाद' की कल्पना की। चूंकि इनके दर्शन पर शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत का प्रभाव था, अतः वेदांत दर्शन के समान ये संपूर्ण मानव जाति में एकात्म की बात करते हैं और कहते हैं कि किसी भी मनुष्य में किसी भी आधार पर कोई विभेद नहीं किया जा सकता है। क्योंकि सभी उस ब्रह्म के अंश हैं।

एकात्म मानववाद का दर्शन शरीर, मन एवं बुद्धि और हर इंसान की आत्मा का एक साथ और एकीकृत कार्यक्रम की वकालत करता है। उनका मानना था कि मनुष्य का शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा ये चारों अंग ठीक रहेंगे, तभी मनुष्य को चरम सुख और वैभव की प्राप्ति हो सकती है, जब मनुष्य के शरीर के किसी अंग में काटा चुभता है, तो मन को कष्ट होता है, बुद्धि हाथ को निर्देशित करती है कि चुभे हुए काटे को निकाले। यह एक स्वभाविक प्रक्रिया है। मानव की इस स्वभाविक प्रवृत्ति को दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की संज्ञा दी है।

ठीक इसी प्रकार एकात्म मानववाद के आधार पर पंडित उपाध्याय सामाजिक व राजनीतिक चिंतन किया है। उन्होंने राष्ट्र को एक जीवमान इकाई माना है। इसका विकास बहुत लम्बे कालखण्ड में हुआ है। किसी निश्चित भू-भाग में निवास करने वाला मानव समुदाय जब उस भूमि के साथ एकत्व का अनुभव करने लगता है, जीवन के विशिष्ट गुणों को आचारित करते हुए समान परम्परा व महत्वाकांक्षाओं से युक्त होता है, सुख-दुःख की समान स्मृतियां और शत्रु-मित्र की समान अनुभूतियां प्राप्त कर परस्पर हित संबंधों में जुड़ता है, संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए सचेष्ट होता है और इस परम्परा का निर्वाह करने वाले तथा उसे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिए महान तप, त्याग व परिश्रम करने वाले महापुरुषों की श्रृंखला निर्मित होती है, तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदाय से भिन्न एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है। इस भावात्मक स्वरूप को ही राष्ट्र कहा जाता है।

पंडित उपाध्याय ने राष्ट्र को स्वयंभू तथा राज्य को एक संस्था माना है। राज्य के समान और संस्थाएं भी समय-समय पर पैदा होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति इनमें से प्रत्येक संस्था का अंग रहता है। जैसे - कुटुम्ब का मैं अंग हूँ, जाति व्यवस्था हो, तो उसका भी अंग हूँ। मेरा कोई व्यापार है तो उसका भी अंग हूँ। समाज, समाज के आगे पूर्ण मानवता पर विचार करें तो उसका भी अंग हूँ। मानव से बढ़कर यदि हम इस चराचर जगत का विचार करें तो मैं उसका भी अंग हूँ। वास्तविकता यह है कि व्यक्ति नाम की जो वस्तु है, वह एकांगी नहीं, बल्कि बहुअंगी है। परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि वह अनेक अंगों वाला होकर भी परस्पर सहयोग, समन्वय की पूरकता और एकात्मकता के साथ चल सकता है। यह व्यक्ति को कुछ गुण मिला हुआ है।

जो व्यक्ति इस गुण का ठीक से उपयोग कर ले, वो सुखी और जो गुण का ठीक प्रकार से उपयोग न कर सके, वह दुःखी, उसका विकास ठीक नहीं होगा। यही दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद है कि जब व्यक्ति अपने शारीरिक अंगों की भाँति राष्ट्र से, समाज से, परिवार से, व्यक्ति से और स्वयं से एकात्म स्थापित कर लेता है। यदि राष्ट्र एक जीवमान इकाई न होता, तो भारत में कभी भी राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं चला होता और भारत को कभी आजादी नहीं मिलती। आखिर ऐसी कौन-सी शक्ति थी, जो राज्य न होते हुए भी स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए फ्रांसी के फंदे को चूमने और काले पानी की सजा सुनते समय दिल में प्रेम व आनन्द की अनुभूति करते थे। वह शक्ति राष्ट्रीयता थी और राष्ट्र जीवित रूप में विद्यमान था।

□ अन्त्योदय

अन्त्योदय एकात्म मानववाद के चिन्तन की ही व्यवहारिक अभिव्यक्ति है। अन्त्योदय का सरल अर्थ है - समाज के अंतिम व्यक्ति का उदय। अन्त्योदय एक आर्थिक विचार है, जो आर्थिक विकास के साथ समाज के अंतिम व्यक्ति का कल्याण करना चाहता है। अन्त्योदय जैसे परोपकारी राज्य का जन्म तब होता है, जब मानव प्राप्त संसाधनों व उत्पादनों का मानवीय आधार पर वितरण की न्यायसंगत व्यवस्थाओं को समर्पित करते चले।

अन्त्योदय के विचार को साकारित करने के लिए पंडित उपाध्याय ने आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना पर बल दिया है। उनका मानना है कि जिस प्रकार राजनीतिक लोकतंत्र में व्यक्ति को स्वतंत्रता, समानता व न्याय से व्यक्तित्व विकास का अवसर मिलता है, ठीक उसी प्रकार आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना से अंतिम व्यक्ति को भी कार्य करने का अधिकार मिलेगा। जिस प्रकार राजनीतिक लोकतंत्र का सार वोट का अधिकार है, उसी प्रकार आर्थिक लोकतंत्र का सार प्रत्येक व्यक्ति को काम है।

पंडित उपाध्याय का मानना था कि राज्य को अर्थ के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहिए। पूंजीवादी व्यवस्था पहले आर्थिक क्षेत्र पर आधिपत्य जमाकर अप्रत्यक्ष रूप से राज्य को नियंत्रित करती है, तो वहीं समाजवाद राज्य को सम्पूर्ण उत्पादन के साधनों का स्वामी बना देता है। वस्तुतः दोनों व्यवस्थाएं व्यक्ति के लोकतांत्रिक अधिकार व उसके स्वस्थ विकास के प्रतिकूल हैं। अतः हमें केन्द्रीकरण के साथ-साथ शक्तियों के विकेन्द्रीकरण पर भी विचार करना चाहिए।

राममनोहर लोहिया Ram Manohar Lohia

डॉ. राममनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जनपद में (वर्तमान-अम्बेडकर नगर जनपद) अकबरपुर नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिताजी श्री हीरालाल पेशे से अध्यापक एवं गांधीजी के अनुयायी थे। जब वे गांधीजी से मिलने जाते, तो राममनोहर को भी अपने साथ ले जाया करते थे। इसके कारण गांधीजी के विराट व्यक्तित्व का उन पर गहरा असर हुआ। लोहियाजी अपने पिताजी के साथ 1918 ई. में अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में पहली बार शामिल हुए।

डॉ. लोहिया की प्रारंभिक शिक्षा फैजाबाद की टंडन पाठशाला में हुई। इसके बाद हाईस्कूल की पढ़ाई हेतु उन्होंने विश्वेश्वरनाथ में दाखिला ले लिया। इसके बाद बंबई के मारवाड़ी स्कूल में पढ़ाई की। गांधीजी की पुकार पर 10 वर्ष की आयु में स्कूल त्याग दिया। 1921 ई. में फैजाबाद किसान आन्दोलन के दौरान जवाहरलाल नेहरू से मुलाकात हुई। 1924 ई. में प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस के गया अधिवेशन में शामिल हुए। 1925 ई. में मैट्रिक की परीक्षा दी। इंटर की 2 वर्ष की पढ़ाई बनारस के काशी विश्वविद्यालय में हुई।

1927 ई. में इंटर पास कर आगे की पढ़ाई हेतु कलकत्ता के विद्यासागर कॉलेज में दाखिला लिया। उन्होंने साइमन कमीशन के बहिष्कार के लिए छात्रों के साथ आन्दोलन किया। 1930 में द्वितीय श्रेणी में बीए की परीक्षा पास की।

जुलाई, 1930 ई. को लोहिया अग्रवाल समाज के कोष से पढ़ाई के लिए इंग्लैंड रवाना हुए, वहां से वे बर्लिन गए। विश्वविद्यालय के नियम के अनुसार उन्होंने प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. बर्नर जेम्बार्ट को अपना प्राध्यापक चुना, 3 महीने में जर्मन भाषा सीखी। 12 मार्च, 1930 को गांधीजी ने दाण्डी यात्रा प्रारंभ की। जब नमक कानून तोड़ा गया, तब पुलिस अत्याचार से पीड़ित होकर पिता हीरालालजी ने लोहिया को विस्तृत पत्र लिखा। 1932 में लोहिया ने नमक सत्याग्रह विषय पर अपना शोध प्रबंध पूरा कर बर्लिन विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की।

डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् डॉ. लोहिया 1933 ई. में भारत पहुंचे। उन्होंने रामेश्वर दास बिड़ला से मुलाकात की, जिन्होंने उन्हें नौकरी का प्रस्ताव दिया, लेकिन 2 हफ्ते साथ रहने के बाद लोहिया ने निजी सचिव बनने से इन्कार कर दिया। तब उनके पिताजी के मित्र सेठ जमुनालाल बजाज लोहिया को गांधीजी के पास ले गए तथा उनसे कहा कि ये लड़का राजनीति करना चाहता है। लोहिया समाजवादी विचारों से प्रभावित थे, अतः उन्होंने 1934 में समाजवादी कांग्रेस पार्टी की नींव डाली।

आगे चलकर लोहिया ने 1942 ई. में भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। वे भूमिगत होकर आन्दोलन को गति प्रदान करते रहे। उन्होंने बुलेटिनों, पुस्तिकाओं, विविध प्रचार सामग्रियों के माध्यम के अलावा समानान्तर 'कांग्रेस रेडियो' का संचालन किया। इसी समय उन्होंने जून, 1946 में गोवा को स्वतंत्र करवाने के लिए एक आन्दोलन का सूत्रपात किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में साम्प्रदायिकता बढ़ने लगी, तो शांति, सद्भाव और व्यवस्था कायम करने में डॉ. लोहिया ने गांधीजी का सहयोग किया। 1956 में डॉ. लोहिया व अम्बेडकर में निकटता बढ़ने लगी, लेकिन 6 दिसम्बर, 1956 को अम्बेडकर के निधन के पश्चात् उनका राजनीतिक सफर अधूरा रह गया।

डॉ. लोहिया ने सामाजवादी पार्टी का गठन किया और उन्होंने लोगों को सचेत किया कि देश की हालत सुधारने में कांग्रेस नाकाम रही है। कांग्रेस शासन नए समाज के निर्माण में सबसे बड़ा बाधक है, उसका सत्ता में बना रहना हितकर नहीं है। इसलिए डॉ. लोहिया ने नारा दिया - 'कांग्रेस हटाओ देश बचाओ'। लोहिया के प्रयासों का परिणाम 1967 के आम चुनाव में दिखा। देश के 9 राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें गठित हुईं। 12 अक्टूबर, 1967 को उनका देहान्त हो गया।

□ राममनोहर लोहिया के विचार

राममनोहर लोहिया एक राष्ट्रवादी विचारक थे और वे राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि रखते थे। उनका मानना था कि राष्ट्र के कल्याण में व्यक्ति को आवश्यक रूप से अपने राष्ट्रीय कर्तव्यों की पूर्ति करना चाहिए, क्योंकि अधिकार तभी सुरक्षित रहेगे जब तक सभी व्यक्ति अपने कर्तव्यों की पूर्ति करते रहेगें। कि वे राजनीति में शुद्ध आचरण व नैतिकता के प्रबल समर्थक थे, क्योंकि उनका मानना था कि बिना नैतिकता के राजनीति समाज को सही दिशा प्रदान नहीं कर सकती है। वे एकमात्र ऐसे नेता थे जिन्होंने अपनी पार्टी की सरकार के कार्यों की सार्वजनिक निंदा की। इसके साथ ही वे राजनीति के अपराधीकरण के प्रबल विरोधी थे।

लोहिया न तो मार्क्सवादी थे और न ही गांधीवादी। उन्होंने मार्क्सवाद व गांधीवाद को मूलरूप से समझा व दोनों को अधूरा पाया, क्योंकि दोनों ने इतिहास की गति को छोड़ दिया। दोनों का महत्व युगीन मात्र है। लोहिया की दृष्टि में मार्क्स पश्चिम के और गांधी पूर्व के प्रतीक हैं। उनका मानना है कि गांधी एवं मार्क्स से बहुमूल्य बातें सीखनी हैं, किन्तु दोनों को मानना निरर्थक हैं। वे दोनों विचारधाराओं की मूल बातों को लेकर एक नवीन समन्वयवादी विचारधारा के समर्थक थे। लोहिया के विचारों को निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत समझा जा सकता है -

1) **लोहिया का समाजवाद** - लोहिया यद्यपि गांधीवाद व मार्क्सवाद से प्रभावित थे, किन्तु उनका मानना था कि समाजवाद को देश की परिस्थितियों के अनुसार बदल लेना चाहिए। वे एक नवीन समाजवाद का समर्थन करते थे, जिसमें मानवता के दृष्टिकोण से वे पूर्व-पश्चिम, गोरे-काले, अमीर-गरीब, नर-नारी आदि के मध्य की विषमता को मिटाना चाहते थे। उनका नवीन समाजवाद 7 क्रांतियों पर आधारित था, जो निम्नलिखित हैं -

- नर-नारी की समानता के लिए।
- चमड़ी के रंग पर रची राजनीतिक, आर्थिक और दिमागी असमानता के खिलाफ।
- संस्कारगत, जन्मजात जातिप्रथा के खिलाफ और पिछड़ों को विशेष अवसर के लिए।
- विदेशी गुलामी के खिलाफ और स्वतन्त्रता तथा विश्व लोक-राज के लिए।
- निजी पूंजी की विषमताओं के खिलाफ और आर्थिक समानता के लिए तथा योजना द्वारा पैदावार बढ़ाने के लिए।
- निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप के खिलाफ और लोकतांत्रिक पद्धति के लिए।
- अस्त्र-शस्त्र के खिलाफ और सत्याग्रह के लिए।

इन 7 क्रांतियों के सम्बन्ध में लोहिया ने कहा कि ये सातों क्रांतियां संसार में एक साथ चल रही हैं। अपने देश में भी उनको एक साथ चलाने की कोशिश करनी चाहिए। जितने लोगों को भी क्रांति पकड़ में आई हो, उसके पीछे पड़ जाना चाहिए और बढ़ाना चाहिए। बढ़ाते-बढ़ाते शायद ऐसा संयोग हो जाए कि आज का इन्सान सब अन्यायों के खिलाफ लड़ता-जूझता ऐसे समाज और ऐसी दुनिया को बना पाए कि जिसमें आन्तरिक शांति और भरा-पूरा समाज बन पाए।

2) **लोकतंत्र के समर्थक** - डॉ. लोहिया लोकतंत्र के समर्थक थे। उनका मानना था कि व्यक्ति को स्वतंत्रता, समानता, न्याय व बन्धुत्व जैसे लोकतांत्रिक मूल्य मिलने चाहिए, ताकि वह अपना सर्वांगीण विकास कर सके।

3) **विकेन्द्रीकरण पर बल** - डॉ. लोहिया आर्थिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण पर बल देते थे। यहां पर वह गांधी से साम्य रखते हैं। वे सहकारिता के आधार पर कुटीर उद्योग की स्थापना करना चाहते थे, जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण होगा और नए रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे। वह विकेन्द्रीकरण के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाकर आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त करना चाहते थे, जिससे सभी को आर्थिक न्याय सुनिश्चित हो सके।

4) **हिन्दी भाषा के पक्षधर** - डॉ. लोहिया ने हमेशा भारत की आधिकारिक भाषा के रूप में अंग्रेजी से अधिक हिंदी को प्राथमिकता दी। उनका विश्वास था कि अंग्रेजी शिक्षित और अशिक्षित जनता के बीच दूरी पैदा करती है। वे कहते थे कि हिन्दी के उपयोग से एकता की भावना और नए राष्ट्र के निर्माण से सम्बन्धित विचारों को बढ़ावा मिलेगा।

5) **सार्वजनिक विचार** - डॉ. लोहिया सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय सिद्धांत के समर्थक थे। उन्होंने जाति एवं वर्ग के आधार पर सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या की है। इनका मानना है कि जाति रूढ़िवादी शक्ति का प्रतीक है और जड़ता को बढ़ावा देती है, जिसके कारण समाज पुरानी परम्पराओं पर चलने को विवश होता है। जबकि वर्ग परिवर्तनशील शक्ति का प्रतीक है, जो सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा देता है। लोहिया कहते हैं कि जातियां धीरे-धीरे शिथिल होकर वर्गों में बदल जाती हैं तथा वर्ग सुसंगठित होकर जातियों का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन चक्रीय क्रम में होता रहता है।

6) **जाति प्रथा का विरोध** - डॉ. लोहिया जात-पात के घोर विरोधी थे। उन्होंने जाति व्यवस्था के विरोध में सुझाव दिया कि रोटी और बेटी के माध्यम से इसे समाप्त किया जा सकता है। वे कहते थे कि सभी जाति के लोग एक साथ मिल-जुलकर खाना खाएं और उच्च वर्ग के लोग निम्न जाति की लड़कियों से अपने बच्चों की शादी करें। इसी प्रकार उन्होंने अपने 'यूनाइटेड सोशलिस्ट पार्टी' में उच्च पदों के लिए हुए चुनाव के टिकट निम्न जाति के उम्मीदवारों को दिया और उन्हें प्रोत्साहन भी दिया। वे ये भी चाहते थे कि बेहतर सरकारी स्कूलों की स्थापना हो, जो सभी को शिक्षा के समान अवसर प्रदान कर सके।

□ जीवन परिचय

प्राचीन भारत के राजनीतिक विचारक कौटिल्य, चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री थे। कौटिल्य की सहायता से ही चन्द्रगुप्त मौर्य ने धनानन्द को पराजित कर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। हमें कौटिल्य के दर्शन संबंधी विचार उनकी पुस्तक **अर्थशास्त्र** में मिलते हैं। अर्थशास्त्र प्रमुखतः राजनीतिशास्त्र से संबंधित ग्रंथ है, जिसे **राजनीतिक यथार्थवाद की बाइबिल** भी कहा जाता है। अर्थशास्त्र में 15 अध्याय, 180 प्रकरण तथा 4000 श्लोक हैं। अर्थशास्त्र की प्रथम पाण्डुलिपि सामशास्त्री ने खोजी थी। इसमें न तो लेखक का नाम और न ही पाटलीपुत्र का उल्लेख मिलता है। फिर भी अर्थशास्त्र को मौर्यकालीन रचना माना जाता है।

□ कौटिल्य का राज्य संबंधी विचार

♦ राज्य की उत्पत्ति की अवधारणा

कौटिल्य ने राज्य की उत्पत्ति के संदर्भ में सामाजिक समझौता का सिद्धान्त दिया है। कौटिल्य के अनुसार मत्स्य न्याय की स्थिति से तंग आकर लोगों ने एक सामाजिक समझौते के आधार पर मनु को अपना राजा चुना। इस समझौते के अनुसार लोगों ने अपनी उपज का 1/6 भाग राजा को देना स्वीकार किया, जबकि बदले में राजा ने उनकी सुरक्षा तथा कल्याण का उत्तरादायित्व सम्भाला।

♦ राज्य के तत्व/सप्तांग सिद्धान्त

कौटिल्य ने अपने दर्शन में राज्य की सप्तांग अवधारणा प्रस्तुत की है। कौटिल्य के अनुसार राज्य रूपी शरीर के 7 अनिवार्य अंग होते हैं। इन अंगों के पारस्परिक सहयोग से ही कोई राज्य जीवित रह सकता है। इनमें सावयवी एकता है, अर्थात् - ये परस्पर निर्भर हैं। इनमें से किसी एक अंग के विकारग्रस्त होने पर अन्य शेष अंग भी प्रभावित होते हैं। राज्य के 7 अंग या प्रकृतियां -

- | | | | |
|----------------|---------------------|-----------------|------------------|
| 1) राजा (सिर)। | 2) आम्रात्य (आंख)। | 3) जनपद (जंघा)। | 4) दुर्ग (बांह)। |
| 5) कोष (मुख)। | 6) दण्ड (मस्तिष्क)। | 7) मित्र (कान)। | |

- 1) **राजा** - कौटिल्य के अनुसार राजा सातों अंगों में सर्वोपरि एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसी संदर्भ में कौटिल्य ने राजा को ही राज्य माना है। कौटिल्य के अनुसार राजा का प्रमुख कर्तव्य - प्रजाहित में शासन करना है। कौटिल्य ने राजा की योग्यता, गुण, शिक्षा एवं कर्तव्यों का विस्तृत विवेचन किया है।
- 2) **आम्रात्य** - कौटिल्य के अनुसार जिस प्रकार गाड़ी एक पहिए से नहीं चल सकती, उसी प्रकार राजकार्य भी बिना आम्रात्यों के सहयोग के नहीं चलाया जा सकता है। कौटिल्य ने नियुक्ति से पूर्व आम्रात्यों की योग्यता व चरित्र परीक्षण पर अत्यधिक बल दिया है।
- 3) **जनपद** - कौटिल्य के अनुसार राजा को एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना हेतु नए जनपदों (भूमि) की स्थापना करनी चाहिए।
- 4) **दुर्ग** - दुर्ग राज्य का वह महत्वपूर्ण अंग है, जिसमें कोष तथा सेना को सुरक्षित रखा जाता था। कौटिल्य ने 4 प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया है - औदक दुर्ग (जल), पर्वत दुर्ग (पहाड़ी), धान्वन दुर्ग (मरुस्थलीय) तथा वन दुर्ग (जंगल)।
- 5) **कोष** - कोष का संबंध राजा की वित्तीय व्यवस्था से है। कौटिल्य के अनुसार राजा को बाह्य आक्रमण, दैवीय आपत्तियों के समय तथा राज्य की समस्त गतिविधियों के संचालन हेतु धन की आवश्यकता पड़ती है। अतः राजा को पूर्वजों द्वारा संग्रहित कोष में धर्मानुसार अर्थ संग्रह करना चाहिए।
- 6) **दण्ड** - कौटिल्य के अनुसार दण्ड, अर्थात् - सेना राज्य की सुरक्षा एवं साम्राज्य विस्तार हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहां उल्लेखनीय है कि कौटिल्य ने आक्रमण की बजाए सुरक्षा को ही अधिक महत्व दिया है। यही कारण है कि सप्तांग सिद्धान्त में कौटिल्य ने दुर्ग को चतुर्थ, जबकि दण्ड को षष्ठम स्थान दिया है।
- 7) **मित्र** - कौटिल्य ने राज्य के अंतिम अंग के रूप में मित्र का उल्लेख किया है। कौटिल्य के अनुसार विपदा, अशांति और साम्राज्य विस्तार हेतु राजा के मित्रों का होना अति-आवश्यक है।

♦ राज्य के कार्य

कौटिल्य के अनुसार राज्य के निम्नलिखित प्रमुख कार्य होते हैं -

- 1) आंतरिक विद्रोह एवं बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा।
- 2) साम्राज्य का विस्तार।
- 3) कल्याणकारी एवं न्यायपूर्ण समाज की स्थापना।

♦ समीक्षा

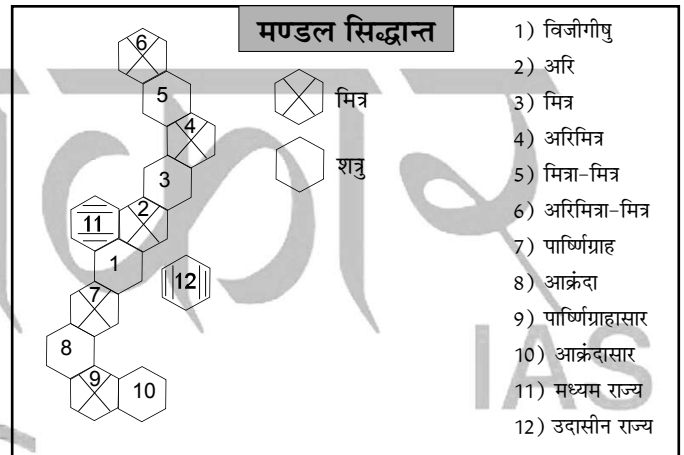
कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त में उल्लेखित कुछ अंगों की वर्तमान प्रासंगिकता समाप्त हो गई है, जैसे - दुर्ग, किन्तु यदि हम आधुनिक समय में राज्य की परिभाषा पर विचार करें, तो किसी भी राज्य के अनिवार्य तत्व या अंग - सम्प्रभुता, सरकार, भू-भाग तथा जनसंख्या होते हैं। कौटिल्य द्वारा राज्य की दी गई परिभाषा में भी ये अंग शामिल हैं। स्वामी से आशय है - सम्प्रभुता, अमात्य से आशय है - सरकार तथा जनपद से आशय है - भू-भाग व जनसंख्या। इस प्रकार कौटिल्य द्वारा राज्य के संबंध में दिया गया सप्तांग सिद्धान्त वर्तमान में भी अपनी प्रासंगिकता रखता है।

□ कौटिल्य का विदेशनीति संबंधी विचार

कौटिल्य के अनुसार विदेशनीति के सफल संचालन हेतु निम्नलिखित सिद्धान्तों का ज्ञान एवं पालन किया जाना आवश्यक है -

- 1) मण्डल सिद्धान्त। 2) विदेशनीति के 6 तत्व (षट्गुण)। 3) चातुर्गुण्य (चार उपाय)। 4) राजदूत।

- 1) **मण्डल सिद्धान्त** - कौटिल्य के अनुसार राजा का लक्ष्य राज्य की सुरक्षा के साथ-साथ राज्य का विस्तार करना भी होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कौटिल्य ने मण्डल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मण्डल सिद्धान्त के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के केन्द्र में विजिगीषु (विजेता या विजय की इच्छा रखने वाला राज्य) होता है। विजिगीषु की सीमा से लगा राज्य शत्रु प्रकृति का होता है, जबकि शत्रु की सीमा से लगा राज्य, परन्तु विजिगीषु की सीमा से नहीं, शत्रु का शत्रु व विजिगीषु का मित्र होता है।



विजिगीषु की विजय यात्रा में आगे क्रमशः अरि,

मित्र, अरिमित्र, मित्रामित्र व अरिमित्रामित्र ये 5 राजा आते हैं। इसी प्रकार विजिगीषु के पीछे क्रमशः पार्ष्णिग्राह (पीठ का शत्रु), आक्रंदा, पार्ष्णिग्राहासार और आक्रंदासार ये 4 राजा होते हैं। इसके अतिरिक्त 2 अन्य राज्य होते हैं। प्रथम, वह जिसकी सीमा विजिगीषु तथा अरि दोनों के समीप हो तथा जो दोनों में से किसी की भी सहायता कर सकता हो, उसे मध्यम कहते हैं। द्वितीय, वह जिसकी सीमा विजिगीषु या अरि या किसी भी राज्य की सीमा से न मिलती हो और जो सबसे समर्थ हो, उसे उदासीन कहते हैं। इस प्रकार कुल 12 राज्यों से मिलकर एक राज्य मण्डल बनता है, जिसमें 5 मित्र राज्य, 5 शत्रु राज्य, 1 मध्यम राज्य और 1 उदासीन राज्य होता है।

इस प्रकार मण्डल सिद्धान्त एक गत्यात्मक अवधारणा है, जो गठबंधन की अनुमति देती है और कहती है कि युद्ध के लिए तैयार रहो और विजय की योजना बनाओ।

- 2) **विदेशनीति के 6 तत्व (षट्गुण)** - कौटिल्य के अनुसार विदेशनीति के संचालन में 6 तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विजिगीषु राजा को अपनी शक्ति का सही मूल्यांकन करने के उपरान्त ही षट्गुण नीति का क्रियान्वयन करना चाहिए। षट्गुण निम्नलिखित हैं -

- | | |
|--|--|
| a) संधि - दो राज्यों का कुछ शर्तों पर मेल। | b) विग्रह - राज्यहित में संधि तोड़ना। |
| c) आसन - उपेक्षा करना। | d) यान - चढ़ाई करना। |
| e) संश्रय - आत्म समर्पण करना। | f) द्वैधीभाव - संधी और विग्रह दोनों से काम लेना। |

3) **चातुर्गुण्य (चार उपाय)** - कौटिल्य के अनुसार विदेशनीति संबंधी षट्गुण नीति का पालन चतुर्गुण्य (चार उपायों) द्वारा किया जाना चाहिए।

- a) साम - विरोधी राजा को मैत्रीभाव से बातचीत के द्वारा समझा-बुझाकर अपने पक्ष में करना।
- b) दाम - विरोधी राजा को धन देकर अपने पक्ष में करना।
- c) भेद - शत्रु एवं उसकी प्रकृतियों के बीच भेद उत्पन्न करना।
- d) दण्ड - विरोधी राजा को भयभीत करके अपने पक्ष में करना। इस प्रकार दण्ड का आशय सीधे बल प्रयोग की नीति से नहीं, बल्कि युद्ध पूर्व धमकी से है।

कौटिल्य के अनुसार विदेशनीति के संचालन में इन्हीं 4 उपायों का इसी क्रम में पालन करना चाहिए।

4) **राजदूत** - राष्ट्र की नीतियों एवं नियमों को दूसरे राष्ट्रों तक पहुंचाने वाला वाहक राजदूत होता है। राजदूत के द्वारा ही दूसरे राष्ट्र का संदेश औपचारिक रूप से प्राप्त करने तथा अपने राष्ट्र का संदेश दूसरे राष्ट्रों तक पहुंचाने का कार्य सम्पन्न होता है। कौटिल्य के अनुसार राजदूतों में साहस, वाक्पटुता, बद्धिमत्ता, पौरुषता आदि गुण होने चाहिए। कौटिल्य ने 3 प्रकार के राजदूतों की चर्चा की है -

- a) **निसृप्तार्थ** - इसे विदेशी शासक से संधि करने का पूर्ण अधिकार था।
- b) **परिमितार्थ** - इसे सिर्फ वही समझौते करने का अधिकार था, जिसके लिए उसे आदेश दिया गया था।
- c) **शासनहार** - इसे केवल राजकीय संदेश को पहुंचाने का अधिकार था। यह कोई समझौता या संधि नहीं कर सकता था।

इस प्रकार कौटिल्य ने अपने दर्शन में विदेशनीति से संबंधित विशद् विवेचना की है, जिसकी उपयोगिता अपने बदले हुए अर्थ एवं स्वरूप में वर्तमान में भी बनी हुई है।

□ **कौटिल्य का न्याय संबंधी विचार**

कौटिल्य के अनुसार राज्य के स्थायित्व एवं समृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि राज्य में न्यायपूर्ण शासन तंत्र हो। न्यायपूर्ण शासन तंत्र में अधिकारों का न्यायपूर्ण विभाजन आवश्यक है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कौटिल्य ने मौर्यकालीन न्यायालयों को दो भागों में विभक्त किया है, जो निम्नलिखित हैं -

- 1) **धर्मस्थीय न्यायालय** - इसकी तुलना आधुनिक दीवानी न्यायालयों से की जा सकती है। इसका मुख्य न्यायाधीश धर्मस्थ कहलाता था।
- 2) **कंटकशोधन न्यायालय** - इसकी तुलना आधुनिक फौजदारी न्यायालयों से की जा सकती है। इसका मुख्य न्यायाधीश प्रादेशिक कहलाता था।

प्रत्येक न्यायालय में 6 न्यायाधीश होते थे। इनमें 3 विधि-विशेषज्ञ व 3 अमात्य होते थे।

कौटिल्य के अनुसार विधि के 4 स्रोत थे -

- a) **धर्म** - सत्य पर आधारित कानून।
- b) **व्यवहार** - साक्ष्यों के आधार पर निर्णय।
- c) **चरित्र** - अगर पारस्परिक सहमति से कोई ऐसा व्यवहार तय हो, जो नियम विरुद्ध हो तो उसे नहीं मानना।
- d) **राजाज्ञा** - राजा द्वारा जारी किया गया आदेश।

कौटिल्य ने मृत्युदण्ड सहित कठोर दण्ड-व्यवस्था का विधान किया है। शारीरिक दण्ड की अपेक्षा आर्थिक दण्ड का ज्यादा प्रचलन था। पराजित राजा एवं युद्ध बंदियों के साथ मानवीय व्यवहार किया जाता था। इस प्रकार कौटिल्य ने भेदभाव रहित व मानवाधिकारों सहित न्यायपूर्ण समाज की स्थापना पर बल दिया था।

□ **कौटिल्य का नैतिकता संबंधी विचार**

कौटिल्य एक यथार्थवादी राजनीतिक विचारक थे। उन्होंने अपने दर्शन में राज्य हित को ही सर्वोपरि माना है तथा इसे साध्य रूप में स्वीकार किया है। यहां राज्य हित का आशय है - राज्य की सुरक्षा, राज्य का विस्तार तथा कल्याणकारी एवं न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना। कौटिल्य के अनुसार राज्य हित, अर्थात् - साध्य की प्राप्ति हेतु किसी भी प्रकार का साधन प्रयोग में लाया जा सकता है।

कौटिल्य ने महात्मा गांधी के विपरीत साधन की पवित्रता को आवश्यक नहीं माना है। इस संदर्भ में कौटिल्य ने नैतिक साध्य की तो बात की है, किन्तु नैतिक साधन की नहीं। कौटिल्य के उपर्युक्त यथार्थवादी विचारों की वजह से ही उसकी तुलना इटली के राजनीतिक विचारक मैकियावेली से की जाती है।

यद्यपि कुछ आधुनिक विचारकों ने कौटिल्य के नैतिकता संबंधी विचार की आलोचना की है तथा यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि कौटिल्य ने साधन की पवित्रता को स्वीकार न करते हुए धार्मिक या अधार्मिक किसी भी प्रकार के साधन को अपनाने का समर्थन किया है। किन्तु कौटिल्य पर लगाया गया यह आरोप अयुक्तिसंगत है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के प्रथम अधिकरण में ही धर्म के महत्व पर प्रकाश डाला है। यहां कौटिल्य ने कहा है कि राजा को अपने धर्म से च्युत नहीं होना चाहिए, जो राजा धर्म का आचरण करता है, वही इस लोक और परलोक में सुखी रहता है। उसी प्रकार कौटिल्य ने जनता के लिए भी वर्ण व्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था के अनुसार अपने-अपने धर्म का पालन करने की बात कही है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि कौटिल्य ने कूटनीति का प्रयोग केवल अधार्मिक एवं दुष्ट लोगों के साथ ही करने की बात की है, न कि धार्मिक लोगों के साथ।

□ मूल्यांकन

कौटिल्य के दर्शन की कई अवधारणाएं यद्यपि बदलते समय एवं परिस्थितियों में प्रासंगिक नहीं रह गई हैं, परन्तु कई सिद्धान्त एवं विचार लगभग 2300 वर्ष के पश्चात् भी अपनी उपयोगिता बनाए हुए हैं।

♦ अप्रासंगिकता

- 1) कौटिल्य के मण्डल सिद्धान्त के अनुसार पड़ोसी राज्य आवश्यक रूप से शत्रु होता है, परन्तु यह विचार वर्तमान समय में पूर्णतः सत्य नहीं माना जा सकता। भारत के अपनी पड़ोसी राष्ट्र भूटान एवं नेपाल से मित्रतापूर्ण संबंध हैं।
- 2) मण्डल सिद्धान्त के अन्तर्गत उल्लेखित मध्यम एवं उदासीन राज्य की अवधारणा भी वर्तमान वैश्वीकरण के युग में सत्य प्रतीत नहीं होती। वर्तमान में संचार साधनों के कारण दुनियां एक वैश्विक गांव में तब्दील हो गई है। दुनिया के किसी हिस्से पर घटने वाली घटना पूरे विश्व समुदाय को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ – संयुक्त राज्य अमेरिका की मंदी का प्रभाव संपूर्ण विश्व पर पड़ा। इस प्रकार उदासीन राष्ट्र का विचार भी अतार्किक प्रतीत होता है।

♦ प्रासंगिकता

- 1) मण्डल सिद्धान्त में वर्णित साम, दाम, भेद व दण्ड का प्रचलन आज भी देखा जा सकता है। षट्गुणों में विग्रह, यान और आसन में कमी आई है, परंतु संधि, संश्रय और द्वैधीभाव यथावत महत्व रखते हैं।
- 2) लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा आज भी भारतीय संविधान के नीति निर्देशन तत्व के अन्तर्गत आदर्श रूप में स्वीकार की जाती है।
- 3) कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित न्यायिक व्यवस्था अपने बदले हुए स्वरूप के साथ वर्तमान में भी विद्यमान है। उदाहरणार्थ – कंटकशोधन न्यायालय = फौजदारी न्यायालय व धर्मस्थाय न्यायालय = दीवानी न्यायालय।
- 4) आज भी प्रत्येक व्यक्ति को सरल एवं सुलभ न्याय दिलाने के लिए प्रत्येक राष्ट्र प्रयास कर रहा है। उदाहरणार्थ – भारत में लोक अदालतें, ग्राम न्यायालय, फास्ट ट्रैक कोर्ट।

इस प्रकार कौटिल्य ने प्राचीनकाल की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए एक व्यवहारिक दर्शन का प्रतिपादन किया है, जिसमें आदर्श की बजाए यथार्थ पर अधिक ध्यान दिया गया है। वस्तुतः मौर्य साम्राज्य की प्रगति व प्रतिष्ठा का श्रेय कौटिल्य के दर्शन को ही जाता है। कौटिल्य का युद्ध दर्शन न सिर्फ मौर्य काल में व्यवहारिक था, वरन् आज भी यथार्थता के धरातल को छू रहा है। कौटिल्य के संदर्भ में Dr. S. C. Sarkar का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि उसमें (कौटिल्य में) स्टालिन का प्रजातंत्र, हिटलर की निपुणता, विल्सन का विज्ञानवाद, चर्चिल का साम्राज्याभिमान और च्यांग की देश भक्ति एक साथ समायोजित है।

प्रश्न - एक दिन आप अपने छोटे भाई का स्कूल बैग चेक कर रहे थे कि अचानक उसमें से पत्रिका निकली, जिसमें कई ऐसे चित्र थे जो आपकी राय में उसकी उम्र के लिए ठीक नहीं थे। छोटे भाई की उम्र अभी 12 साल हैं और आपको लगता है कि वह आपकी राय और आपके माता-पिता की राय को ज्यादा महत्व नहीं देता है। इस स्थिति में आपके सामने क्या-क्या नैतिक विकल्प हैं, और आप क्या नैतिक विकल्प चुनेंगे।

उत्तर - इस स्थिति में मेरे पास 3 विकल्प होंगे, जो निम्नलिखित हैं -

- मैं इस घटना की जानकारी माता-पिता को दूँ, ताकि वह कड़वाई के साथ छोटे भाई के साथ पेश आए व उसे ऐसे कृत्य करने से रोके।
- मैं अपने स्तर पर इस समस्या के समाधान का प्रयास करूँ और माता-पिता तक ये जानकारी न जाने दूँ।
- मैं इस घटना को अनदेखा कर दूँ, क्योंकि इस उम्र में ऐसी जिज्ञासाएं स्वाभाविक तौर पर होती हैं और मुझे इस घटना से परेशान नहीं होना चाहिए।

उपरोक्त उपलब्ध विकल्पों में से मैं पहले विकल्प को नहीं चुनूँगा, क्योंकि इसमें 2 समस्याएं हैं -

- 1) चूंकि मेरा भाई माता-पिता की बातों को नहीं मानता है और विरोधी स्वभाव का है, इसलिए यह संभावना बढ़ जाती है कि उनके हस्तक्षेप के कारण वह ऐसी गतिविधियों में और ज्यादा लिप्त हो जाएगा।
- 2) माता-पिता के हस्तक्षेप से मेरे भाई का संबंध उनके साथ कटू हो जाएगा, जो पहले से ही अनुकूल नहीं है।

मैं तीसरा विकल्प भी नहीं चुनूँगा, क्योंकि समस्या को टाल देने से वह बढ़ सकती है और हो सकता है कि मेरा भाई ऐसी गतिविधियों में बहुत अधिक लिप्त हो चुका हो। ऐसे में इस घटना पर ध्यान न देना गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार कहलाएगा, जो कि नैतिक दृष्टिकोण से अनुचित है।

मैं दूसरे विकल्प का चयन करूँगा, क्योंकि वह बाकी दोनों से बेहतर है। यह ठीक है कि वह मेरी बात भी नहीं मानता है, चूंकि हम दोनों एक ही पीढ़ी के हैं, तो मैं यह चाहूँगा कि उससे समुचित संवाद स्थापित हो सके, जिसके लिए मैं निम्नलिखित कदम उठाऊँगा -

- 1) सबसे पहले बिना उसे पता लगने दिए कि मैं इस बात को जानता हूँ, यह पता लगाने का प्रयास करूँगा कि वह किस हद तक ऐसी गतिविधियों में शामिल है। यह जानने के लिए मैं उससे हंसी-मजाक करूँगा। कुछ ऐसी बातें कहूँगा कि इस विषय पर बात करना सामान्य बात है और धैर्यपूर्वक प्रतिक्षा करूँगा कि वह अपने मन की बात मुझसे साझा करें। इस संदर्भ में मैं उसे यह विश्वास भी दिलाऊँगा कि ये बातें हमारे बीच में ही रहेंगी, माता-पिता तक नहीं जाएंगी।
- 2) मैं ध्यान रखूँगा कि उसकी साधारण जिज्ञासाओं का समाधान तो हो, किन्तु किसी विकृत तरीके से नहीं। साथ ही उसे सहज रूप से समझाऊँगा कि कम उम्र में ऐसी घटनाओं में वास्तविक रूप से लिप्त होना शारीरिक व मानसिक तौर पर कितना घातक हो सकता है।
- 3) इनके साथ ही मैं उसके निकटतम मित्रों से मिलने का प्रयास करूँगा तथा उन पर एक सजग नजर बनाए रखूँगा।
- 4) मैं अंतिम कोशिश यह करूँगा कि उसके व्यक्तित्व व रुचि के अनुरूप उसे किसी ऐसे सृजनात्मक कार्यों में जोड़ने को प्रेरित करूँगा, जिसमें वह व्यस्त होने के साथ-साथ आनन्द व संतोष महसूस करें।

प्रश्न - आपकी उम्र 30 वर्ष है और आप सरकारी नौकरी में हैं। आपके माता-पिता निरक्षर हैं और एक पुराने शहर के पारंपरिक मोहल्ले में रहते हैं, जहां हिन्दू और मुसलमानों के संबंधों में तनाव होता रहता है। आप हिन्दू परिवार से हैं। आपकी छोटी बहन जिसकी उम्र 21 वर्ष है। एक दिन वह आपके पास आती है और बताती हैं कि पड़ोस में रहने वाले एक मुस्लिम युवक से प्रेम हो गया है। वह जानती है कि माता-पिता इस रिश्ते को नहीं मानेंगे और समाज में तनाव भी होगा। किन्तु आप से उम्मीद है कि आप उसका साथ जरूर देंगे।

ऐसी स्थिति में क्या इस समस्या से कैसे निपटेंगे, इसकी एक रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर - ऐसी स्थिति में मेरे पास निम्नलिखित विकल्प हैं -

➤ यह कि चूंकि दोनों व्यक्ति वयस्क हैं और मेरी सहमति के बिना भी विवाह कर सकते हैं, इसलिए मैं कोई आक्रामक कदम उठाने या कथन कहने से बचूंगा भले ही मुझे किसी बिन्दु पर नाराजगी हो।

➤ मैं इसे सिर्फ धर्म का मामला न मानकर इस रूप में देखूंगा कि क्या इन दोनों व्यक्तियों के लिए यह विवाह उचित होगा, क्योंकि किसी भी फैसले से अधिक प्रभाव इन दोनों के जीवन पर ही पड़ेगा।

इस मामले में निम्नलिखित क्रम में मैं कदम उठाऊंगा -

1) सबसे पहले अपनी बहन से सहयोगात्मक रूप अपनाते हुए लम्बी बात-चीत करूंगा, ताकि वह सहज होकर मुझे अपनी हर बात कह सके। इस बात-चीत से मैं उनके रिश्ते की गहराई और परिपक्वता का अनुमान कर लूंगा।

2) मैं उस लड़के से भी मिलूंगा और कई पक्षों पर उसकी स्थिति तथा राय जानना चाहूंगा, जैसे - उसका व्यक्तित्व, उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, उसकी आर्थिक हैसियत, शिक्षा तथा समझ का स्तर आदि।

3) मैं उस लड़के से उन मुद्दों पर स्पष्ट जवाब चाहूंगा, जो भविष्य में तनाव का कारण बन सकते हैं, जैसे - मेरी बहन का धर्म, नाम बदलने की अपेक्षा है या नहीं, क्या उससे बुरका पहनने या अन्य कोई ऐसा धार्मिक आचरण करने की अपेक्षा जाएगी, जिससे मेरी राय में मेरी बहन सहज नहीं होगी।

4) अगर इन प्रश्नों के जवाब चिन्ताजनक है, तो मैं अपनी बहन को समझाऊंगा कि या तो वह अपने निर्णय पर पुनर्विचार करे या स्वयं को ऐसी परिस्थिति के लिए तैयार करे, जैसे - अगर वह शाकाहारी है, तो क्या वह मांसाहारी भोजन पका सकेगी आदि।

5) मेरी समझ है कि इसके बाद मेरी बहन का जो भी उत्तर होगा, वो पहले की तुलना में परिपक्व होगा। मैं यह भी कोशिश करूंगा कि इस मामले को लगभग 10-12 महीने तक खींचू, क्योंकि अगर यह कोरा आकर्षण है, तो यह अपने आप समाप्त हो जाएगा।

6) अगर इसके बाद भी दोनों पक्ष विवाह के प्रति पतिबद्ध हैं, तो मैं उनका समर्थन करूंगा, लेकिन 2 शर्तों के आधार पर -

a) मैं चाहूंगा कि मेरी बहन किसी न किसी नौकरी में आ जाए, ताकि उसकी आर्थिक स्वतंत्रता सुनिश्चित हो और वह आवंटित दबावों की शिकार न हो।

b) मैं लड़के से कहूंगा कि वह अपने परिवार को इस रिश्ते के लिए तैयार करे और मैं अपनी बहन के साथ मिलकर अपने परिवार को मनाऊंगा।

7) दोनों परिवारों को मानने की प्रक्रिया कुछ लम्बी चल सकती है, इसलिए दोनों धैर्य बनाए रखने की सलाह दूंगा। अगर लम्बी कोशिश के बाद भी परिवार सहमत नहीं होते हैं, तो मैं उनका साथ दूंगा, क्योंकि विवाह मूलतः उन दोनों के जीवन का प्रश्न है।

अगर यह विवाह परिवारों की असहमति की स्थिति में होता है, तो भी अपनी बहन को विश्वास दिलाऊंगा कि किसी भी अवांछित स्थिति में वह खुद को अकेला न समझे, मैं उनका साथ दूंगा।

केस स्टडी - 1

आप एक कंपनी के मेनेजर है। आपके स्टॉफ की एक जूनियर सदस्य (महिला सदस्य) अपनी वृद्ध माता की देखभाल के लिए ली गई विशेष छुट्टी के बाद अभी-अभी अपने काम पर लौटी है। वित्तीय आवश्यकताओं तथा काम के बोझ की वजह से उसे अब फुल टाइम काम करने की आवश्यकता है, लेकिन अभी-भी वह अपनी माता की देखभाल संबंधी जरूरतों को पूरा करने के कारण अनेक बैठकों (मीटिंग) में उपस्थित नहीं हो पा रही है। आमतौर पर ये बैठकें प्रत्येक दिन की शुरुआत में ही सम्पन्न होती हैं और अक्सर उसे आने में थोड़ा विलम्ब हो जाता है। कई बार शाम को भी उसे अपना जरूरी कार्य छोड़ना पड़ता है। ध्यातव्य है कि वह अपने काम को करने में बहुत सक्षम है, परन्तु उसकी अनुपस्थिति से उस पर तथा उसके सहयोगियों पर काम का बोझ बढ़ता जा रहा है। आप इस बात से भली-भाँति परिचित हैं। इसी स्थिति में उसका एक पुरुष सहकर्मी प्रत्येक अवसर पर उस महिला को नीचा दिखाने की कोशिश करता है परिणामस्वरूप उस महिला के ऊपर काम का दबाव तथा तनाव और बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में आप क्या करेंगे या इस समस्या का समाधान आप कैसे करेंगे?

केस स्टडी - 2

मि. कुमार सतना में अंग्रेजी माध्यम के निजी स्कूल में गणित के काफी योग्य अध्यापक हैं। उन्हें वेतन के रूप में तीन लाख रुपए वार्षिक का पैकेज मिला हुआ है, लेकिन उन्हें जबलपुर के एक अन्य निजी स्कूल से तीन लाख पचास हजार रुपए वार्षिक के पैकेज का ऑफर मिलता है और वे उस स्कूल के प्रिंसिपल को मौखिक तौर पर वचन देते हैं कि अगले महीने से वे उनके स्कूल को ज्वाइन कर लेंगे, परन्तु जब मि. कुमार सतना के स्कूल में अपना त्याग-पत्र देने जाते हैं, तब उन्हें स्कूल के प्रिंसिपल तीन लाख अस्सी हजार रुपए वार्षिक के नए पैकेज का ऑफर देकर रूकने के लिए कहते हैं। ऐसी स्थिति में मि. कुमार को क्या करना चाहिए? क्या उन्हें अपना इस्तीफा वापस ले लेना चाहिए? यदि हां तो क्यों? यदि नहीं तो क्यों नहीं?

केस स्टडी - 3

एक दिन आप अपने छोटे भाई का स्कूल बेग चेक कर रहे थे कि अचानक उसमें से पत्रिका निकली, जिसमें कई ऐसे चित्र थे जो आपकी राय में उसकी उम्र के लिए ठीक नहीं थे। छोटे भाई की उम्र अभी 12 साल हैं और आपको लगता है कि वह आपकी राय और आपके माता-पिता की राय को ज्यादा महत्व नहीं देता है। इस स्थिति में आपके सामने क्या-क्या नैतिक विकल्प है, और आप क्या नैतिक विकल्प चुनेंगे।

केस स्टडी - 4

आपको भारत सरकार ने एक समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया है तथा सरकार आपसे एक मुद्दे पर सलाह मांगी है। मुद्दा यह है कि एक विदेशी दंपति ने एक भारतीय महिला को सेरोगेट माता के रूप में चुना और बच्चे का जन्म होने से कुछ दिन पहले वे अपने देश लौट गए और बच्चों को अपना नाम देने से भी इन्कार कर दिया। वहीं एक दूसरे मामले में बच्चों के जन्म के बाद सेरोगेट माता ने वह बच्चा जैविक माता-पिता को सौंपने से मना कर दिया, क्योंकि उसे अपने गर्भ में पले बच्चों से भावात्मक लगाव हो गया था। सरकार के पास ऐसी कई शिकायतें आ रही हैं और वह चाहती हैं कि इस मुद्दे पर एक स्पष्ट नीति व कानून बनाए। इस संबंध पर आप क्या सुझाव देंगे और क्यों?

केस स्टडी - 5

एक विश्वविद्यालय में पिछले दिनों छेड़-छाड़ तथा यौन अपराध की घटनाएं अप्रत्याशित रूप से बढ़ गईं। विश्वविद्यालय प्रशासन और पुलिस प्रशासन इन्हें रोकने में नाकाम रही हैं। उनमें से कुछ अधिकारियों की राय है कि इन घटनाओं के पीछे एक बड़ा कारण लड़कियों की अमर्यादित वेशभूषा है, इसलिए इस समस्या के समाधान के लिए जरूरी हैं कि विश्वविद्यालय सख्ती के साथ ड्रेस कोड

लागू करें। विश्वविद्यालय की लड़कियां ऐसे किसी भी निर्देश के विरुद्ध हैं और उनका दावा है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वेशभूषा तय करने का पूरा अधिकार है। आप राज्य की नैतिकता समिति के अध्यक्ष हैं। विवाद को बढ़ते हुए देखकर मुख्यमंत्री ने इस विषय पर आपकी राय जानने के लिए यह मुद्दा आपको भेजा है। आप इस मुद्दे पर क्या राय देंगे और क्यों?

केस स्टडी - 6 (UPSC 2013)

आप उभरती हुई एक ऐसी सूचना तकनीकी कंपनी के कार्यकारी निदेशक हैं जो बाजार में नाम कमा रही है। कंपनी के नायक कर्ता क्रय-विक्रय दल के प्रमुख श्री A हैं। एक वर्ष की अल्पावधि में उन्होंने कंपनी के राजस्व को दुगुना करने में योगदान दिया है और कंपनी के शेयर को उच्च मूल्य वर्ग में स्थापित किया है? जिसके कारण आप इन्हें पदोन्नत करने पर विचार कर रहे हैं। परन्तु आपको कई स्रोतों से महिला सहयोगियों के प्रति उनके रवैये की, विशेषकर महिलाओं पर असंयत टिप्पणियां करने की आदत की, सूचना मिल रही है। इसके अतिरिक्त वह दल के अन्य सदस्यों, जिनमें महिलाएं भी सम्मिलित हैं, को नियमित रूप से अभद्र SMS भी भेजते हैं।

एक दिन देर शाम A के दल की एक सदस्या श्रीमती X आपके पास आती है जो बहुत परेशान दिखती है, और श्री A के सतत् दुराचरण की शिकायत करती है, जो उनके प्रति अवांछनीय प्रस्ताव रखते रहते हैं और अपने कक्ष में उन्हें अनुपयुक्त रूप से स्पर्श करने की चेष्टा तक की है। वह महिला अपना त्याग-पत्र देकर कार्यालय से चली जाती है।

- 1) आपके पास क्या-क्या विकल्प उपलब्ध हैं?
- 2) इनमें से प्रत्येक विकल्प का मूल्यांकन कीजिए एवं जिस विकल्प को आप चुनते हैं, उसे चुनने के कारण कीजिए।

केस स्टडी - 7

आप अनाप-शनाप न सहने वाले, ईमानदार अधिकारी हैं। आपका तबादला एक सुदूर जिले में एक ऐसे विभाग के प्रमुख के रूप में कर दिया गया है, जो अपनी अदक्षता और संवेदनशीलता के लिए कुख्यात है। आप पाते हैं कि इस घटिया कार्य-स्थिति का मुख्य कारण कर्मचारियों के एक भाग में अनुशासनहीनता है। वे स्वयं तो कार्य करते नहीं हैं और दूसरों के कार्य में भी गड़बड़ी पैदा करते हैं। सबसे पहले आपने उत्पातियों को सुधर जाने की, अन्यथा अनुशासनिक कार्रवाई का सामना करने की चेतावनी दी। जब इस चेतावनी का ना के बराबर असर हुआ, तब आपने नेताओं को कारण बताओं नोटिस जारी कर दिया। इसके बदले के रूप में उन्होंने अपने बीच की एक महिला कर्मचारी को आपके विरुद्ध महिला आयोग में यौन-उत्पीड़न की एक शिकायत दायर करने के लिए भड़का दिया। आयोग ने तुरन्त आपका स्पष्टीकरण मांगा। आपको इससे आगे भी लज्जित करने के लिए मामला मीडिया में भी प्रसारित किया गया। इस स्थिति से निपटने के लिए विकल्पों में से कुछ निम्नलिखित हो सकते हैं -

- 1) आयोग को अपना स्पष्टीकरण दे दीजिए और अनुशासनिक कार्यवाही पर नरमी बरतिए।
- 2) आयोग को नजरअंदाज कर दीजिए और अनुशासनिक कार्रवाई को मजबूती के साथ आगे बढ़ाइए।
- 3) अपने उच्च अधिकारियों को संक्षेप में अवगत करा दीजिए,

उनसे निर्देश मांगिए और उनके अनुसार कार्य कीजिए। कोई अन्य संभव विकल्प सुझाइए। सभी का मूल्यांकन कीजिए और अपने कारण बताते हुए सबसे अच्छा विकल्प स्पष्ट कीजिए।

केस स्टडी - 8

मान लीजिए कि आप ऐसी कम्पनी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सीईओ) हैं, जो एक सरकारी विभाग के द्वारा प्रयुक्त विशेषीकृत इलेक्ट्रॉनिक उपकरण बनाती है। आपने विभाग को उपस्कर की पूर्ति के लिए अपनी बोली पेश कर दी है। आपके ऑफर की गुणवत्ता और लागत दोनों आपके प्रतिस्पर्धियों से बेहतर हैं। इस पर भी सम्बन्धित अधिकारी टेंडर पास करने के लिए मोटी रिश्वत की मांग कर रहा है। ऑर्डर की प्राप्ति आपके और आपकी कम्पनी, दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। ऑर्डर न मिलने का अर्थ होगा उत्पादन रेखा का बन्द कर देना। यह आपके स्वयं के कैरियर को भी प्रभावित कर सकता है। फिर भी मूल्य-सचेत व्यक्ति के रूप में आप रिश्वत देना नहीं चाहते हैं।

रिश्वत देने और ऑर्डर प्राप्त कर लेने तथा रिश्वत देने से इनकार करने और ऑर्डर को हाथ से निकल जाने - दोनों के लिए वैध तर्क दिए जा सकते हैं। ये तर्क क्या हो सकते हैं? क्या इस धर्मसंकट से बाहर निकलने का कोई बेहतर रास्ता हो सकता है? यदि हां, तो इस तीसरे रास्ते की अच्छाइयों की ओर इंगित करते हुए उसकी रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

केस स्टडी - 9

रामेश्वर ने गौरवशाली सिविल सेवा परीक्षा को सफलतापूर्वक पास कर लिया और वह ऐसे सुअवसर से अभिभूत था, जो सिविल सेवा के माध्यम से देश की सेवा करने के लिए उसको मिलने वाला था। परन्तु सेवा का कार्यग्रहण करने के शीघ्र बाद उसने महसूस किया कि वस्तुस्थिति उतनी सुन्दर नहीं है, जितनी उसने कल्पना की थी।

उसने अपने विभाग में व्याप्त अनेक अनाचार पाए। उदाहरणार्थ - विभिन्न योजनाओं और अनुदानों के अधीन निधियां दुर्विनियोजित की जा रही थीं। सरकारी सुविधाओं का अक्सर अधिकारियों और स्टाफ द्वारा व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था। कुछ समय के बाद उसने यह भी देखा कि स्टाफ को भर्ती करने की प्रक्रिया भी दोषपूर्ण थी। भावी उम्मीदवारों को एक परीक्षा लिखनी होती थी, जिसमें काफी नकलबाजी चलती थी। रामेश्वर ऐसी घटनाओं को अपने वरिष्ठों की नजर में लाया। परन्तु इस पर उसको अपनी आंखें, कान और मुख बन्द रखने और इन सभी चीजों को नजरअंदाज करने की सलाह दी गई। यह बताया गया कि सब उच्चतर अधिकारियों की मिलीभगत से चल रहा था। इससे रामेश्वर का भ्रम टूटा और वह व्याकुल रहने लगा। वह सलाह के लिए आपके पास आता है।

ऐसे विभिन्न विकल्प सुझाइए, जो आपके विचार में, ऐसी परिस्थिति में रामेश्वर के लिए उपलब्ध हैं। इन विकल्पों का मूल्यांकन करने और सर्वाधिक उचित रास्ता अपनाने में आप उसकी किस प्रकार सहायता करेंगे।

केस स्टडी - 10

आप नगर पालिका परिषद् के निर्माण विभाग में अधिशासी अभियंता पद पर तैनात हैं और वर्तमान में एक ऊपरगामी पुल (Flyover) के निर्माण-कार्य के प्रभारी हैं। आपके अधीन 2 कनिष्ठ अभियंता हैं, जो प्रतिदिन निर्माण-स्थल के निरीक्षण के उत्तरदायी हैं तथा आपको विवरण देते हैं और आप विभाग के अध्यक्ष, मुख्य अभियंता को रिपोर्ट देते हैं। निर्माण-कार्य पूर्ण होने को है और कनिष्ठ अभियंता नियमित रूप से यह सूचित करते रहे हैं कि निर्माण-कार्य परिकल्पना के विनिर्देशों के अनुरूप हो रहा है। लेकिन आप अपने आकस्मिक निरीक्षण में कुछ गंभीर विसामान्यताएं व कमियां पाईं, जो आपके विवेकानुसार पुल की सुरक्षा को प्रभावित कर सकती है। इस स्तर पर इन कमियों को दूर करने में काफी निर्माण-कार्य गिराना और दोबारा बनाना होगा, जिससे ठेकेदार को निश्चित हानि होगी और कार्य-समाप्ति में विलम्ब भी होगा। क्षेत्र में भारी ट्रैफिक जाम होने के कारण परिषद् पर निर्माण शीघ्र पूरा करने के लिए जनता का बड़ा दबाव है। जब आप स्थिति मुख्य अभियंता के संज्ञान में लाए, तो उन्होंने अपने विवेकानुसार इसको बड़ा गंभीर दोष न मानकर इसे उपेक्षित करने की सलाह दी। उन्होंने परियोजना को समय से पूरा करने हेतु कार्य को आगे बढ़ाने के लिए कहा। परन्तु आप आश्वस्त हैं कि यह गंभीर प्रकार है, जिससे जनता की सुरक्षा प्रभावित हो सकती है और इसको बिना ठीक कराए नहीं छोड़ा जा सकता।

ऐसी स्थिति में आपके करने के लिए कुछ विकल्प निम्नलिखित हैं। इनमें से प्रत्येक विकल्प का गुण-दोष के आधार पर मूल्यांकन कर अन्ततः सुझाव दीजिए की आप क्या कार्यवाही करना चाहे और क्यों?

- 1) मुख्य अभियंता की सलाह मानकर आगे बढ़ जाएं।
- 2) सभी तथ्यों व विश्लेषण को दिखाते हुए स्थिति की विस्तृत रिपोर्ट बनाकर अपना दृष्टिकोण रखते हुए मुख्य अभियंता से लिखित आदेश का निवेदन करें।
- 3) कनिष्ठ अभियंताओं से स्पष्टीकरण मांगें और ठेकेदार को निश्चित अवधि में दोष-निवारण के लिए आदेश दें।
- 4) इस विषय को बलपूर्वक उठाएं, ताकि यह मुख्य अभियंता के वरिष्ठ जनों तक पहुंच सके।
- 5) मुख्य अभियंता के अनम्य विचार को ध्यान में रखते हुए इस परियोजना से अपने स्थानान्तरण के लिए आवेदन करें या बीमारी की छुट्टी पर चले जाएं।

केस स्टडी - 11

एक जन सूचना अधिकारी (PIO) को सूचना का अधिकार (RTI) अधिनियम के अन्तर्गत एक आवेदन मिलता है। सूचना एकत्र करने के बाद उसे पता चलता है कि वह सूचना स्वयं उसी के द्वारा दिए गए कुछ निर्णयों से संबंधित है, जो पूर्णरूप से सही नहीं थे। इन निर्णयों में अन्य कर्मचारी भी सहभागी थे। सूचना प्रकट होने पर स्वयं उसके तथा उसके अन्य मित्रों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही हो सकती है, जिससे दण्ड भी सम्भावित है। सूचना प्रकट न करने या आंशिक या छद्मावरित सूचना उपलब्ध कराने पर कम दण्ड या दण्ड-मुक्ति भी मिल सकती है। PIO अन्यथा एक ईमानदार व कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति है, पर वह विशिष्ट निर्णय, जिसके सम्बन्ध में RTI आवेदन दिया गया है, गलत निकला। वह अधिकारी आपके पास सलाह के लिए आया है।

नीचे सुझावों के कुछ विकल्प दिए हैं। प्रत्येक विकल्प का गुण-दोष के आधार पर मूल्यांकन कीजिए -

- 1) PIO इस मामले को अपने ज्येष्ठ अधिकारी को उसकी सलाह के लिए संदर्भित करे और कड़ाई से उसी के अनुसार कार्यवाही करे चाहे वह स्वयं उस सलाह से पूर्णतया सहमत न हो।
- 2) PIO छुट्टी पर चला जाए और मामले को अपने उत्तराधिकारी (कार्यालय में) पर छोड़ देने या सूचना आवेदन को किसी अन्य PIO को स्थानान्तर का निवेदन करे।
- 3) PIO सच्चाई के साथ सूचना प्रकट करने व अपनी जीविका पर उसके प्रभाव पर मनन करके इस भाँति उत्तर दे, जिससे वह या उसकी जीविका पर जोखिम न आए पर साथ ही सूचना की अन्तर्वस्तु पर कुछ समझौता किया जा सकता है।
- 4) PIO उन सहयोगियों, जो इस निर्णय को लेने में सहभागी थे, से परामर्श करे और उसकी सहाल के अनुरूप कार्यवाही करे।

केस स्टडी - 12

आप देश के एक प्रमुख तकनीकी संस्थान के अध्यक्ष हैं। संस्थान, प्रोफेसरों के पद के चयन हेतु आपकी अध्यक्षता में साक्षात्कार पैनल का आयोजन शीघ्र ही करने वाले हैं। साक्षात्कार से कुछ दिन पहले आपके पास एक ज्येष्ठ शासकीय अधिकारी के निजी सचिव का फोन आता है, जिसमें आपसे पद के लिए उस अधिकारी के एक निकट सम्बन्धी के पक्ष में चयन करने की अपेक्षा की जाती है। निजी सचिव यह भी बताते हैं कि आपके संस्थान के आधुनिकीकरण के लिए बहुत समय से लम्बित महत्वपूर्ण वित्तीय अनुदान प्रस्तावों का उन्हें ज्ञान है, जिनकी अधिकारी द्वारा स्वीकृति की जानी है। वे आपको उन प्रस्तावों को अनुमोदन कराने का आश्वासन देते हैं।

- 1) आपके पास क्या-क्या विकल्प उपलब्ध हैं?
- 2) प्रत्येक विकल्प का मूल्यांकन कीजिए और बताइए कि आप कौन-सा विकल्प चुनेंगे और क्यों?

केस स्टडी - 13

स्थिति - जम्मू-कश्मीर के लद्दाख में आए भूकंप से बहुत सारे घर टूट गए और सैकड़ों परिवार लापता हो गए हैं। उन लापता परिवारों में आपका परिवार भी शामिल है। चूंकि आप उस क्षेत्र के उप-कमिश्नर हैं, इसलिए आपका प्रबंधन समन्वयक की जिम्मेदारी आपकी है। हालांकि आपकी जिम्मेदारी आपके परिवार के प्रति भी है, परन्तु आपकी प्रशासनिक जिम्मेदारी भी है। अपने परिवार के सदस्यों के लापता होने के कारण आप काफी आहत हैं, फिर भी आप अपना सारा ध्यान और प्रयास मुख्यतः उन्हें ढूंढने में नहीं लगा सकते हैं, जितनी आवश्यकता है और जो आप चाहते हैं।

प्रश्न - ऐसी परिस्थिति में, आप किस तरह से स्वयं को संभालेंगे और अपने परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निर्वाह इस तरह कर पाएंगे, जिससे आपको अपनी प्रशासनिक जिम्मेदारियों से भी समझौता नहीं करना पड़े?

केस स्टडी - 14

स्थिति - आप किसी विभाग के प्रमुख हैं। आपके विभाग में काम करने वाला एक कर्मचारी एड्स पीड़ित है। आपके विभाग के अन्य कर्मचारियों को जब इस बात का पता चलती है, तब वे आप पर उस कर्मचारी का स्थानान्तरण दूसरे विभाग में करने या उसे छुट्टी पर भेजने हेतु दबाव बनाते हैं। आपके द्वारा ऐसा करने से इन्कार करने पर वे आपसे में राय, विचार कर उस एड्स पीड़ित कर्मचारी का बहिष्कार करना शुरू कर देते हैं और कोई भी उससे काम की बात के सिवाय कोई और बात नहीं करता। कर्मचारियों का कहना है कि आप किसी से सामाजिक संबंध रखने या न रखने के लिए उन्हें विवश नहीं कर सकते।

प्रश्न - ऐसी स्थिति, में आप क्या करेंगे और क्यों? क्या आपको लगता है कि आपके अधीनस्थ कर्मचारियों की दलील उचित है? क्या इस पूरे मामले में एड्स पीड़ित व्यक्ति के किसी अधिकार का हनन हुआ है, अगर हां तो तर्क के साथ व्याख्या करें।

केस स्टडी - 15

स्थिति - आपका तबादला एक नए कार्यालय में प्रमुख के रूप में हुआ है। वहां जाने के बाद आपने यह पाया कि वहां के सारे कर्मचारी कार्यालय में देर से आते हैं। लोगों से बात करने पर आपने यह पाया कि वहां कर्मचारियों में आपसी संबंध और यूनियनबाजी बहुत ज्यादा है। आपको यह भी सूचना मिली कि आपसे पहले भी कई अधिकारियों ने यह प्रयास किया था कि सब समय पर आना प्रारंभ कर दें, परन्तु वे सफल नहीं हुए। ज्यादा सख्ती करने पर कर्मचारी विद्रोह करने पर उतारू हो जाते हैं।

प्रश्न - आपके कर्मचारी समय पर आने लगे, इसके लिए आप क्या कर सकते हैं?

केस स्टडी - 16

स्थिति - आप धूम्रपान विरोधी विभाग के एक अधिकारी हैं और आपको शहर के विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को धूम्रपान से दूर रखने के लिए एक अभियान चलाने का काम दिया गया है।

प्रश्न - इस अभियान का निर्धारण करते समय आप किन-किन बातों का ध्यान रखेंगे?

केस स्टडी - 17

आप छत्तीसगढ़ में प्रशासनिक अधिकारी हैं। एक दिन सूचना मिलती है कि बस्तर जिले में नक्सलवादियों ने लगभग 50 नागरिकों को बंधक बना लिया है, जिसमें 15 बच्चों व 5 विदेशी नागरिक हैं। नक्सलवादियों की मांग है कि उनके 10 साथियों को जेल से रिहा किया जाए व उन पर लगाए गए मुकदमें भी वापस लिए जाए। सरकार की ओर से कोशिश की गई कि किसी और रास्ते से काम चला लिया जाए, किन्तु इसी बीच नक्सलियों ने एक बंधक की हत्या कर दी। जनता की मांग है कि बंधकों को छोड़ा जाए।

राज्य सरकार ने आपकी विशिष्ट योग्यताओं को देखते हुए। आपको इस मामले में निर्णय लेने हेतु अधिकृत किया है। आप चाहे तो नक्सली नेताओं से वार्ता भी कर सकते हैं। इस परिस्थिति में निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार कीजिए -

- 1) आपके पास कौन से नैतिक विकल्प हैं, उनमें से कौन सा अधिक नैतिक है और कौन सा कम नैतिक?
- 2) जो नैतिक विकल्प आप चुनेंगे, उसे अधिकतम लाभ के साथ लागू करने की प्रक्रिया क्या होगी, अर्थात - क्रमवार बताइए की आप पहले क्या करेंगे और बाद में क्या ?

केस स्टडी - 18

आप एक जिले में जिलाधीश हैं, आपके कार्यालय का एक कर्मचारी रिश्वत लेते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया। वह एक गरीब व्यक्ति है और उसके 3 बच्चे हैं। उसके माता-पिता प्रायः अस्वस्थ रहते हैं और सारा परिवार आर्थिक रूप से उसी व्यक्ति के वेतन पर निर्भर है। अगर आप कोई कानूनी कार्यवाही करते हैं, तो उस व्यक्ति का निर्लंबित होना तय है और यह भी हो सकता है कि उसे जेल जाना पड़े। ऐसा होने पर उसका परिवार संकट में आ सकता है।

निर्णय करने की पूरी शक्ति आपके हाथ में है, आप क्या निर्णय करेंगे और उस निर्णय का आधार क्या होगा।

केस स्टडी - 19

आपकी उम्र 30 वर्ष है और आप सरकारी नौकरी में हैं। आपके माता-पिता निरक्षर हैं और एक पुराने शहर के पारंपरिक मोहल्ले में रहते हैं। जहां हिन्दु और मुसलमानों के संबंधों में तनाव होता रहता है। आप हिन्दु परिवार से हैं। आपकी छोटी बहन जिसकी उम्र 21 वर्ष है। एक दिन वह आपके पास आती है और बताती हैं कि पड़ोस में रहने वाले एक मुस्लिम युवक से प्रेम हो गया है। वह जानती हैं कि माता-पिता इस रिश्ते को नहीं मानेंगे और समाज में तनाव भी होगा। किन्तु आप से उम्मीद है कि आप उसका साथ जरूर देंगे।

ऐसी स्थिति में आपके पास क्या-क्या विकल्प हैं आप उनमें से किसे चुनेंगे और क्यों?

केस स्टडी - 20

स्थिति - आपके कार्यालय में एक पद रिक्त है। आपने उस पद के लिए आए सारे आवेदनों को देखने के पश्चात् दो व्यक्तियों को शॉर्ट-लिस्ट किया और पहले के कार्यालयों से उनके प्रदर्शन और उत्पादकता (Efficiency) की जानकारी मंगवाई। उसके आधार पर आपने यह पाया कि उनमें से एक व्यक्ति बहुत ज्यादा कार्यकुशल (Efficient) है, परन्तु ईमानदार नहीं है। जबकि दूसरा व्यक्ति काफी ईमानदार है, परन्तु वह ज्यादा कार्यकुशल नहीं है।

प्रश्न - इन दोनों में से आप किसे चुनेंगे और क्यों ?

केस स्टडी - 21

स्थिति - आप अल्पसंख्यक बहुल जिले में बतौर मुख्य विकास अधिकारी कार्यरत हैं। हाल में हुए एक सांप्रदायिक दंगे के बाद आपका तबादला इस जिले में किया गया है। साम्प्रदायिक तनाव पूरी तरह शान्त नहीं हो पाया है और कभी-कभार हिंसा की छुटपुट झड़पें होती रहती हैं, जिससे विकास कार्य लगातार प्रभावित होता रहता है। परिवार नियोजन कार्यक्रम से संबंधित एक केन्द्रीय योजना पर आपको कार्य सौंपा गया है और इसमें जनभागीदारी को बढ़ाने के लिए आप क्षेत्रीय विज्ञापन साधनों का सहारा लेते हैं। ऐसे तनावपूर्ण माहौल में अल्पसंख्यक समुदाय के लोग इसे अपने खिलाफ साजिश समझते हैं और परियोजना का प्रभारी अधिकारी होने के नाते व आपको अपना शत्रु समझने लगते हैं। इस जिले के अधिकांश लोगों का शैक्षिक व आर्थिक स्तर बहुत कम है, इसलिए चरमपंथियों द्वारा उन्हें भड़काया जाना आसान हो जाता है। इसलिए चरमपंथियों द्वारा आपके समक्ष एक ऐसी चुनौती है, जिसमें लोगों की भावनाओं को आहत किए बिना परियोजना को लागू करना है। उस अल्पसंख्यक समुदाय के लोग परिवार नियोजन के सभी तरीकों को प्रकृति के नियम के विरुद्ध मानते हैं और दनका तर्क है कि ऐसा करना उनके धर्म के विरुद्ध है। आप यह भली-भाँति जानते हैं कि लोगों को विश्वास में जिए बिना यदि इस परियोजना का प्रचार-प्रसार किया गया, तो हिंसा का माहौल फिर से पैदा हो सकता है। इस संबंध में आप इस अल्पसंख्यक समुदाय के एक प्रभावशाली धर्मगुरु से मिलते हैं और उनसे सहयोग की अपील करते हैं। धर्मगुरु आपके प्रस्ताव को इस शर्त पर मानने को तैयार हो जाते हैं कि आप व्यक्तिगत स्तर पर उस धर्म विशेष के प्रचार-प्रसार में सहयोग देंगे। व्यक्तिगत स्तर पर आप किसी जाति, धर्म या संप्रदाय को महत्व नहीं देते, लेकिन आपके परिवार के शेष सभी सदस्य अपने संप्रदाय व धर्म के प्रति गहरी आस्था रखते हैं। ऐसी स्थिति में आप निम्नांकित संबंधों में क्या प्रतिक्रिया देंगे -

- 1) परिवार नियोजन कार्यक्रम लागू करने के संबंध में।
- 2) क्षेत्र को हिंसक गतिविधियों से दूर रखने के संबंध में।
- 3) अल्पसंख्यक समुदाय से संबंधित धर्म के प्रचार-प्रसार के संबंध में।